



भारतीय सामन्तवाद



राजकमल प्रकाशन  
जिलो ११०००६ पटना ८००००६

# भारतीय सामन्तवाद

रामशरण शर्मा

अनुवादक आदित्यनारायण सिंह

मूल्य २५ ००

© डॉ० रामशरण शर्मा

प्रथम संस्करण १९७३

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०,

८ नेताजी सुभाष भाग, दिल्ली-११०००६

मुद्रक ग्रन्थ भारती दिल्ली-११००३२

आवरण हरिपाल त्यागी

## प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक १९६४ में प्रोचोवे भारतीय इतिहास एव सस्कृति के उच्च अध्ययन केन्द्र (सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन एशिएट इंडियन हिस्ट्री एंड कल्चर) के तत्वावधान में कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिये मेरे छ व्याख्यान की शृंखला पर आधारित है। व्याख्यान देने के लिए मुझे केन्द्र के निदेशक प्रोफेसर निहारजन रे ने आमन्त्रित किया इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैं केन्द्र के वर्तमान निदेशक प्रोफेसर डी० सी० सरकार का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस व्याख्यान माला और उसके बाद होने वाली परिचर्या का संयोजन किया। पुस्तक के प्रणयन में मुझे प्रोफेसर ए० एल० वैशम से जो मूल्यवान सहायता मिली है उसके लिए मैं उनका विशेष श्रेणी हूँ। उन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि का अवलोकन करके उसकी भूत बताने की कृपा की—खासकर भारतीय जहाजरानी के सम्बन्ध में जिसका विवेचन छोटे परिच्छेद में किया गया है। पूरी रचना का पारायण करके कुछ महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ सुझाने के लिए मैं डॉ० वी० पी० मजूमदार का भी आभारी हूँ।

पाठक देखेंगे कि परिशिष्ट १ में मुख्य पाठ की कुछ बातों की पुनरावृत्ति हुई है तथापि यह परिशिष्ट इसलिए शामिल किया गया है कि एक अधजनजातीय क्षेत्र की भूमि-पवस्था की विशेषताओं को उजागर किया जा सके।

भारत के सन्दर्भ में सामन्तवाद के अध्ययन की कठिनाइयाँ का मुझे बोध है। लेकिन यह ऐसी चुनौती है जिसे किसी न किसी को स्वीकार करना

ही है और इस दिशा में पहला कदम उठाना ही है। यहाँ मैंने भारतीय सामतवाद के प्रायः नौ सौ वर्षों के इतिहास का विवेचन कालांतर से किया है, बल्कि या कहिए कि उसकी एक ऐसी मोटी रूप रेखा प्रस्तुत की है जिसके दायरे में यहाँ उठाई गई समस्याओं का विशद विवेचन कालांतर से किया जा सकता है। क्षेत्र की दृष्टि से मेरा यह अध्ययन मुख्यतः उत्तर भारत तक सीमित है और इसमें सामतवाद के राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं का तो विचार किया गया है, किंतु सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर उसके प्रभाव का विश्लेषण नहीं किया गया है। इन मर्यादाओं के रहते हुए भी यदि यह वृत्ति भारतीय इतिहास के सुधी अध्ययताओं में इस विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर पाई तो मैं अपना प्रयास सफल मानूँगा।

इतिहास विभाग  
पटना विश्वविद्यालय  
१५ अगस्त १९६५

रामशरण शर्मा

## विषय-सूची

उदभव और प्रथम चरण	१
तीन राज्या में सामन्ती राज्य-व्यवस्था	८०
तीन राज्या में सामन्तवादी अर्थ-व्यवस्था	११५
पूर्व मध्यकाल में भूमि विषयक अधिकार	१३६
राजनीतिक सामन्तवाद का उत्कर्ष-काल	१६१
सामन्तवादी अर्थव्यवस्था का चर्मोत्कर्ष और ह्रास	२१५
निष्कर्ष	२७०
परिशिष्ट १ मध्यकालीन उड़ीसा में भूमि व्यवस्था	२८२
परिशिष्ट-२ पाल तथा चन्देल राज्या की दुर्ग रक्षित धस्तियाँ	२६६
अनुक्रमणिका	३०३
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	३२१





## परिच्छेद १

# उद्भव और प्रथम चरण

(लगभग ३०० ई० पूर्व)

सामन्तवाद की ठीक ठीक परिभाषा कर पाना बहुत कठिन है। जिस प्रकार जितने समाजवादी हैं समाजवाद की उतनी ही परिभाषाएँ मिलती हैं, उसी प्रकार सामन्तवाद पर शोध करनेवाले जिनो विद्वान हैं, उतनी ही तरह की इसकी व्याख्याएँ की गयी हैं। इस बात का प्रयोग ऐतिहासिक विकास की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के सादृश्य में किया जाता है और ये अवस्थाएँ दग बाल की दृष्टि से एक दूसरी से काफी दूर पड़ती हैं। जहाँ एक ओर मिस्र के पुरातन राज्य (मोन्ड किंगडम) के बाद वाले राज्यहीन काल (अर्थात् २४७५-२१६० ई० पूर्व) को सामन्तवादी कहा जाता है वहाँ दूसरी ओर चाऊ कानीन (११२२-२५० ई० पूर्व) चीन को भी यह सजा दी जाती है। लेकिन, आमतौर पर पाचवी शताब्दी से लेकर पंद्रहवी शताब्दी तक के यूरोपीय ममाल को ही सामन्तवादी कहा जाता है। यहाँ भी कमी प्रभु और सामन्त के अनुबन्धात्मक सम्बन्धों में निहित कानूनी पक्ष पर जोर दिया जाता है तो कमी आर्थिक पक्ष, अर्थात् कृषि प्रथा के प्रचलन पर। यूरोपीय सामन्तवाद के स्वरूप को दखते हुए हम तो यही लगता है कि उसका राजनीतिक और प्रशासनिक ढाँचा भूमि अनुदानों के आधार पर गठित था और असली आर्थिक ढाँचा कृषि दासत्व (सफ्टम) प्रथा के आधार पर। इस प्रथा के अधीन किसान भूमि से बंधे होते थे, और भूमि के मालिक वे जमींदार होने थे जो असली शासक और राजा के बीच की बड़ी बा काम करते थे। किसान जमीन जोतने के बदले सामन्तों को उपज और बठ-वेगार के रूप में लगान भेदा करते थे। इस प्रणाली का आधार आत्म-

निभर अथ यवस्या थी जिसमें बीजा का उखाड़न बाजार में बचन के लिए नहीं बल्कि मुख्यतः स्थानीय विमानों और उनके मालिकों के उपयोग के लिए होता था। तो इसी अर्थ में सामन्तवाद की कुछ मोटी मोटी विशेषताओं का ध्यान में रखकर हम भारत में उसका उत्पन्न और विकास पर विचार करेंगे।

कुछ राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रवृत्तियाँ के कारण मौर्यों के काल और विनायक के गुप्त काल में राज्य यवस्या सामन्तवादी ढाँच में होने लगी। इनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति ब्राह्मणों की भूमिदान करने की थी। धर्मशास्त्रों, महाकाव्यों के उपन्यासमय अंगों और पुराणों में किया गया धर्मशास्त्रों के प्रवृत्ति को पुण्य काय के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। महाभारत के अनुशासन पर्व में इसकी महिमा का गुण गाथा पूरे एक अध्याय (भूमिदान प्रश्ना) में किया गया है। प्राचीन मौर्य काल के पालि साहित्य में कोमल और मगध के राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दान दिया गया गाँवों का उल्लेख मिलता है। लेकिन इन राजाओं ने इन गाँवों के प्रशासन के अधिकार भी ब्राह्मणों को दिए हुए। ऐसा कोई उल्लेख इन ग्रंथों में नहीं मिलता। भूमिदान का सबसे प्राचीन पुरातन प्रमाण ईस्वी पूर्व की पहली शताब्दी के एक सानवाहन अभिलेख में मिलता है जिसमें अश्वमेधयज्ञ में एक गाँव दान करने की चर्चा है।<sup>१</sup> किन्तु महा मौर्य शासनिक अधिकारों की कोई चर्चा नहीं है। मगर विचित्र बात यह है कि अभिलेखों में उस प्रकार का गायद पहला प्रमाण दूसरी शताब्दी में बौद्ध भिक्षुओं को दान किये गये गाँवों के सिलसिले में मिलता है। यह दान सातवाहन राजा गोतमीपुत्र शातकनिने दिया था। उन भिक्षुओं को दान की गयी भूमि में राजसूय का प्रवेश बज्रित था। राज्याधिकारियों वहाँ के जीवन क्रम में कोई विघ्न बाधा नहीं डाल सकते थे और न जिला पुलिस के लोग हाँ उस क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप कर सकते थे।<sup>२</sup> पाचवाँ शताब्दी में एस अनुशासन की प्रवृत्ति खूब बनी। इनकी दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ थी—एक तो राजस्व के समस्त साधनों का ब्राह्मणों के नाम हस्तांतरण, और दूसरी दान लेनेवालों पर आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासनिक दायित्वों का बोझ डाल देना। दूसरी शताब्दी के अनुशासन में राजस्व के सिर्फ एक साधन, अर्थात् नमक पर राजा के अधिकार के हस्तांतरण का उल्लेख मिलता है। इसका मतलब यह हुआ कि राजस्व के कुछ दूसरे साधनों पर राजा अपना अधिकार कायम रखता था। लेकिन दक्षिण

१ सि० २० पृष्ठ १८८ पंक्ति ११।

२ वही पृष्ठ १६२ १६४५।

भारत में स्थित गये चौथी शताब्दी के पल्लव अनुदानों में यह स्थिति नहीं रह जाती। वाकाटक राजा द्वितीय प्रवरसेन के समय (पाँचवीं शताब्दी) से हम देखते हैं कि राजा चरागाह, घम वाष्ठागार नमक की खान और सभी भूगर्भ संपदा तथा विष्टि आदि राजस्व के प्रायः समस्त साधना का परिहार कर देता था।<sup>१</sup> 'रघुवर्ग' के अनुसार पृथ्वी की रक्षा करने के लिए राजा के बतन का एक साधन खान भी है।<sup>२</sup> चौथी और पाँचवाँ शताब्दियों के कुछ दानपत्रों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों का दान किया गया गाँवों की भूगर्भ संपदा के उपभोग का अधिकार भी उन्हें दे दिया जाता था।<sup>३</sup> इसका तात्पर्य यह हुआ कि खानों का राजकीय स्वामित्व भी ग्रहीताओं का दे दिया जाता था और यह ध्यान देने की बात है कि खानों का स्वामित्व राजा की प्रभुसत्ता का एक महत्वपूर्ण प्रतीक था।

यह बात भी उतना ही महत्व रखती है कि दाता राजस्व के परिहार के साथ-साथ दान किये गये गाँवों के निवासियों पर शासन करने का अधिकार भी ग्रहीताओं को दे देता था। गुप्त काल में मध्य भारत के बड़-बड़े सामन्त राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को दान स्वरूप बसे बसाये गाँव देने के एक कम से कम आधे दर्जन उदाहरण तो मिलते ही हैं। इन अनुदानों में सामन्त राजाओं ने सम्बन्धित गाँवों के निवासियों को, जिनमें किसान और कारीगर दोनों शामिल थे, स्पष्ट निर्देश दिया है कि वे ग्रहीताओं का केवल प्रचलित कर ही नहीं दें, बल्कि उनके आदेशों का भी पालन करें। गुप्ताक्षर-काल के दो अन्य भूमि अनुदानों में सवाध्यक्ष के पद पर काम करनेवाले सरकारी अमला तथा बतनभागी नियमित सैनिकों और छत्रधरा का इस आंगण के राज्यादेश दिये गये हैं कि वे ब्राह्मणों के जीवन क्रम में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें।<sup>४</sup> ये तमाम उदाहरण राज्य द्वारा अपने प्रशासनिक अधिकारों के त्याग के स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

पाँचवीं शताब्दी के अभिलेखों से ज्ञात जाना है कि राजा चोरो को दण्डित करने का अपना अधिकार ग्रामतौर पर नहीं छोड़ता था, यह अधिकार राज्य-

१ सि० इ० पृष्ठ ४२२, पंक्ति २६ ए।

२ स० १७, श्लोक ६६।

३ वा इ० इ०, जि० २, न० ४१ पंक्ति ८, सि० इ०, पृष्ठ ४२२ पंक्ति २६।

४ रा० १० शर्मा पालिटिना निगल आस्पेक्ट्स ऑफ द नाइट मिस्टम, ज० बि० रि० सो० २६ ३२५।

सत्ता का एक मुख्य आधार था। तबित घाते चतुर राजा कबल चारा को दखित करत का अधिकाय ही नहा, बनि र परिवार सम्पत्ति और ध्यति के प्रति आराध करतवाता का दण्ड दन का अधिकाय भी आह्वाना का दन सगा, और दग प्रसार विवेकीकरण की प्रविषा करती स्वाभाविक परिणति पर गठुष गयी। मध्य भारत और पश्चिमी भारत म कुछ उत्तर गगत। एतान बिद गय गीया म मुत्तमा की गुावादे का अधिकाय भी प्रहीगगा का गीय गिया। उर दानपत्रा म अम्पतरमिद्वि<sup>१</sup> दान का प्रयोग हया है। अतय अतय विज्ञाना ने दगम अतय अतय अथ सगाय है।<sup>२</sup> कि नु अतय हम दगता अथ गीय क अतय-रिक् विषया का विवतारा सगाय ता अतयता ग हागा<sup>३</sup> और प्रहीगा का यह अधिकाय मितय क दान सम्पत्ति गीय स्वभावत सरया ध्याम विभर राजनीतिक दवादे का जाना था। एत ह्य अम्पतर मिद्वि का प्रयाग यही उगी प्रयोजन न किया गया है जिम प्रयोजनस उत्तर भारत क दानपत्रा म मण्ड दगापत्राय दान का प्रयोग किया गया है। किन्तु जहाँ मण्डगापत्राय प्रहीगा के दयाधिकाय को आरथाधिक अमान फोजगारी मामला तक ही सीमित रगत है<sup>४</sup> वही अम्पतरमिद्वि दान उम गमी धान्तरिक् विषया अमान् दीवाती मामला पर भी दयाधिकाय प्रदान करता है। एत ह्य कि इस अधिकाय के अत पर प्रहीगा दान म प्राप्त अथ का आगानी स रिजी दानत अथ यना न सवता था।

प्राचीन साहित्य और पुरातना म राज्य की गति के जिन मान अगा का उल्लेख मिलता है उनम सतम महत्त्वपूर्ण स्थान कर समूह करने और दण्ड देने क अधिकाय को दिया गया है। और यह ठीक भा है कयाकि एन दाना अधिकाय का त्याग करत ही स्वभावत राज्य की गति छिन्न भिन्न हो जाती है। केकिन आह्वाना का गिये गय जाना स जो स्थिति उत्पन्न हुई यह विस्तुल यही थी। दान क्षेत्र आमनौर पर मूय च द के अधिकाय पय न के लिए दिए जाते थे। इसका अथ यह था कि राज्य की अलडता हमेगा क लिए टूट जाती थी। पुरोहितों को भूमि दान देने की प्रथा का प्रारम्भ प्राड मीय-काल और मीय काल म ही देया जा सवता है। कौटिल्य कहता है कि नयी बस्तिना म बह्यदेय्य

१ अम्पतरमिद्वि दान का० इ० इ०, जि० ४, न० ३१, पक्ति ५१।

२ का० इ० इ० जि० ४ १५४ पा० टि० १।

३ वही।

४ वही, जि० ३, १८६ इ० पा० टि० ४।

भूस्वामित्व व अनुसार भूमिदान करना चाहिए और ब्रह्मदेय्य भूस्वामित्व की शर्तों में कर और दण्ड से मुक्ति भी शामिल है।<sup>१</sup> लेकिन गुप्त काल में स्थिति बदल जाती है। प्रारम्भिक पालि साहित्य में उल्लिखित ब्रह्मदेय्य गण की टीका करते हुए पाँचवीं शताब्दी में बुद्धघोष कहते हैं कि ब्रह्मदेय्य अनुदान में यायिक और प्रशासनिक अधिकार भी शामिल हैं।<sup>२</sup> समकालीन पुरालिखीय प्रमाणा से भी इस बात की पुष्टि होती है। किन्तु ब्रह्मदेय्य शब्द की इस व्याख्या सत्राड मौर्य कालीन स्थिति का बोध नहीं होता। इससे दृग्गसल टीकाकार के समय की ही स्थिति प्रकट होती है। इस प्रकार गुप्तकाल में भूमिदान के व्यापक प्रचलन ने एम ब्राह्मण सामन्ता के आविर्भाव का भाग प्रशस्त कर दिया जो राजकीय अधिकारियाँ की सत्ता से लगभग स्वतंत्र रहकर अनुत्त क्षत्रा का प्रशासन चलाते थे। प्रारम्भिक अनुदानों में जो बातएँ अस्पष्ट तथ्य के रूप में विद्यमान थीं, लगभग १००० ईस्वी से वही बात स्पष्ट रूप से प्रचलित हो गयीं, और तुरन्त की शासन प्रणाली में ताँ उस विधिवत स्वीकार कर लिया गया। इन दाताओं का मना चाह जा रहा था, किन्तु उसे अनुदानों का परिणाम यहाँ हुआ कि देश में प्रचुर आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति में सम्पन्न एक जबरदस्त मध्यवर्ती वर्ग खड़ा हो गया। जस जस भूमिधर ब्राह्मणों की सत्ता बढ़ती गयी, उनमें से कुछ लोग धीरे धीरे पुराहिताई का काम छोड़कर अपना ध्यान मुम्बत अपनी भसम्पत्ति की व्यवस्था पर केंद्रित करना लग। एम ब्राह्मणों के लिए सामारिक काम काज धार्मिक कर्तव्य या स अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये। लेकिन ब्राह्मणों का भूमिदान देने का सबसे बड़ा मनीजा यह निकला कि शासन तंत्र पर सकेन्द्र का वह सभ्य और व्यापक नियंत्रण जिसके लिए मौर्यों का राज्य प्रसिद्ध था मौर्योत्तर काल और गुप्त काल में लुप्त होना लगा और उसका स्थान सत्ता का विकेंद्रीकरण लेना लगा। अब तक शासन में सुव्यवस्था कायम रखने और प्रतिरक्षा का प्रबंध करने के साथ साथ कर उगाहन राज्य के लिए बठ बेगार की व्यवस्था करना और कृषि का नियमन करने की सारी जिम्मेदारी शासक अधिकारियों पर थी किन्तु अब इन कर्तव्यों के निवाह का दायित्व धीरे धीरे पहले ताँ पुराहिता व हाथों में और बाद में यादों व हाथों में स्थित करता गया।

१ अथशास्त्र अध० २ अ० १।

२ पा० ट० म० पालि इतिहास विभाग की ब्रह्मदेय्य गण।

बंगाल और मध्य भारत के गुप्त सामान्त्य तारकों में छोटी-बड़ी का भूमि के लगान का उपभाग का स्थायी अधिकार था किया गया है। लेकिन भूमि का स्वामित्व अथवा लगान का अधिकार दूसरा का नाम हस्तांतरण करने अथवा दूसरा को दान-स्वरूप देने का एक ही ही है। छोटी-बड़ी का यह ही देने का प्रायः सबसे प्राचीन प्रमाण हम मध्य भारत में मिलता है। वहीं इन्दौर में प्रायः २६७ ई० के एक अभिलेख में महाराज स्वामिनाथ नामक किसी व्यक्ति ने जो सामन्त गुप्त सम्राट का सामन्त था किसी मीनागर को अथवा एक बड़े दान करने की अनुमति दी है।<sup>१</sup> मतलब यह कि स्वामिनाथ को अपने अधिकार क्षेत्र में भीतर किसी भी व्यक्ति का धार्मिक अनुष्ठान देने की मजूरी दे सकता था। इसमें शामिल होता है कि सामन्त की हैमियत से स्वयं स्वामिनाथ को भी राजकीय अनुमति के बिना धार्मिक अनुष्ठान देने का अधिकार प्राप्त था। गुप्तों के अथवा सामन्तों द्वारा भी धार्मिक अनुष्ठान देने का प्रमाण मिलता है। उदाहरण के लिए परिव्राजक और उच्छेदक के कई गाँव दान किये थे। लेकिन न तो स्वामिनाथ या तो उच्छेदक में और न अथवा उच्छेदक में ऐसा कोई उल्लेख है जिससे यह समझा जा सके कि इन सामन्तों को जमीन राजा की ओर से मिला हुआ था। इस प्रकार के अनुष्ठान अथवा उपसामन्तीकरण का उच्छेदक नहीं है। लेकिन इन्दौर अनुष्ठान में छोटी-बड़ी को यह अधिकार दिया गया है कि वह जब तक ब्रह्मण्य अनुष्ठान की बातों का पालन करता रहेगा तब तक वह उस भूमि का उपभाग कर सकता है। उगम स्वयं मनी कर सकता है और दूसरा से भी करवा सकता है।<sup>२</sup> इस तथ्य में इस बात के लिए साफ सुजादश है कि भारत में अगर चाहें तो अनुष्ठान में प्राप्त भूमि पट्ट पर दूसरों को दे सकता है। यह भूमि का उपसामन्तीकरण का प्रायः सबसे प्राचीन पुरा लेखीय प्रमाण है। यद्यपि इस काल में दान के दूसरे हिस्से में एक उच्छेदक नहीं मिलता किन्तु यहाँ उपसामन्तीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात तो ही हो जाता है। यह प्रक्रिया मध्य भारत के पश्चिमी हिस्से में पाँचवीं शताब्दी में जारी रही और छोटी-बड़ी या सातवीं शताब्दी में बलभी नरेगा के अनुष्ठान में यह चीज निरपवाद रूप से देवता का मिलती है।

१ ए० इ० जि० १५ न १६ पंक्ति १६। यह स्पष्ट नहीं है कि दाता स्वयं वह मीनागर या या कोई और।

२ उचितया ब्रह्मादेय भुक्तया भुञ्जत कृपण कृपापयतश्च। वहीं पंक्ति ६७

यं दान ध्यान देने योग्य है कि गुप्त साम्राज्य के केन्द्रीय हिस्सा में, अर्थात् आधुनिक बंगाल विहार और उत्तर प्रदेश में किसी भी सामन्त सरकार द्वारा सम्राट की अनुमति के बिना भूमि दान अथवा ग्राम दान करने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। इस प्रकार के जो भी उदाहरण मिलते हैं, सभी इस परिधि के बाहर सुदूरपूर्वी क्षेत्रों में ही मिलते हैं, जहाँ के सरदार नाम मात्र को ही गुप्त सम्राट के अधीन थे। साम्राज्य के केन्द्रीय प्रदेशों में यह प्रवृत्ति, जब गुप्त सम्राटों का शासन समाप्ति पर था, तब से शुरू हुई। कुमारामात्य महा राज नन्दन ने छठी शताब्दी के मध्य में आधुनिक गया जिले में एक गाँव दान किया था<sup>१</sup> यद्यपि पहले ऐसे अनुदान दान गुप्त सम्राटों का विनायाधिकार था।

दानपत्रों को देखने से पता चलता है कि भूमि अनुदानों में बढ़ते पुरोहिता का दानाश्रय या उनके पुत्रों के आध्यात्मिक कल्याण के लिए पूजा प्रायश्चित्त करनी पड़ती थी। इनके सांसारिक कल्याण का निर्देश कदाचित्त ही नहीं किया गया हो। इनका एकमात्र उदाहरण दाकाटक राजा द्वितीय प्रवरसेन का चम्मक ताम्र पत्र है। इसमें एक महेश्वर श्रावणों का एक गाँव दान किया गया है और उनके लिए कुछ कर्तव्य भी निर्धारित किये गये हैं।<sup>२</sup> उह हिन्दुमत दी गयी है कि वे राजा और राज्य के विरुद्ध द्राह नहीं करग, चोरी और व्यभिचार नहीं करग, ब्रह्मत्याग नहीं करेंगे और राजा का अपभ्रंश अर्थात् विष नहीं देंगे, वरन् अतिरिक्त वे दूररे गाँव से लड़ाई भी नहीं करेंगे और न उनका काइ अनिष्ट करेंगे।<sup>३</sup> ये सभी दायित्व निषेधात्मक हैं, जिसका मतलब यह है कि पुराहित लोग इस बात पर भूमि का उपभोग करते थे कि वे प्रचलित सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध कोई काम नहीं करेंगे। दूररे दानपत्रों में भोजना पुगहिता न इन निषेधा को गायत्र एक सर्वमाय तथ्य के रूप में या ही स्वीकार कर लिया जिससे इनके उल्लंघन की जरूरत नहीं समझी गयी, लेकिन, ऐसा मानना स्वाभाविक ही होगा कि ब्राह्मणों ने अपने उदार दानाश्रयों से जितना पाया वन्ते में उन्में उसमें अधिक ही दिया। उन्होंने अपने अपने अधीनस्थ क्षत्रियों में गार्ति मुयवस्या कायम रखी, प्रजाकावण धर्म के निवाह का पवित्र कर्तव्य समझाया तथा उसके मन में राजा के प्रति जो गुप्त काल से विभिन्न

१ ज० ग० मा० व० पृ० सि० ५ (१८०६), १६४ ए० ३०, १०, १२।

२ का० ३० ३० जि० ३ न० ५५।

३ वही, पंक्तियाँ ३८ ४३।



देयताया व पुणा व विभूयित बाया जाते सगा या यह माय जगाया वि उमरी  
 भागा वा पाता करना भी पुनीय काय है। धाणक, दाताया वा मगा चाह जा  
 रहा हो मगा मागा गतत होगा कि न्न अनुज्ञाना म निग धामिक उद् दया  
 की ही सिद्धि हागे थी। यह ठीक है कि पुरोहिा साय गताया तथा उनक  
 पूवजा व धार्मिक कल्याण व निग पूजा प्रायना करत व धोर दग्द व  
 पादरिया की तरह उाक निग मना ग्हा जुगा म सनिन धगर जनता वा  
 ठीक धापरण करन धोर प्रचलित व्यवस्था को स्वीकार करक चनन व निग  
 समभाया जा सकता था ता फिर सनिक तथा की जम्मत ही क्या था ?  
 गुप्त काल म अधिधारिया की सनिक धोर प्रागनिक सवाभा व निग  
 भूमि अनुज्ञान दन वा कोर्द प्रग्य त पुरातगीय प्रमाण नरी दिसता दक्षवि हा  
 सरता है कि एसा प्रचलन रहा हो। धमगास्त्रा को दगन स प्रनीत हागा कि  
 दगमिक प्रणाली पर धाधारित राजम्विक एन प्रागतनिक एवांगा व प्रधान  
 अधिधारिया को भूमि अनुज्ञान व रूप म ही वतन निया जाता था।<sup>१</sup> क्षत्रीय सगठन  
 की दशमिक प्रणाली की स्परगा सबसे पहल कोटित्य ने प्रस्तुत वा। उसन ८००  
 ५०० २०० धोर १० गाँवा' बल्लि ५ गाँवा व भी एवांगा की व्यवस्था की  
 है धोर उनके अधिधारिया के पण नाम दताय है। वे हैं—पचपामी दगपामी  
 गोप स्यानिन तथा समाहर्ता।<sup>२</sup> समाहर्ता की नरद वेतन देने की व्यवस्था की  
 गयी है।<sup>३</sup> यद्यपि नयी बस्तिया म गोप धोर स्यानिक को भूमि अनुदान भी निया  
 जा सकता है जिस वह न बंध सकता है धोर न धाय किसी प्रकार स रिती  
 दूसरे को द सकता है।<sup>४</sup> स्पष्ट है कि यह भूमि अनुदान नियमिन रूप स मिलन  
 वाले नकद वतन व ऊपर स दिया जाता था। धन कोटित्य की प्रणाली म  
 सामन्तवाट वा यह लक्षण बहुत धीण निराई देता है। सनिन जतानि मनु  
 समति म दगा जा सकता है ईस्वी सन के प्रारम्भ म यह स ण काफी पुष्ट हो  
 जाता है। मनु ने दशमिक प्रणाली को कायम रखत हुए १० २० १०० धोर  
 १००० गाँवा व एवांगा की व्यवस्था की है।<sup>५</sup> साय ही न्न एवांगा व अधि

- १ अशगा प्र ध० २ श्लो० १ ।  
 २ वही २ ३५ ।  
 ३ वही ५ ३ ।  
 ४ वही २, १ ।  
 ५ म० स्मृ० प्र० ७ श्लो० ११५—७ ।

कारियों को भूमि अनुदानों के रूप में वेतन देने का विधान करके<sup>१</sup> उसने वेतन विधि में काफी परिवर्तन किया है। प्रायः सभी स्तरों के अधिकारियों को नकद वेतन देने की कौटिल्यवादी व्यवस्था से यह नियम बहुत भिन्न है। 'मनुस्मृति' में 'राजप्रदेयानि एकत्र करन और शांति-मुद्रवस्था कायम रखन के लिए गठित एव, दस बीस, सौ या हजार गावों के एकाका क प्रधान अधिकारियों को वेतन स्वरूप भूमि अनुदान देने की सिफारिश की गयी है।<sup>२</sup> इस नियम को बहस्पति की स्मृति में भी उद्धृत किया गया है<sup>३</sup> जिससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह नियम गुप्तकाल में भी मान्य था। यद्यपि गुप्तकालीन अभिलेखा में इस प्रथा का कोई उल्लेख नहीं मिलता, किंतु पाल अभिलेखा में ग्रामपति और नाशग्रामिक जैसे अधिकारियों की सूची मिलती है। उन दश ग्रामिक शब्दों का यहाँ भी उन्नीसवें में लिया जा सकता है जिस अर्थ में यह 'मनुस्मृति' में मिलता है।<sup>४</sup> इसमें पूर्ववर्ती काल में भूमि का लगान, या राजस्व का मुख्य साधन था, सीधे राज्य के अमले या ग्रामभोजक अथवा गांव लागू वसूल करते थे। इस उद्देश्य का ध्यान में रखकर कौटिल्य ने यह व्यवस्था की थी कि समा परिवारों की गणना करके उनके सम्पत्तियों के नाम और उनकी सम्पत्ति दर्ज कर ली जाय<sup>५</sup> ताकि सरकार कर लगाने लायक सम्पत्ति का निश्चय कर सके और वह कितना बगार ले सकती है इसका अनुमान लगा सके। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल से सरकारी कर वसूल करने का दायित्व कम से कम अशत तीसम भाग को सौंप ही दिया जाता था। इसलिए सरकार के लिए अश्व परिवारों की गणना करके उनका ऐसा जोखा रखना जरूरी नहीं रह गया था। चीनी यात्रियों के विवरणों से ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है। पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य के वाद्रस्य क्षेत्र में यात्रा की अवस्था के सम्बन्ध में लिखते हुए फाहियान कहता है 'उन्होंने घर-बार का पंजीयन नहीं कराना पड़ता न किसी मजिस्ट्रेट के सामने पत्र हाना पड़ता है।'<sup>६</sup>

१ मनुस्मृति अ० ७ श्लो० ११८-६।

२ वही, ११५-२०।

३ अ० १६ श्लो० ४४।

४ हिस्ट्री ऑफ़ बंगाल, ज० १, श्लो० २७७।

५ अर्थशास्त्र, २, ५।

६ समुद्राल बील, टैक्स ऑफ़ फाहियान पेंट सु ग युन, परिच्छेद १६, पृष्ठ ३७।  
चाइनीज लिटरेचर, १६, न० ३, १५८ में इसका अनुवाद इस

इसमें हम या तो सक्षम मिलाते हैं कि कर-व्यवस्था और दण्ड प्रणाली के सम्बन्ध में गुप्त साम्राज्य की क्रांतियुक्तता हीमें पढ़ा सको थी। मानव्य शासकी के पूर्वाह्न में प्रजासैनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में इतिहास से भी हम एसी ही जानकारी मिलता है। इतिहास के ही नाम में पूर्वी सरकार की नीति उभार है इतिहास बहुत कम अधिकारियों की जबरन होती है। परिवारा का पजीवन नही होता । १ इतिहास प्रसार शासकीय नीति यादियों के कपनासु-गार परिवारा का पजीवन नही होता था । इतिहास कारण क्या था ? हम एसा मान सकते हैं कि इस राज्य विभागा से भीय कर बगुन करन की रिक नही करता था और यह काम इस राज्य जमान का जाता था ने विमानों और सरकार के मध्य स्थित तीसरे बग के हाथ में घना गया था । इतिहास राज्य-यत्र के सामग्रीकरण का एक और लक्षण माना जा सकता है ।

एसा प्रतीत होता है कि गुप्तोत्तर शासकीय यादियों की वेतन देने की विधि में बड़ा मन्त्रब्रूण परिवर्तन था । अगर हम अध्यात्म के प्रमाण का मानकर चर्चें तो नयी वस्तिया (गणना निवेग) से सम्बन्धित कुछ अधिकारियों की छोड़ कर राज्य के समस्त अधिकारियों का नक्कलन किया जाता था । अधिकतम वेतन सामान्य प्रतिमास ४०,००० पण था और न्यूनतम ६० पण । २ कही कही ६० पण से कम वेतन का भी उल्लेख मिलता है । यह सब 'भक्त्य भरणियम' प्रकरण में मिलता है जिसमें राज्य के छोटे बड़े सभी तरह के अधिकारियों के लिए वेतन निर्धारित किया गया है । बहुत से अधिकारियों के पद नाम भी बताये गये हैं और कई मामला में एसा कहा गया है कि एक तरह के अधिकारियों को एक मा वेतन देना चाहिए । ३ किन्तु ऋषिगण आचार्य तथा पुराहित जस कुछ बड़े धर्माधिकारियों को जिन्हें वेतन-स्वरूप ८०००० पण दान की सिफारिश की गयी है नयी वस्तिया में ब्रह्मर्षि भूमि का भी पात्र माना गया है । ४ फिर नयी वस्तिया में हस्त प्रशिक्षण भिषजा तथा अश्व प्रशिक्षका जस मध्यम स्तर के कुछ अधिकारियों का, जिन्हें वेतन स्वरूप २००० (पण ?) दिया जाता था भूमि अनुदान देने की भी सिफारिश की गयी है

प्रकार दिया गया है वे व्यक्ति कर या अधिकारियों के प्रतिबन्धों से मुक्त हैं।

१ वाटस उग्रान सुग्राम द्रुवन्स इन इतिहास, १, १७६ ।

२ अथशास्त्र, अ० ५ श्लो० ३ ।

३ वही ।

४ वही ।

किन्तु उन्हें इस भूमि को बचने अथवा किसी को देने का अधिकार नहीं था।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि कौटिल्य की कल्पना के राज्य में जिन घोड़े से अधिकारियों को नियमित नकद वेतन के ऊपर से नयी वस्तुओं में भूमि अनुदान देने की व्यवस्था की गयी है उनके प्रतिरिक्त शेष सभी को सिर्फ नकद वेतन ही दिया जाता है। ईस्वी सन की प्रारम्भिक गतादियों में यह स्थिति बदल गयी, प्रतीत होती है। 'मनुस्मृति' में, जो शायद दूसरी शताब्दी में संकलित की गयी राजस्व अधिकारियों को भूमि-दान के रूप में वेतन देने की व्यवस्था की गयी है<sup>२</sup> और गुप्त-काल के स्मृतिकार इस व्यवस्था को कायम रखते हैं। पाचवीं शताब्दी में वहस्पति 'प्रसाद' लिखित शास्त्र की परिभाषा करते हुए बतलाता है कि जब राजा किसी को सेवा, शौच आदि में प्रसन्न होकर उसे अनुदान-स्वरूप कोई जिला या ऐसा ही कोई क्षेत्र प्रदान करता है तो उसे प्रसाद लिखित अनुदान कहते हैं।<sup>३</sup> गुप्त साम्राज्य में अधिकारियों को वेतन देने की विधि का हम ठीक ठीक ज्ञान नहीं है, क्योंकि इस विषय में चीनी यात्रियों का प्रमाण काफी स्पष्ट नहीं है। फाहियान के विवरण के एक वाक्य का लेगी द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद से हम पता होता है कि 'राजा के अग्रशुभका और परिवारा सभी को नियमित वेतन दिया जाता है।'<sup>४</sup> लेकिन चीन का अनुवाद इसमें भिन्न है। उनके अनुसार, राजा के सभी प्रमुख अधिकारियों के बचन के लिए राजस्व निर्धारित है। 'और हाल में एक चीनी विद्वान ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न का अनुवाद इस प्रकार किया है 'राजा के परिवारों अग्रशुभका और अनुचरो सबको परिनिधिषा (इमो-युमटस) और पेंगन मिलती है।'<sup>५</sup> अगर हम इस अन्तिम अनुवाद को सही मानकर चलें तो देखेंगे कि चूँकि परिनिधिषा शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है, इसलिए हो सकता है कि जहाँ भूमि अनुदान भी शामिल रहे हो। जो भी हो इनका तो स्पष्ट है कि हर्षवर्धन के समय में

१ अथशास्त्र, अ० २ श्लो० १।

२ मनुस्मृति अ० ७ श्लो० ११५-२०।

३ अक्षरारम्भसूत्र, (मनु० पी० पी० काण और एम० जी० पटवर्धन) में उद्धृत पृष्ठ २५०।

४ ए रेकट ऑफ बुद्धिस्ट किंगडम, पृष्ठ ५।

५ टुक्स ऑफ फाहियान पटसग्रा, पृष्ठ ५५।

६ 'हो चांगबुन फाहियानस पिलग्रिमज टु बुद्धिस्ट कट्टीज' चाइनीज लिटरेचर १९५६, न० ३, १५८।

राज्य की सेवा के बदले नकद वेतन नहीं दिया जाता था, क्योंकि एक चौथाई राजस्व बड़े बड़े अधिकारियों की वृत्ति के लिए सुरक्षित था।<sup>१</sup> एक स्थल पर ह्वॉरसांग न स्पष्ट कहा है कि निजी खजाने के लिए प्रत्येक गवर्नर, मंत्री, मजिस्ट्रेट और अधिकारी को जमीन मिली हुई थी।<sup>२</sup> ह्ये व अभिलेखा के अनुसार इन बड़े अधिकारियों में हम दौस्ताबसाधनिकी, प्रमातारो, राजस्था नीया उपरिका तथा विषयनिया को शामिल कर सकते हैं।<sup>३</sup> इस प्रकार ह्ये के दासन-काल में अनुदान के रूप में राजस्व न केवल पुरोहितों और पटिता को,<sup>४</sup> बल्कि राज्याधिकारियों को भी दिया जाता था। इस प्रथा की पुष्टि इस बात से होती है कि हम उस काल की मुद्राएँ बहुत कम मिलती हैं।

गुप्त काल के कुछ अभिलेखा से पता चलता है कि धन-कम में लग पुरोहितों और पटिता के प्रतिनिधिक गृहस्थों को भी अनुदान स्वरूप गाँव दिये जाने थे किन्तु ये सांग उन गाँवों से हानवाली आय का उपयोग धार्मिक प्रयाजना के लिए करते थे।<sup>५</sup> मानवान्ना और वृषाणो के अधीन गिल्पिया के सघा को धर्म कार्यों में लगान के लिए राज्य की ओर से नकद राशियाँ दी जाती थी, लेकिन गुप्ता के गामन काल में उद्देश्य से अधिकारियों तथा अन्य जागों का भूमि अनुदान दिये जाने थे। इसका एक उदाहरण बन्त प्रारम्भ में ही अर्थात् ४६६-६७ में, मध्य भारत में उच्छरत्प महाराज जयनाथ द्वारा दिये गये एक ग्राम अनुदान में दान के मिलने हैं।<sup>६</sup> उस गाँव के निवासियों को निर्दिष्ट किया गया है कि वे नियमपूर्वक भाग भाग कर हिरय यात्रि भावनाओं को दें तथा उनके आंगण का पालन करें किन्तु दाता न चारा का मज्जा देने का अधिकार अपने ही हाथ में रखा है।<sup>७</sup> अथ एमा अनुमान जागना धर्मगत न जागा कि इन गृहस्थ यानियों (दुस्त्राज) ने इस अनुदान का उपयोग सर्व धार्मिक कार्यों के लिए ही नहीं किया जागा और चूँकि वे यामा रूपत ध्याचार और पापण के लिए प्रसिद्ध विद्वि (कायस्थ) जाग थे अतः उनको नका का और भा बहा

१ वात्स्य ५० प्र० पु १ १७६।

२ मनुस्मृत १० (अनु०) भा पु ३१ १ ८८।

३ ए० ए० रि० न० २८ पृ ६।

४ वही रि० १ ८७।

५ वी० ए० ए० रि० न० ७।

६ वही पृ १११।

७ वही पृ १११।

कारण है। इस अनुदान की धाय से दिविर को वनन मिलता ही, यह कहना कठिन है। किन्तु व्यवहारत तो वह उमसे अपनी जेब मरन से दायन नहीं ही चूका होगा।

उसी क्षेत्र म इस प्रकार के कई अनुदान जयनाथ के पुत्र गवनाथ न भी दिये। ५१०३ मे उमन एक गाँव चार हिस्सा म दान किया। इनम से दो हिस्से विष्णुनादिन क थ एक व्यापारी शक्तिनाग का और एक एक कुमारनाग तथा स्कन्दनाग का।<sup>१</sup> यह गाव उदरग तथा उपरिक्कर के अधिकार के साथ साथ दान किया गया था और इसम सरकार के अनियमित अथवा नियमित सनिको का प्रवण वर्जित था। इस मन्त्वपण प्रशासनिक छूट का काइ उल्लेख उपयुक्त अनुदान म नहीं मिलता। स्पष्ट है कि यहा प्रत्यक्ष भोक्ता व गृहस्थ लोग थे, जिनको यह दान दिया गया था और उनके वगजा का भी मन्त्र के लिए इस दान का उपभोग करने का अधिकार प्राप्त था।<sup>२</sup> किन्तु अनुदान की धारामा के अनुसार इनके भोक्ता दो देवता थे जिनकी पूजा और मंदिरा की मरम्मत के लिए दाता और ग्रहीता के बीच हुए इकरारनाम क मुताबिक यह दान दिया गया था।<sup>३</sup> जो भी हा, इतना स्पष्ट है कि राजस्व तथा प्रणामन सम्बन्धी सत्ता का प्रयोग करने का अधिकार इन गृहस्थ भोक्ताओं के ही हाया म था, और सिर्फ धाय का उपयोग मंदिरा के लिए निर्धारित था। इसी राजा न चोडु-गोमिन नामक व्यक्ति को ऐसी ही शर्तों पर आधा गाव दान किया। यह व्यक्ति भी गृहस्थ ही था, और इमन दाता के साथ अनुबंध किया कि अनुदान का उपयोग विष्टपुरिका देवी की पूजा और उनके मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए किया जायेगा।<sup>४</sup> इन सभी दानपत्रो म यही आभास मिलता है कि अनुदान प्राप्त करने वान गृहस्थ लोग दान म दिये गावा के "पवम्यापक" वन जान थे, और उन पर मंदिरा को चलाने की जिम्मेदारी होती थी।

लेकिन इसी राजा द्वारा ५३३ ३४ म जारी किये गये एक दानपत्र को देखा से इस विषय म कोई शंका नहीं रह जाती कि गृहस्थ लोगो को धर्मोत्तर उद्देश्या से भी भूमि अनुदान दिये जाते थे। इस दानपत्र के अनुसार पुलिदभट नामक किसी व्यक्ति का राजकृपा स्वरूप दो गाव सदा के

१ का० ड० इ० जि० २ न० २८ पत्रितयाँ १ १७।

२ वही पत्रितयाँ ६ १०।

३ वही पत्रितयाँ १२ १३।

४ वहा, पत्रितयाँ १ १६।

५ वही, न० २६, पत्रितयाँ १ १२।

लिए द न्यि गय और उनके राजस्व तथा प्रशासन सम्बन्धी उपयुक्त अधिकार भी उन सौंप न्यि गय ।<sup>१</sup> एसा लगता है कि पुलिन्दमठ कोई भादि वासा सरदार था । उक्त पिट्टपुरिका देवीकी पूजा और उसक मन्दिरक जाणों द्वार क लिए ये दोना गाव कुमारस्वामिन का स्थायी अनुदान क रूप म द न्यिे ।<sup>२</sup> इम प्रकार यह निश्चित है उसस पहले वह जिस दानपत्र के बल पर उनका स्वामी था, वह विगुद्ध रूप स धर्मंतर दानपत्र था । हो सकता है कि गुप्त काल म इस प्रकार के और भी धर्मंतर दानपत्र जारी किय गय हा, किन्तु चू कि उनका सम्बन्ध धार्मिक अनुदानो स नहीं था, इसलिए व पत्थर और तांब जमे टिकाऊ धातुमा पर दज नहो किय गय ।

गुप्तोत्तर-काल क अभिलेखा म अनुदान पानेवाल धर्मंतर व्यक्तिना का उल्लेख मिलता है । पूव बगाल स्थित अणरफपुर नामक स्थान से प्राप्त ताँत्र पत्रा म जिन दो अनुदानो क विवरण मिले है उनम एस कई नामो का उल्लेख हुआ है । ये दोनो दानपत्र सातवीं से लेकर आठवीं सदी तक जारी किय गय थ ।<sup>३</sup> उनसे ज्ञासित होता है कि बौद्ध मठ क प्रधान क नाम स दान किये गये जमीन के टुकड कई लागे स, जो उनका उपभाग कर रहे थे छीन गिय गय । यह बात अभिलेखा म प्रयुक्त 'भोज्यमान' या 'भोज्यमानक' शब्द के प्रयोग स प्रकट होनी है । कुछ मामला म ता एक ही टुकड का उपयोग एक के बजा एक दा व्यक्तिना ने किया और उसक बाद वह फिर बाढ़ आचाप सधमिन्न क मठ को लौटा दिया गया ।<sup>४</sup> एस समी लागे क नाम न्यि गय हैं लकिन व कौन थ और क्या थ, इसका निश्चय करना कठिन है । कि तु, भूमिदान क कई धर्मंतर उदाहरण भी मिलते है । एक ताँत्रपत्र क अनुसार कुछ जमीन रानी का दी गया— कदाचित उसक निजी खर्च क लिए । फिर वह जमीन राजा की सेवा करने क पुरस्कार स्वरूप किसी स्त्री को दे दा गयी<sup>५</sup> और फिर वहा जमीन

१ का० इ० इ० जि० ३ न० ३१ पवित्रया १ १० ।

२ वहा, पवित्रया ११ १५ ।

३ डेप्लोमस ऑफ द एजिमाटिड मानान्गो ऑफि बाल, १ न० ६, पृष्ठ २६ ।

४ वहा पृष्ठ ६० फलक ए० पवित्र ४ ।

५ वहा पवित्रया ५ ६ ।

६ वहा फलक वी०, पवित्रया ८ ६ ।

७ वही फलक ए०, पवित्र ८ ।

८ वही पवित्रया ४ ५ ।

अपने स्वामी की सेवा करने के बदले किसी सामंत को दे दी गयी। स्पष्ट है कि इन सामंतों का और दूसरों को जमीन के टुकड़े किसी-न किसी प्रकार की सेवा के बदले हाँ मिले हुए थे, और भ्रष्टाचार समाप्त होने पर या अन्य कारणों से दाता इन्हें फिर लौटा लेता था। अगर ये टुकड़े ऐसी जगहों पर न मिले हुए होते तो इन्हें इतनी आसानी से लौटाया नहीं जा सकता। जाहिर है कि अपनी जागीरों से वंचित किये जानेवाले लोगों का कोई-मुद्दावाजा नहीं दिया जाता था। इस सबसे प्रकट होता है कि सामंतों या आठवीं शताब्दी में पूर्व बंगाल में कुछ भ्रष्ट-सवाभों के लिए लोगों को भूमि अनुदानों के रूप में वेतन मिलता था और ये अनुदान एक सीमित भ्रष्टाचार के लिए दिये जाते थे।

धार्मिक सेवाओं के लिए भूमि अनुदान दिये जाते होंगे और धर्मोत्तर सवाभों के लिए नकद वनन, यह बात तत्कालीन अथ 'यवस्था' को देखते हुए सम्भव नहीं जान पड़ती क्योंकि जैसा हम आगे चलकर देखेंगे गुप्तोत्तर काल की अथ-यवस्था की विगणता गुप्तों का अभाव था। जबकि कुषाणों और सान वाहना के काल में मुद्रा का काफी चलन था तब तक तो धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नकद वनन देकर ही करायी जाती थी, और किसी सीमा तक गुप्त काल में भी ऐसा चलना रहा। लेकिन, जब मुद्रा का चलन अपेक्षाकृत कम हो गया तो धार्मिक तथा धर्मोत्तर दोनों प्रकार की भ्रष्ट-सवाभों का प्रतिदान भूमि अनुदानों के रूप में ही देना था। धार्मिक सवाभों के लिए भूमि अनुदान देने की प्रथा का संकेत तो अमिलेखा में साफ साफ मिलता है। और जब पुरोहिता और मंत्रियों के निद्राह के लिए भूमि अनुदान दिये जाते थे तब फिर अधिकारियों के निद्राह के लिए किसी दूसरे रूप में पारिश्रमिक क्या कर दिया जा सकता था?

अधिकारियों का राजस्व अनुदान के द्वारा वेतन देने के प्रश्न पर हम गुप्त काल के अधिकारियों के पद-नामों और उस समय के प्रशासनिक एकाग्रता की सवाभों के अनुसार भी विचार कर सकते हैं। भौतिक और भोगपतिक, इन दो पद-नामों से भासित होता है कि इन अधिकारियों का ये पद मुख्यतः राजस्व का उपभोग करने के लिए ही दिये गये थे और प्रजा पर राज बनाना का प्रयास करना तथा उसके कल्याण के लिए कार्य करना इनका गौण दायित्व था। कभी कभी भागिक अमाय भी हुआ करता था।<sup>१</sup> क्या पता कि उस अवस्था में उस

१ मनीषस आण्ड पशियाण्डि सामाददी आण्ड बंगाल, पृष्ठ ६ पवित्र ५।

२ का० ६०, ६०, जि० ३, न० २३, पक्तिया १८, २०, न० २६, पक्तिया २२, २३।



भोगिक का पद उसको अपने दूसरे पद से सम्बन्धित कार्यों के लिए बतन देने के उद्देश्य से ही न दिया जाता हो। इसके प्रतिरिक्त भोगिक का पद सामान्य-तया पशानुगत हुआ करता था क्योंकि भोगिकों की कम से कम तीन पीढ़ियों का उल्लेख तो कई स्थानों पर मिला है।<sup>१</sup> इन तमाम वाश के परिणामस्वरूप भोगिक स्वभावतः दक्षिणगामी सामन्त स्वामी हो गया होगा जिस पर केन्द्रीय सत्ता का बहुत प्रभेदाहत बहुत कम रह गया होगा। भोगिक का उल्लेख वतमान नुक्ति में नियुक्त लगभग दजन भर अधिकारियों के साथ साथ हुआ है। यह बात लगभग ५०० ईस्वी की है जब महाराजधिराज श्री गणपचन्द्र का एक सामन्त महाराज विजयसेन वहाँ पामन करता था।<sup>२</sup> इसके बारे में ठीक ही अनुमान लगाया गया है कि यह अधिकारी शायद कोई जागीरदार था।<sup>३</sup> कुछ भोगिकों के सैनिक कच के दौरान ग्रामवासियों ने भोगिकों के खिलाफ भूठी गिकायनों की।<sup>४</sup> परन्तु अपने सरभक के प्रशासन को दोष रहित चित्रित करने की किश म बाण ने इन शिकायतों को विश्वसनीय नहीं माना है। ह्य के काल में दूसरा सामन्त अधिकारी महाभोगी था। इसका उल्लेख उत्तर भारत के समकालीन अभिलेखों में नहीं हुआ है लेकिन उड़ीसा के कतिपय पुरालेखों में हुआ है।<sup>५</sup> बादम्बरी में राजा तारपीड व प्रासाद व अत पुर का कणन करत हुए बाण ने लिखा है कि द्वारप्रकोष्ठ पर सक्डा महाभोगी उपस्थित थे।<sup>६</sup> अग्रवाल के अनुमार व राज्य व दया दाक्षिण्य पर चलनेवाले लोग थे।<sup>७</sup> शायद उनकी तुलना मध्य कालीन यूरोप के बड बड सामन्तों या राजाओं के प्रासादों में रहनेवाले घरेंदु अनुचरों या योद्धाओं से की जा सकती है। राजा की दानगीवता ने व्यवहारतः शायद मट्ट रूप ल लिया कि राज्य की ओर से महाभागियों के उपभोग के लिए ग्रामीण क्षमा में कुछ राजस्व निर्धारित कर

१ का० इ० २० जि ३ न० २६ पत्तियाँ २२ २३।

२ मि० इ० पृष्ठ ३६० पत्तियाँ ३४।

३ वग पृष्ठ ३६० पा० टि० ६।

४ पृष्ठ २१२।

५ विनायक मित्र मन्तरान इतिहास और आदिमा पृष्ठ २४५ अमिनगर ग० १।

६ अदकाय बादम्बरी पृष्ठ १०३।

७ वग।

कर दिये जात थे और य महाभोगी अपने भूमिदाता प्रभु के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये यदा कदा सामूहिक रूप से राज प्रासाद में उपस्थित हात थे। प्रारम्भिक कलचुरि अभिलेखा में भोगिकपालक<sup>१</sup> नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। वह सायद भोगिका के अधीक्षक का काम करता रहा हो।<sup>२</sup> छठी गतांग के अंतिम चरण के एक अभिलेख में भोगिकपालक महापीलुपति (हस्ति सेना के प्रधान) के रूप में भी सामने आता है।<sup>३</sup> उसे यह पद भोगिकपालक के रूप में उसकी सवाभो के परिणामस्वरूप दिया गया था अथवा भोगिकपालक का पद ही महापीलुपति की हैसियत से उसकी अधिसेवाका के कारण दिया गया था यह बात स्पष्ट नहीं है। किंतु, जो भी हो भोगिक, भागपति और भोगिकपालक जैसे शब्दों से सामंतवादी सम्बन्धों की गंध तो आती ही है।

✓ यह सामंतवादी विचारधारा कि भूमि या भूखण्ड उसके उपभोग के लिए है जा उसका स्वामी अथवा शासक है, हमारे सामने स्पष्ट रूप से गुप्त काल में आती है। उत्तर वृत्तिक साहित्य में कहा गया है कि वश्य लाग शासकों को पिलान पिलान के लिए हैं और वृत्तिकाल में धर्मसूत्रा में बताया गया है कि गूढ़ लाग ऊपर के तीन वर्णों का सेवा करने के लिए हैं।<sup>४</sup> यह विचार कि भूमि राजाधिकारियों के उपभोग के लिए है, पहले पहले अंगों के अभिलेखों में मिलता है। अशोक के शासन-काल में जनपद आहारों में विभक्त कर दिया गया प्रतीत होता है।<sup>५</sup> शासक की दृष्टि से यही माना जायगा कि ये आहार आहाराधिपतियों के आहार रूप, अर्थात् भाजन रूप थे और ये आधुनिक जिला या तहसीला के बराबर थे। यह प्रशासनिक एकात्मता सातवाहन युग में कायम रहा और जसा कि गुप्त-काल और गुप्तोत्तर काल के प्रारम्भिक कलचुरि अभिलेखा से पता चलता है गुजरात और महाराष्ट्र में यह उमक बाद भी बना रहा।<sup>६</sup> किंतु, तब तक प्राणिक विभाजना के लिए ऐसे और भी बहुत से उपभोग-सूचक शब्द सामान्य रूप से प्रयोग में आ गए।

१ का० २० ३० जि० ४ न० १३ पक्ति ८, न० १८, पक्ति ६।

२ वही भूमिका, पृष्ठ १४१।

३ वही न० १३, पक्ति ४।

४ अनाय लघु स्तम्भ अभिलेख सारनाथ सधर्म स्तम्भ अभिलेख।

५ का० ६० ६० जि० ४ भूमिका, पृष्ठ १२४ ५।

ऐसा भी कहा गया है कि भौतिक शब्द शायद भुक्ति शब्द से भी सम्बद्ध है, किन्तु बंगाल के अभिलेखों में भुक्ति के शासक का उपरिक्त कहा गया है। भुक्ति शब्द के प्रयोग पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। गुप्ता के अभिलेखा में यह एक प्रादेशिक एकाग्रता का शब्द में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द सबसे पहले समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख में सामने आता है। उसमें कहा गया है कि कुषाण राजाशा तथा सिंहल (नेपा) और अथ द्वापा के राजाशा को अधीनता स्वीकार करने और विवाह में अपनी घटियाँ दान की शर्त पर यह अनुमति दी गयी कि वे अपने अपने विषयो और भविष्य पर अपना अधिकार रखें।<sup>१</sup> इसके बाद के अभिलेखा में एक बड़े प्रशासनिक एकाग्रता का शब्द में भुक्ति शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है। राज्याय की दृष्टि से भुक्ति का मतलब है कोई भोग्य वस्तु क्योंकि शासक द्वारा धरती के भोग का विचार दान काल में काफी प्रचलित था।<sup>२</sup> अतएव यह सम्भव है कि प्रशासनिक एकाग्रता का रूप में भक्ति सम्बन्धित शासक के भाग के लिए रही है।

भक्ति शब्द की तुलना भाग से की जा सकती है। मध्य भारत (के पूर्वो हिस्से) में प्रायः २०८२ के एक अभिलेख में प्रयुक्त महाराज शवनाथ भोग शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से महाराज शवनाथ द्वारा भाग्य प्रदान है। इस शब्द में भाग शब्द से इस बात का बोध होता है कि शायद गुप्त सम्राट की नाम मात्र की सत्ता के अर्थ में उसका सामान्य शवनाथ उस भाग का उपभोग करता था, लेकिन भक्ति शब्द का मतलब है सम्राट के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में उस क्षेत्र का उपभोग। परन्तु बलचरित्तल के अभिलेखा में भाग शब्द से भागिक के अधीनस्थ भाग गहन छोटे राजस्व भाग का बोध होता है।

उत्तर भारत और बंगाल में भक्ति विषयों में विभक्त था, किन्तु अगर धामापुरपुर साम्रज्य में उचित अनुमानों में प्रयुक्त विषय शब्दों की हमारी याचिका स्वीकार्य है तो मानना पड़गा कि विषय भी विषय पतिया का उपभोग के लिए ही था। अनुबहमानके कोटिबधविषय शब्दों का मतलब मतलब समझिमान जिना के लगाया गया है। लेकिन अनुबह का बह

१ का० इ० इ० त्रि० २ पृष्ठ १०० पा० त्रि० २।

२ मि० इ० पृष्ठ २५२ पंक्ति ४।

३ य भवनाशवनाथने मि० २० पृष्ठ २६४ श्लोक १।

४ का० २० इ० त्रि० २ न० २४ पंक्ति ४।

५ धार० जा० बसाक ७० न० ११ १ १ पा० त्रि० २।

के अर्थ में लेना समीचीन होगा। मनुस्मृति, अ० ३, श्लोक ७ की टीका से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है।<sup>१</sup> इसलिए अनुवहमानके विषये का अर्थ भार वहन करनेवाला जिला ही समझना ठीक होगा। इस भार के स्वरूप का आभास हम 'हस्तपश्वजनमोगेन'<sup>२</sup> शब्द पद में मिलता है। इसमें प्रकट होता है कि वह विषय विषयपति के लिए या तो हाथी, अश्वारोही और पदाति सैनिक जुटाकर या उस तीनों तरह की सेनाएँ रखने के लिए आवश्यक धन दकर उसके उपभोग की सामग्री प्रस्तुत करता था।<sup>३</sup> ऐसा लगता है कि कोटिवप विषय के निवासिया को वहाँ के शासक की सजा का खर्च उठाना पड़ता था और इस तरह उसके भोग का भार वहन करना पड़ता था।<sup>४</sup>

मौर्य साम्राज्य में रजुको, अर्थात् मम्मडला (विजना) के प्रधान अधिकारिया की नियुक्ति सम्राट करता था, किन्तु गुप्त साम्राज्य में ये अधिकारी, जिन्हें अब कुमारामात्य कहा जाता था, उपरिक्त द्वारा नियुक्त किये जाते थे। कुमार गुप्त के एक अभिलेख (४४८ ईस्वी) के एक अंश के आधार पर ऐसा माना गया है कि बगाल के एक जिले के प्रधान अधिकारी (कुमारामात्य) और गुप्त सम्राट के बीच सीधा और व्यक्तिगत सम्बन्ध था और यह अनुमान लगाया गया है कि पचनगरी के कुमारामात्य को जिसके लिए भट्टारकपादा नुशात<sup>५</sup> विनोपण प्रयुक्त हुआ है स्वयं प्रथम कुमार गुप्त ने नियुक्त किया था।<sup>६</sup> किन्तु भट्टारक विरुद्ध पर विचार करने से लगता है कि वह व्यक्ति कुमार गुप्त नहीं था क्योंकि बगाल वाले उसके पहले के तीनों अभिलेखा में

१ मोनियर विलियम्स, सम्बन्धन = गलिग टिकगनरा, शीपक 'अनुवह'।

२ सि० इ० पृष्ठ ३३८, पंक्ति ३।

३ ए० इ० (जि० १५, १४४) में दिया यह अर्थ—'पदाति सैनिका अश्वारो हियो और गज-भनिको के शासन'—शब्दार्थ तो नहीं है, किन्तु व्यजनाथ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

४ ए० इ०, जि० १५ न० १, फलक स० ८, पंक्ति २३।

५ सि० इ०, जी० ई० १२८ का ब्रह्मम साम्रपत्र अभिलेख, पृष्ठ ३८२, पंक्ति १।

६ बी० सी० सन पत्र सिन्धुसिक्ल आम्पेक्टम ऑफ न इन्डियन्स ऑफ बगाल, पृष्ठ २११।

७ सि० इ०, पृष्ठ २८० और २८५।

उसे 'परम भट्टारक विष्णु' से विभूषित किया गया है।<sup>१</sup> दो अथ अभिलेखा म भी गुप्त सम्राट बुद्धगुप्त को यही विगण दिया गया है। इसलिए उस महत्त्वपूर्ण अभिलेखा<sup>२</sup> से यही भासित होता है कि पचनगरी का कुमारामात्य अपने निकटतम प्रभु का अनुरक्त या और सम्भवतः पुत्रवधन मुक्ति का प्रधान उसका स्वामी था।

मिफ गुप्त साम्राज्य के केंद्र में या निकटवर्ती क्षेत्रों में ही विषयपतिया की नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था। इसका उदाहरण है अतर्वेदा, अथात् गगायमुना व दाप्राब व विषयपति गवनाग की नियुक्ति।<sup>३</sup> लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि विषयपति की नियुक्ति के मदम प्रशासन या प्रजाकल्याण की कोई चिन्ता नहीं है। जा कुछ कहा गया है उससे यही बोध होता है कि विषयपति अपने अधीनस्थ श्रेष्ठ का उपभोग करता था।<sup>४</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट का साम्राज्य के केन्द्रस्थ क्षत्र के बाहर के विषयपतियों की माधी निष्ठा प्राप्त नहीं थी। य अपन सर्वोच्च प्रभु के बजाय अपन निकटतम (इमिडिएट) प्रभु के ही अनुरक्त व।

लेकिन इससे ऐसा निष्कर्ष निकाल लेना गलत होगा कि उपरिक्त कुमारामात्य और विषयपति स्वतंत्र सामन्त जस थे। गावा मन्त्रिय गय भूमि अनुदान की सूचना अनेक राज्याधिकारिया को ली जाती थी, कभी कभी तो इनकी सग्या नो तब पहुंच जाती थी।<sup>५</sup> लेकिन यह तय कर पाना कठिन है कि सभी स्थलों पर राज्याधिकारिया व पत्र के नाम बरीयता के क्रम में ही दिय गये है अथवा नहीं। गुजरात में प्राप्त एक अभिलेखा (५४१ ईस्वी) में मन्त्रिसामन्त महाराज सत्यमसिन् द्वारा मन्त्रिय गय तत्र भूमि अनुदान का वणन रिया गया है। उसमें दाता न राजस्थानीय, उपरिक्त, कुमारामात्य चात्र, भट्ट आदि अपन अधीनस्थ अधिकारिया को कुछ छात्र भी मन्त्रिय है।<sup>६</sup> यदि दगाव व अभिलेखा का ध्यान में रखा जाय ता पता चलगा कि उपरिक्त का स्थान विषयपति और कुमारामात्य

१ मि० ८० पृष्ठ ३२४, पक्ति १ ए० ६, २० न० ८, पक्ति १० ११। (यह अभिलेखा गायक बुद्धगुप्त से सम्बन्ध है) दण्डिण मि० २० पृष्ठ ४०३, पक्ति १।

२ का० ६० ६० जि० २ न० १६, पक्ति ३४।

३ अतर्वेदाम भागानिन्द्य व धनमान।' पत्नी पक्ति ४५।

४ का० ६० ६०, जि० ६ न० ३ पक्ति २० ८।

५ का० न० ११ पक्ति १०।

से ऊपर था। स्पष्ट है कि अनुदानों के सम्बन्ध में ग्रामों में केवल बड़े अधिकारियों को बल्कि उनके अधीनस्थ अधिकारियों का भी दिया जाता था। इस उदाहरण से सख्त मिलता है कि सामन्त राजा अपनी मत्ता की धाक विपत्तियों पर भी जमान की कागिश करता था यद्यपि इनका नियुक्ति उपरिक्त करता था।

कालक्रम से 'ग्रामात्य और कुमारामात्य' सामन्ती विरुद्ध बन गये। ग्रामात्यो के सम्बन्ध में ता हूप के शासन काल में निश्चित रूप से यही स्थिति थी क्या कि 'हूपचरित' में कम से कम दो स्थलों पर इस ग्रामात्या की चर्चा की गयी है, जिन्हें मूधाभिपिक्ताश्चामात्या राजाने रूप में अभिषिक्त किया गया।<sup>१</sup> अग्रवाल साहब के अनुसार यहाँ ग्रामात्य शब्द का अर्थ सत्ता ही मानना चाहिए,<sup>२</sup> मन्त्री नहीं। लेकिन हम किसी बहुत बड़े सम्मान का द्योतक मानना ज्यादा ठीक होगा। अग्रवाल साहब आगे यह भी कहते हैं कि कुमार से सम्बद्ध अधिकारी कुमारामात्य कहलाने थे।<sup>३</sup> ही सक्ता है इस पद का आरम्भ इसी तरह हुआ हो लेकिन आगे चलकर यह अपने आप में एक अलग पद हो गया और कुमार से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। ऐसा प्रतीत होता है कि कुमारामात्य का दर्जा ग्रामात्य से नीच था। गुप्त काल में मन्त्री मन्त्रपति महादण्ड नायक, विपत्तियुक्त और अर्थ बढ-बढे प्रशासनाधिकारी भी कुमारामात्य विरुद्ध धारण करते थे। विद्वानों के विचार में इसमें प्रसङ्ग होता है कि 'अर्थशास्त्र' के ग्रामात्या की तरह कुमारामात्य नामक अधिकारियों के एक विशिष्ट सवग की व्यवस्था की गयी, और सभी बड़े बड़े अधिकारी इसी सवग में से चुने जाने लगे। किन्तु वास्तव में कुमारामात्य एक सम्मान सूचक सामन्तवादी उपाधि थी जो बड़े बड़े अधिकारियों का—यहाँ तक कि महाराजों को भी दी जाती थी।<sup>४</sup> इस विन्दु को धारण करने वाले को राजस्व आदि के सम्बन्ध में कुछ विशेष अधिकार भी मिल जाते थे या नहीं, यह कहना कठिन है। लेकिन गुप्त सम्राटों के शासन काल के अन्तिम दिनों में हम कुमारामात्य महाराज नन्दन को अपने प्रभु से अनुमति लिए बिना एक भूमि अनुदान दत्त देखते हैं। इससे प्रकट होता

१ 'श्रुताभिजनशिलशालिना मूधाभिपिक्ताश्चामात्याराजाने', हूपचरित आष-  
बाणभट्ट (निणयसागर संस्करण) पृष्ठ १७३। अग्रवाल के अनुसार युव  
राज कुमारामात्य कहें जाते थे, हूपचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन, पृष्ठ ११२।

२ हूपचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन, पृष्ठ ११२।

३ वही।

४ ज० ए० सा० ब० यू सिरीज ५ (१०६६), १६४।



भी इस उपाधि में विभूषित थे। महत्त्व का विषय यह है कि इस काल में अधिकारियां और अधीनस्थ सामान सरदारों को 'प्राप्त पचमहाशब्द की आडम्ब युक्त उपाधि भी दी जान लगी। पूर्वी भारत में यह उपाधि कुछ बड़े बड़े राज्याधिकारियों को प्राप्त थी। भास्करवर्मन के एक अनुज्ञापत्र का मुख्य लेखक प्राप्त-पचमहाशब्द के रूप में विदित था। पश्चिमी भारत में गुजर राजा द्वितीय डडह ने यह उपाधि धारण कर रखी थी<sup>२</sup> और सातवीं सदी के तृतीय चरण में उसने यह गौरव संद्रका का प्रज्ञान किया था।<sup>३</sup>

राष्ट्रकूट सरदार नन्नराज, जो दत्तदुर्ग के पूवजा में था अपने ६३१-३२ के एक दानपत्र में दावा करता है कि उसे पचमहाशब्द की गरिमा प्राप्त थी, जिसे उसने व्यक्तिगत पुष्पाय से अर्जित किया था और जो उसके पूवजा का नहीं उपलब्ध थी।<sup>४</sup> उसमें ऐसा विनिर्णय होता है कि कोई भी व्यक्ति अपने प्रभु की किसी महत्त्वपूर्ण सेवा के द्वारा ही इस गौरव का पात्र बन सकता था। बारहवीं सदी की एक रचना मानसाल्लास के अनुसार इस शब्द से पाच वाद्ययंत्रों के प्रयोग का बोध होता है।<sup>५</sup> इनकी चर्चा जन लेखक रवकात्याचाय ने भी की है और लिगायन सम्प्रदाय के एक लेखक ने इनके नाम इस प्रकार गिनाये हैं श्रग, तम्मण, गल, भेरा और जयधट।<sup>६</sup> यह उपाधि पहले गायक मर्दोच्च मत्ताधारी ही धारण कर सकते थे कि तु वास्तव में सामन्तों का भी यह उपाधि दी जान लगी।

गुप्त काल में राजा द्वारा नियुक्त किये गये गात्रों के प्रधान लोग अध-नामान अधिकारी बनने जा रहे थे जिन्हें मुख्यतः अपने लाभ की ही चिन्ता बनी रहनी थी। मौर्य काल में जो कायद्वि अधीश्वर (सीनायभ) लोग राज्य के हित के लिए कर रहे थे वे कायगुप्त काल में गात्रों के प्रधान (ग्रामाहिरयायुक्त) बनना घर भरने के लिए कर लगे।<sup>७</sup> मध्य भारत में प्राप्त पाचवीं सदी के प्रारम्भ के कुछ अभिलेखों में आयुक्तों का उल्लेख हुआ है और ऐसा जान पड़ता

१ धार० बी० पाठे विष्णुभिल ऐड निदरेरी इन्डिया, पत्तिया ८७ ८।

२ का० इ० इ० जि० ८ न० १६ पत्तिका ३१।

३ ए० इ० २८ न० २४, पत्रक ए० पत्तियाँ ११ १२, फलक बी०, पत्तिका १६।

४ अन्नकर विष्णुकुण्ड एड देवर टाइम्स, पृष्ठ ७।

५ इ० आक १३३६।

६ इ० ए०, १२, पृष्ठ ६६।

७ कामधूर, अ० ५ ५५।



है कि वह काम अधिपतारी के तहत चल रहा है। सामन्तशासन द्वारा राजा के नाम से देश की सेवा-कार्य में प्रयत्न करने के लिए उन्हीं के द्वारा राजा को दृष्ट करके वह जो कुछ करके करता था उन्हीं के लिए बड़ा शिष्टाचार राजा को भेज दिया था। इसी प्रकार की बात यह है कि वह कथक शिष्टाचार में राजा को भेज दिया था। इसी प्रकार भी मन्तव्य था कि जबकि राजा के लिए ही इस प्रकार शिष्टाचार किया जा सकता था।

सामन्तशासन में एक नए ढंग के जीवन का उदय हुआ जहाँ राजा-शासन राजा के आश्रय मिलता था। मारुतपुर पुराण कहता है कि राजा के आश्रय में अधिपतारी दृष्ट और अधिपतारी राजा के लिए एक नए ढंग के जीवन और शरीर चारी तथा शरीर की धोर में दूरियों की जमान और शरीर-चारी पर जान था। राजा-शासन प्राप्त होने का यह अनुभव था कि प्रथम के समय ही वह का काम करता था राजा-शासन जीवन में सामन्तशासी प्रवृत्ति के प्रवृत्ति के कारण पला हुआ।

सामन्तशासी सम्बन्धों के विकास में राजा-शासन की उम्र प्रवृत्ति में भी बड़ी सहायता मिली जिसमें पराजयी राजा को छोड़कर राजा का जीवन कर उह इस बात पर पुनः प्रयत्न करने लगा था कि वह उम्र कर देने के लिए और उससे प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए करता था। यह प्रवृत्ति समुद्र गुप्त के समय में अपनी पराजय पर पहुँच गयी। उसी बखतर के युग में भारत के विंगल भू-भाग को जीत लिया और अधिपतारी विजित राजाओं और मन्तव्यों से उपयुक्त रीति से अधिपतारी स्वीकार करवा कर उह अपने अपने पक्ष पर छोड़ दिया। परिणामस्वरूप अब सामन्तवादी सम्बन्धों में अब पमान पर स्थापित हो गए और फिर समुद्र गुप्त के उत्तराधिपतियों ने भी देश-विजय के सम्बन्ध में उसी के उदाहरण का अनुकरण किया। यद्यपि समुद्र गुप्त की हलाहलवादा प्रवृत्ति में सामन्तशासी की चर्चा नहीं है तथापि उन्हीं शताब्दी में उत्तर भारत के अधिपतारियों ने विजित राजाओं के लिए सामन्तवाद का प्रयोग

१ कौ० इ० इ० जि० ४ न० ६ पृष्ठ २ (एक नूनि अनुदान के सन्दर्भ में आयुक्त का ही उल्लेख हुआ है) न० ७ पृष्ठियाँ २४।

२ वामयुक्त अध० ५ २५।

३ वही।

४ मारुतपुर पुराण ४६ ४६। इस अध्याय का म० एन० दत्त द्वारा किया गया अग्रणी अनुवाद पार्जोटर के अनुवाद से ज्यादा सही जान पड़ता है।

किया जाता था। 'अथशास्त्र', तथा अगोत्र व अभिलेखा में इस 'अ' का जिस रूप में प्रयोग हुआ है<sup>१</sup> उसमें स्पष्ट है कि मौर्य काल में इसका मतलब था स्वतंत्र पड़ोसी। मौर्योत्तर काल की स्मृतियाँ में इसका प्रयोग पड़ोसी भूस्वामियाँ के अर्थ में हुआ है। यह मत कि इन स्मृतियों में सामन्त का प्रयोग सरदार के अर्थ में हुआ है<sup>२</sup> ठीक नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार यह भी सोचना निराधार है कि मनु न (अ० ७ १३६ और ९) उपज, कर, जुर्माना आदि राजा या देश के शासक द्वारा नहीं, बल्कि सामन्तों द्वारा वसूल करने का विधान किया है।<sup>३</sup>

एसा जान पड़ता है कि दक्षिण भारत में पाँचवीं शताब्दी के तृतीय चरण में सामन्त 'अ' का प्रयोग अधीनस्थ सरदार के अर्थ में किया गया है क्योंकि शास्त्रिक्रमण के काल (लगभग ४५५-७०) के एक पल्लव अभिलेख में 'सामन्त च्चडामणय' 'अ' पद आया है।<sup>४</sup> इसी सदी के अग्निम चरण में दक्षिणी और पश्चिमी भारत के कतिपय दानपत्रों में भी यह 'अ' अधीनस्थ सरदार के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।<sup>५</sup> एसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत में 'अ' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में सबसे पहले बगान के एक अभिलेख में और मौवरि सरदार अर्वातिवमन के बाराबार पहाड़ी के गुहा अभिलेख में हुआ है। अर्वातिवमन के अभिलेख में उसका पिता को 'सामन्त च्चामणि' कहा गया है।<sup>६</sup> पुरातिथि शास्त्र की दृष्टि से यह अभिलेख ५१५ ईस्वी अर्थात् हड़प्पा अभिलेख के काल से पहले का माना गया है।<sup>७</sup> अतएव अर्वातिवमन के पिता का काल ५०० ईस्वी के आसपास माना जा सकता है। उनका मौवरि गुप्त सम्राट के सामन्त थे। इसके बाद सामन्त शब्द का महत्प्रयुक्त अन्वय हम यशोधरमन (लगभग ५२५-३५ ईस्वी) के मत्स्योत्तर प्रस्तर-स्तम्भ में मिलता है। इसमें उसने सारे

१ अथशास्त्र, १, ६, स० स० २, पक्ति ५।

२ मनु स्मृति (म० बु० ई०), अ० ८, २८६-९ यात्रकक्य स्मृति, २ १५२ ३।

३ बी० एन० दत्त हिन्दू लॉ ऑफ इंडिया, पृष्ठ २७।

४ प्राणनाथ दत्तमिश्र रुडिशस एन ए मि एन इन्डिया, पृष्ठ १६०।

५ भार० बी० पांडे, हिस्टोरिकल ऐंड लिटरेरी इन्डिया, न० २६ पक्ति ३१।

६ इन उत्खरणों का सफलन एल० गोपाल न जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (भाग १ और २, अप्रैल १९६३) में निचे 'सामन्त—इट्स वरीयिंग सिग्निफिकेंस इन ए शिएट इ इंडिया' शीर्षक निबन्ध में किया है।

७ बी० इ० इ०, जि० १, न० ८६ पक्ति ४।

८ भार० बी० बसाव, दि हिन्दू ऑफ नाथ एंड इन्डिया, पृष्ठ १०५।

उत्तर भारत के सामन्तों को पराजित करने का दावा किया है।<sup>१</sup> छठी शताब्दी में बलभी गणक सामन्त महाराज और महासामन्त की उपाधि धारण किया करते थे। धीरे धीरे सामन्त शब्द का प्रयोग पराजित सरदारों के अनिर्दिष्ट राज्याधिकारियों के लिए भी होना लगा। इस प्रकार कन्नड़ चर्च युग के अभिलेखों में ५६७ ईस्वी से उपरिवा और कुमारामात्या का स्थान राजाशाही और सामन्तों में ले लिया।<sup>२</sup> बाद में हर्षवर्धन के भूमि अनुदानपत्रों में सामन्त महाराज और महासामन्त शब्दों का प्रयोग बड़े बड़े राज्याधिकारियों की उपाधियों के रूप में किया गया है।<sup>३</sup>

समुद्र गुप्त के अधीनस्थ सरदारों के लिए सामन्त शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है किन्तु पद्याम अभिलेख में उनके दावित्वा का स्पष्ट निर्णय किया गया है। अपने अपने सिंहासनों पर पुनः प्रतिष्ठित कर लिये जाने के बन्ने विजित और अधीनस्थ राजाशाही संपत्तियों की जाती थी कि वे सभी कर प्रदान कर राज्यादारा का पालन करें विवाह में अपनी बेटियाँ दे और विजेता के प्रति श्रद्धा भक्ति प्रदर्शित करें।<sup>४</sup> बाणपहना लखक है जिसने सामन्तों के कर्तव्यों का सूत्र किया है। उसने हर्षचरित में समुद्र गुप्त के अभिलेख से प्राप्त इस महत्त्वपूर्ण सामग्री पर एक प्रकार का भाष्य सा प्रस्तुत कर दिया है। उसमें हम देखते हैं कि पुत्रभूति ने अपने महासामन्तों को अपना कर दे (कर देने वाला) बना लिया था।<sup>५</sup> सम्राट् सामन्तों द्वारा प्रशासित प्रदेशों की प्रजा में कर न लेकर उन सामन्तों से ही लेता था।<sup>६</sup> सम्राट् के इन सामन्तों को अपनी इच्छानुसार करों में वृद्धि करने मयवा नये कर लगाने की छूट थी या नहीं यह स्पष्ट नहीं है किन्तु अपने अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में राज कर के लिए उत्तरदायी वे ही लागू थे।

कादम्बरी में पराजित राजाशाही द्वारा जो निश्चय ही सामन्त बना लिये गये थे राजा को प्रणाम करने के पाँच तरीकों का उल्लेख हुआ है। इनमें से एक है सिर झुकाना दूसरा सिर झुका कर सम्राट् के चरणों का स्पर्श करना तीसरा है सिर झुकाकर सम्राट् के तलवों का स्पर्श करना (जिसे हर्षचरित

१ सि० इ० पृष्ठ ३६४ श्लोक ५।

२ का० इ० २० जि० ४ भूमिशा पृष्ठ १४१।

३ ए० इ० जि० १ ६७ और प्रागे जि० ४ पृष्ठ २०८।

४ पृक्ति २२ २५।

५ कर्दीहृत महासामन्त हर्षचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन पृष्ठ १००।

६ अग्रवाल हर्षचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन, पृष्ठ २१६।

में पराजित सामन्त द्वारा सम्राट की चरण धूमि लेना कहा गया है) और एक अन्य तरीका है सम्राट के चरणों के निकट मस्तक में धरती का स्पर्श करना।<sup>१</sup>

सामन्तों का यह दायित्व तो बिल्कुल स्पष्ट है कि वे सम्राट की वायिक् कर दिया करें। उनके दूसरे दायित्व का, अर्थात् व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर सम्राट के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करने के कर्त्तव्य का बहुत ही सजीव वर्णन वाण ने किया है। उसमें हम देखते हैं कि पराजित महासामन्त किस प्रकार अपने-अपने शेर और मोलि उतार कर सम्राट का अभिवादन करते थे। हथ के राजदरवार में तरह-तरह से उका मान मदन किया जाता था। कुछ लोग विजनधारी का काम करते थे कुछ अपनी अपना गदनो में तलवार बांध कर प्राणा की भीख मागत थे, और ममस्त शीसपत्ता से बचित कुछ दूसरे सामन्तगण बड़ी आनुरता से सम्राट का करबद्ध नमस्कार करते थे और विजेता द्वारा अपने भाग्य का निणय होने तक दाढ़ी नहीं बनाते थे।<sup>२</sup>

पराजित राजाघ्रास, जो स्पष्टतः सामन्त बना लिए गये थे राजदरवार में तीन तरह की सेवाएँ ली जाती थी। वे चौर धारी का काम करते थे जसा कि हथ के राजदरवार में पराजित गुरु महासामन्त किया करते थे।<sup>३</sup> वे अपने हाथ में बँत लेकर दरवार में द्वारपाल का काम किया करते थे।<sup>४</sup> और कुछ सामन्त राजा की गुमनामना करते हुए उसका त्रयकार किया करते थे।<sup>५</sup> पराजित राजाघ्रास द्वारा सेवा के दोन तीन तरीका (परिचारिकीकरण) का वर्णन वाण ने 'कादम्बरी' में किया है।<sup>६</sup> जो चीज स्पष्टतः अपमान जसी लगती है उसी को वे अपना सौभाग्य और गौरव समझते थे। वे द्वारपाल से बार बार पूछते थे कि सम्राट के दर्शन कब होंगे।<sup>७</sup>

१ अग्रवाल कादम्बरी पृष्ठ १२८। अग्रवाल के अनुसार प्रणाम के दोन तरीका चौथी और पाचवी विधिया शेरधारीभव-तुपादरनासि शब्द पत्र के अंतगत आ जाती हैं।

२ हथचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन, पृष्ठ ६०।

३ वही।

४ वही, पृष्ठ १६४।

५ अग्रवाल कादम्बरी पृष्ठ १२७८।

६ वही।

७ हथचरित एक साम्प्रतिक अध्ययन, पृष्ठ ६०।



को दान में देना है,<sup>१</sup> और यह काय एक साम्राज्यपत्र के जरिये सम्पादित कर दिया गया।<sup>२</sup> यह प्रथा पूर्वी भारत तक ही सामित नहीं थी। ईश्वरी सन की सातवीं सना<sup>३</sup> के पूर्वार्ध में मध्य प्रदेश में सामंत इन्द्रराज ने एक ब्राह्मण को एक गाँव दान में दिया<sup>४</sup> और स्पष्ट है कि उसने इसके लिए अपने प्रभु की अनुमति नहीं ली क्योंकि इसमें उसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

एसा जान पड़ता है कि राजदरवार में रहनेवाले सामन्तों को कतिपय सामाजिक दायित्वा का भी निवाह करना पड़ता था। वे अनेक मनोरंजन में भाग लेते थे—जैसे घूत शीड़ा, पाँसा खेलना, बांसुरी बजाना राजा का चित्र बनाना, पटलिया सुनझाना आदि।<sup>५</sup> इसी प्रकार समारोहों के अवसरों पर उनकी पत्नियाँ का भी राजदरवार में उपस्थित होना पड़ता था।<sup>६</sup> इस प्रकार सामन्त सैनिक और प्रशासनिक दृष्टियाँ ही नहीं बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी अपने प्रभु से सम्बद्ध रहते थे।

बाण ने सामन्त महासामन्त, आप्तसामन्त प्रधानसामन्त, दानुमहासामन्त और प्रतिसामन्त—इतने तरह के सामन्तों का उल्लेख किया है। इनमें से महासामन्त स्पष्टतः सामन्त से एक श्रेणी ऊपर था और दानुसामन्त पराजित दानु मरदार था। आप्तसामन्त<sup>७</sup> गायद व लोग थे जिन्होंने स्वेच्छा से अपने प्रभु की अधीनता स्वीकार कर ली थी। प्रधानसामन्त सम्राट के सबसे विश्वस्त व्यक्ति थे, और वह उनकी सलाह को अपना कभी नहीं करता था। तबिन प्रतिसामन्त गद्द का शय बताना कठिन है।<sup>८</sup> गायद वह राजा से विरोध भाव रखनेवाला सामन्त था या हाँ सकता है वह मात्र एक अविनयी सामन्त रहा हाँ। जा भी हाँ इतना स्पष्ट है कि इस काल में सामन्त शासन का चलन अच्छी तरह हो गया था, और सामन्तों के कम से कम छ प्रकार होते थे।

१ वही, न० ७, पत्तियाँ १७।

२ वही, पत्तियाँ ७१४।

३ ए० ३० ३३ २०६।

४ वही, न० ६१ पत्तियाँ ७१५।

५ अश्वान माहमगी पृष्ठ १००।

६ अच्युति का सामन्तिक अध्ययन, पृष्ठ १४३।

७ वही पृष्ठ ११५।

८ "प्रतिशामन्त चक्षुषामिव नृणांनिद्रा कुमुदनानाम" अच्युति पक्ष सामन्तिका अध्ययन, पृष्ठ २१८।

राजाओं का स्थिति भी सामन्तों से बेहतर नहीं थी। राजा तीन तरह के होते थे। एक तो थे शत्रु महासामन्त। य सन्नाट की तरह तरह की सेवाएँ करते थे और इनके साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जाता था। दूसरे थे महीपाल जिन्हें लाचार होकर सन्नाट के प्रताप के सामने झुकना पड़ता था। तीसरे वे राजा थे जो सन्नाट के प्रति अनुराग से प्रेरित होकर उसके पास आते थे।<sup>१</sup> बाण ने एक स्थान पर अनुरक्त महासामन्तों का उल्लेख किया है। इससे शायद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे अपने प्रभु से विशेष रूप से सम्बद्ध थे।

सामन्तों का राजाओं और सामन्तों का मुख्य कर्तव्य अपने प्रभु के लिए सेना जुटाना था। हय के मनीष कूच के विवरण से ज्ञात होता है कि उनकी सेना में राजाओं द्वारा दिये गये सैनिक और घोड़े शामिल थे और उनकी सहायता इतनी बनी थी कि अपने मामल एकत्र उभर विशाल सैन्य समूह को देखकर हय चकित रह गया।<sup>२</sup> ह्येस्माग ने हय की सेना का जो विवरण दिया है उस अगर हम अतिरिक्त मानें तो भी वह सना वास्तव में मौर्य वाहिनी से बनी रही होगी। अब ध्यान देने की बात यह है कि एक तो हय का राज्य मौर्यों के राज्य में बहुत छोटा था और उस पर भी उनकी बसा प्रभावकारा नियंत्रण नहीं था जसा कि मौर्य राजाओं का अपने राज्य पर था। फिर वह इतनी बड़ी सेना कहाँ से रख पाता होगा और अपने निकट छोटे राज्य की रक्षा के लिए इस रखने की आवश्यकता भी क्यों थी? इसलिए एक ही बात सम्भव लगती है कि यह एक सामन्तों की सेना थी, जो युद्ध काल में ही खड़ी की जाती थी। एहील अभिलेख से भी इस अनुमान की पुष्टि होती है। इसमें हय के प्रबल शत्रु पुलकशिन की प्रशंसा करते हुए यह भी बताया गया है कि हय अपने सामन्तों द्वारा जुटायी गयी सेना से सज्जित था।<sup>३</sup> स्पष्ट ही सामन्तों द्वारा अपने प्रभु के लिए सेना जुटाने के चलन के परिणामस्वरूप प्रभु का सामन्तों का मुख्यापेक्षी बन जाना पड़ा होगा।

यह स्पष्ट नहीं है कि इन सामन्तों का हय की ओर से अनुदान स्वरूप गाँवों के राजस्व भी मिलेगा या नहीं। किंतु सन्नाट और अग्रहारिका के सम्बन्ध

१ वही पृष्ठ ६० मिनाइय अग्रवाल वृत्त हयहचरित १५ सार्वभौमिक अभियान पृष्ठ ४३ म।

२ वही पृष्ठ २०६ १०।

३ सामन्तमतामुकुटमणिमयूरवाक्पातपादारविन्दु श्लोक २३।

का आघार हो यही था कि उह मन्नाद्, न अनुदान म गावा की आमदनी द रखी थी । मगर ऐसा लगता ह कि अग्रहारिका का अपने दाता और संरक्षक क प्रति कोई कृतव्य नहीं था । ह्यचरित म उल्लेख है कि कुछ अग्रहारिक ह्य का स्वागत करन के लिए दही, गुड और शकर लकर स्वेच्छा से अपने अपने गावा से बाहर आकर खडे हो गये, और दण्डधारिया न उन्हें डरा धमकाकर दूर कर लिया ।<sup>१</sup> लेकिन सामान्यतया य लाग इससे अधिक कुछ करते भी नहा थे । सब, जब ह्य मैत्रिक अभियान पर निकलता तब य उमक लिए शुभकामना करत थे जिसकी विधि यह थी कि गावा के बड-बुजुग (महत्तर) अपने अपने हाथा मे कला उठाकर खडे रहत थ ।<sup>२</sup>

किन्तु सामन्ता, अधीनस्थ राजाआ आदि के कृतव्या के इस विवचन से हमे एसा न मान लेना चाहए कि गुप्त-काल अथवा गुप्तोत्तर-काल की किसी स्मृति या गाम्भ म इन कृतव्यो का स्पष्ट निर्देश किया गया है । हा कतिपय समकालीन साहित्यिक कृतिया से इनका स्पष्ट संकेत अवश्य मिलता है ।

घोडा आर हाथिया—विशेषकर हाथिया—पर राजकीय एकाधिकार समाप्त हान स कन्द्रीय सत्ता की जडें और भी कमजोर पड गयी । एसा लगता है कि प्राङ्ग-मौय काल म हाथी सिफ राजा ही रख सकता था । एक जातिक क्या म उल्लेख है कि एक राजा ने तीस परिवारा क एक भाव को पुरस्कार स्वरूप एक हाथी दिया ।<sup>३</sup> जहा गकिन और सत्ता एक के बजाय अनेक व्यक्तिया के हाथा में होनी थी वहा गामक वग के प्रत्येक सम्भ्य का राय का एक हाथी दना पडता था जिसका उन्हाहरण बिआस के तट पर बसे ५००० कुलीना का सम्भ्य है ।<sup>४</sup> मगाम्भनीज क विवरण म पात हाता ह कि विभी भीगर सरकारी व्यक्ति को घाटा या हाथी रखन की अनुमति नहा थी बर्राकि य जानवर राजा की विगप सम्पत्ति मान जात थ ।<sup>५</sup> मेगास्थनीज का उद्धृत करते हुए स्ट्रुबो कहता

१ ह० च० पृष्ठ २१२ ।

२ वही ।

३ जानक, वि० १, पृ० २०० ।

४ स्ट्रुबो, पृ० १५ ३७ मककिडल, एण्डिएट्ट निया एज टिम्ब्रान्ड इन कनाभिकल लिटरेचर, पृष्ठ ४५ ।

५ स्ट्रुबो, पृ० १५, ४१ ४३, मककिडल, एण्डिएट्ट निया एज टिम्ब्रान्ड नाइ मगाम्भनीज, ऐण्ड एरियन पृष्ठ ६० ।



खराब नहीं हुई। फिर भी तीसरी शताब्दी के आस पास लिखी विष्णु स्मृति में कहा गया है कि सम्पत्ति और सुरक्षा प्राप्त करने के लिए गृहस्थ का किसी श्रीमन्त से निवेदन करना चाहिए।<sup>१</sup> किन्तु, अनुगतता, अथात् बलवाना को गरण लेने के वास्तविक उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। बिहार के हजारिवाग जिल में प्राप्त ८वीं शताब्दी के आसपास के एक अभिलेख के अनुसार तीन गाँवों के निवासियों ने अपने आपको एक व्यापारी के हाथ में सौंप दिया जिसने उनका राजा द्वारा उनसे मांगा गया अवलगन चुकाया और उन्हें सुरक्षा प्रदान की।<sup>२</sup> राजा की अनुमति लेकर उन्होंने उस व्यापारी से अपना राजा बनने का निवेदन किया और उसने तुरन्त उस स्वीकार कर लिया।<sup>३</sup> ऐसा माना जाता है कि 'अवलगन या आलग गद्द मूलतः कनड भाषा का गद्द है और इसका मतलब हाता है अपने प्रभु की मन्त्रि या दूसरी सेवा करना।<sup>४</sup> यहाँ हम अपनी धार में इतना और कह सकते हैं कि चूँकि ८वीं सदी से बणाटा कपाला की मेना में काम करने का उल्लेख मिलता है इसलिए हो सकता है यह गद्द उन्हीं लोगों के साथ उत्तर भारत में आया हो। किन्तु यह निश्चित नहीं है कि इस अभिलेख में प्रयुक्त अवलगन गद्द का अर्थ यही है। इस अभिलेख के अनुसार मगध का राजा आग्निहोत्र तीन गाँवों से अवलगन मांगता है।<sup>५</sup> स्पष्ट ही इसका मतलब यह है कि वह नकद और किस्मा में बकाया कर मांग रहा है। यहाँ अवलगन का अर्थ किसी प्रकार का सामन्ती सेवामगाना ठीक नहीं जान पड़ता। हाँ जब व्यापारी उदयमान तीना गाँवों की ओर से अवलगन देने को तयार हो जाता है और राजा उस उन तीना गाँवों का राजा बना देता है<sup>६</sup> तो इसे हम प्रभु और सामन्त के बीच हुए यूरोप के ढग के सामन्ती अनुबंध का एक उदाहरण मान सकते हैं। फिर जब उदयमान इनमें से एक गाँव अपने छोटे भाई का दे देता है जो एक प्रकार से उपराजा बना दिया जाता है<sup>७</sup> तब हम धर्मोत्तर उपसामन्तीकरण का

१ अथ यागश्चेमाथमीश्वरमधिच्छत ।

२ ए० इ० २ न० २७ पत्तियाँ ६७ ।

३ वही पत्तियाँ ११० ।

४ समरौज आफ वेपस इन्डियन हिस्ट्री कायेस का रजत जयन्ती अधिवगन  
(पूना १९६३) पृष्ठ १५ ।

५ ए० इ० २ २७ पत्ति ७ ।

६ वही पत्तियाँ ७८ ।

७ वही पत्तियाँ ९११ ।

स्पष्ट उदाहरण देखने को मिलता है। पूर्व मध्यकालीन साहित्य में 'भवलग्न' शब्द का प्रयोग ८वीं शताब्दी की सिफ़ दा कृतियां में हुआ है और फिर बाद में १२वीं, १४वीं और १६वीं शताब्दियों के साहित्य में हुआ है।<sup>१</sup> इसलिए इसका ठीक ठीक अर्थ समझ पाना और भी कठिन है। किन्तु इसका अर्थ चाह जा हो, उक्त अभिलेख अनुगतता और उपसामंतीकरण, इन दो सामन्तवादी प्रवृत्तियों की अंतर स्पष्ट संकेत करता है और इनके परिणाम-स्वरूप केन्द्रीय सत्ता निस्संशय और भी क्षीण हो गई होगी।

केन्द्रीय सत्ता के उत्तरोत्तर कमजोर होने और स्थानीय सरदारों-श्रीमन्तों की शक्ति वृद्धि का संकेत नारद के एक विधान से भी मिलता है। उसके अनुसार जा लोग राजा का विरोध करते हैं या कर की अन्यायों में बाधा डालते हैं, उनसे निवृत्तन के लिए ऐसे ही दूसरे लोग को प्रेरित करना चाहिए।<sup>२</sup> यद्यपि 'फूट डालो और राज करो' की नीति बहुत पुरानी है फिर भी अराजक तत्वा को एक-दूसरे से खिलाफ भिडा देने के सुभाव से यही प्रकट होता है कि राज्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में काम करने वाले अधिकारियों में कतिपय गतिशील व्यक्तियों से निवृत्तन की क्षमता नहीं थी, और सम्भावना यही दिखाई देती है कि इन गतिशील व्यक्तियों की स्थिति सामन्ती समाज के मध्यवर्ती वर्ग की जमी ही रही होगी।

✓ जिन आर्थिक प्रवृत्तियों के कारण सामन्तवाद के उदय में सहायता मिली, उनका सही सही निरूपण कर सकना जरा कठिन है। इस सम्बन्ध में पहले तो इस बात पर विचार करना है कि ब्राह्मणों और मन्दिरों को अनुदान में दी गई जमीनों का वादा था या परती और ये ग्रहीता अथवा दूसरे भूस्वामी स्वयं ही भूमि में जोतदार थे या इनकी जमीन अस्थायी रूप से काम पर रखे गये किसान लाग जानते थे। दक्षिण भारत के पश्चिमी हिस्से में प्राप्त १३० ईस्वी के एक स्तूपवाहन अभिलेख में राजकीय जमीन का एक टुकड़ा बौद्ध भिक्षुओं को दान किया गया है और कहा गया है कि जहाँ जमीन जोती नहीं जाती है वहाँ गाव

१ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस के पूना अधिवेशन (१९६३) के समक्ष प्रस्तुत इस विषय पर लिखा दत्तारथ शर्मा का शोध निबंध, जिसका प्रकाशन अब तक नहीं हो पाया है।

नहीं बसता है।<sup>१</sup> इससे साफ जाहिर होता है कि कम से कम दूसरी शताब्दी में जो गाँव दान किये जाते थे उनमें जोत की जमीन रहती ही थी। आंध्र प्रदेश के कृष्णा गुटुर क्षत्र में प्राप्त तीसरी शताब्दी के दूसरे चरण के अभिलेखों में इक्ष्वाकु राजा को सक्का हला से जातने लायक जमीन दान करने वाला कहा गया है।<sup>२</sup> नासका द्वारा भूमि की माप के लिए हल का प्रयोग से साफ जाहिर होता है कि आंध्र के लग तीसरी शताब्दी के पहले से ही हल से जमीन जोतते थे। दक्षिण भारत के पश्चिमी हिस्से में ईस्वी पूर्व की पहली शताब्दी में ब्राह्मणों का यह भाव से दान किया गया गाँव<sup>३</sup> बसे थे यह तो हम नहीं जानते किन्तु यह स्पष्ट है कि दूसरी और तीसरी शताब्दियों में दान किया गया मत्तरी-वारी होती थी।

उत्तर तथा पूर्वी बंगाल के गुप्त कालीन भूमि अनुदानों में खिल और अप्रहत भूमि का प्रयोग हुआ है जिसे यह अनुमान लगाया गया है कि ब्राह्मणों को ऊपर और परती जमीन दी जाती थी। लेकिन यह निष्कर्ष सभी जगह लागू नहीं होता। ४४८ ईस्वी के बग्राम ताम्रपत्र अभिलेख में प्रयुक्त खिल क्षत्र शब्द का अर्थ परती और ऊपर जमीन नहीं लगाया जा सकता। प्रथमतः गुप्त कालीन कृति नारद स्मृति में खिल शब्द की परिभाषा करते हुए बताया गया है कि इसका मतलब ऐसी जमीन है जिसे तीन साल से जाता नहीं गया हो।<sup>४</sup> दूसरे उपयुक्त अनुदान में खिल क्षत्र का साथ साथ मन्दिरों में सेवा करावाले कुछ लोगों के लिए थोड़ी सी वास भूमि भी दी गयी है<sup>५</sup> जिससे प्रकट होता है कि वह भूमि विलकुल ऊपर और परती नहीं थी। इसी प्रकार ५४३ ईस्वी के दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख में अप्रहत और खिल शब्दों का प्रयोग कुछ अर्थों में ही हुआ जान पड़ता है क्योंकि यहाँ जमीन की इतनी कमी थी कि पाच कुल्यवाप

१ तत्रोत्तरी (न) कपते स च गमा न वमनि, सि० इ पृष्ठ १६४ पत्तियाँ ३४।

२ वही पृष्ठ १६२ २० पत्तियाँ ४५ पृष्ठ २२२ पत्ति ४ पृष्ठ २२७ पत्ति १ पृष्ठ २२६ पत्तियाँ ३४ पृष्ठ २३० पत्ति ६।

३ वही पृष्ठ १८७ पत्तियाँ १० ११।

४ वही पृष्ठ ३८३ पत्तियाँ ६७।

५ नारद स्मृति ११ ४६

६ सि० इ० पृष्ठ २४३ पत्ति ६ और पा० टि० ६।

७ वही पृष्ठ ३८८ पत्तियाँ ६७

जमीन तीन जगहा में खरीदनी पडी ।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त यहाँ भी अप्रहत और खिल भूमि के साथ साथ वास्तु अर्थात् वास भूमि दी गयी थी,<sup>२</sup> जिससे महत्मानता कटिन हो जाता है कि वह जमीन उत्तर और परती थी। और फिर यह बात भी है कि इस भूमि के साथ सबत्र अप्रहत विगणन का ही प्रयाग नहीं किया गया है एक स्थान पर इस पाँच कुल्यवाप जमीन का खिल कहा गया है ।<sup>३</sup> तामोदरपुरका एक दूसरा भूमि अनुदान, जा पाँचवी गतादी के अंतिम चरणा का है बतलाता है कि एक व्यापारी ने कोकामुलस्वामि नामक देवता का दान करन के लिए जो चार कुल्यवाप जमीन खरीदी और देवतवराहस्वामि के लिए जो सात कुल्यवाप जमीन खरीदी वह निश्चित रूप से आवाज जमीन थी ।<sup>४</sup>

आधुनिक मध्य प्रदेश के पूर्वी हिस्से में गुप्तों के परिव्राजक सामन्तों के राज्य में मदिरा और ब्राह्मणा को दिय गये भूमि अनुदानों का दाता में बंगाल के अनुदानों से भिन्न थे । बंगाल के अनुदानों में ग्रहाता को सिर्फ जमीन के टुकड़ ही दिय गये थे, और दाता लोग सामान्य ध्वजिन थे, जिन्होंने जमीनों खरीदकर दान की थी। किन्तु मध्य भारत के अनुदान सामन्त राजाओं ने दिय थे, और ग्रहीताओं को पूरे व पूरे गाँव प्राप्त हुए थे । बंगाल के अनुदान सरकारी अधिकारियों की अनुमति से दिय गये थे, और उनमें ग्रहीताओं का सिर्फ करों से मुक्ति दी गयी थी किन्तु, मध्य भारत के अनुदानों में ग्रहीताओं का प्रशासनिक बंधन से भी मुक्त कर दिया गया था । फिर भी, बंगाल के अनुदानों की तरह मध्य भारत के अनुदानों में भी परती जमीन के बोधक गण का प्रयोग रुढ़ अर्थ में ही किया गया है । मध्य भारत में भूमिच्छिद्रयाय के अनुसार कई अनुदान दिय गये, जिससे देखने में लगता है कि इन दानों का उद्देश्य परती जमीन को आवाद कराना था । फिर भी इनमें ऐसी कोई दूसरी बात नहीं मिलती जिससे प्रकट होना हो कि दान में दिय गये गाँव परती और बिना आवादी के थे । अविनाश अनुदानों में भूमिच्छिद्रयाय गण का प्रयोग मात्र एक कानूनी मायता का निवाह करने के लिए ही किया गया है । पिष्टपुरिका देवी की पूजा और एक मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए ब्राह्मणा को दिय गये दो गाँव स्पष्टतः आवाद थे यद्यपि इनका दान भूमिच्छिद्रयाय के अनुसार हुआ

१ सि० इ० पृष्ठ ३३८ ।

२ वही, पक्षियाँ १५ १८ ।

३ वही पक्षियाँ १७ १८ ।

४ वही, पृष्ठ २०८ पक्षियाँ ५ ७ ।

था।<sup>१</sup> इन गावां में ब्राह्मण तथा दूसरे लोग रहते थे जिन्हें अनुदान सूचना<sup>२</sup> दी गयी थी। एक बात और है। ये गाव पुतिदमट नामक एक व्यक्ति को (जा स्पष्टतया ब्राह्मण था) पहले ही दान में प्राप्त हुए थे और फिर उसने इन्हें कुमारस्वामि नामक पुरोहित को दे दिया<sup>३</sup> जिसके लिए उसने महाराज गवनाथ से अनुमति ली। यह उपसामन्तीकरण की प्रक्रिया का सातक है।

इसी प्रकार गुजरात और महाराष्ट्र में प्राप्त कलचुरि चंदि युग के अभिलेखा में जो पांचवीं स शताब्दी सातवीं शताब्दी तक के हैं, भूमिच्छिद्रण का प्रयोग स्पष्टतः ऐसे गावां की जमीन के टुकड़ों के अनुदानों के संबंध में किया गया है जो ब्राह्मण थे और जिनमें बेती बारी की जाती थी।<sup>४</sup> कुल नौ अनुदानों में से केवल तीन ऐसे हैं जिनमें जमीन के टुकड़े दान में दिये गए हैं। शेष छह में गाव ही दान किया गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन अभिलेखा में जो सबसे पुराना (पांचवीं शताब्दी की प्रारम्भिक दशाब्दिका का) है उसमें एक गांव के अनुदान के विषय में महाराज सुबधु का आदेश उस गांव के निवासियों को सूचित किया जाता है<sup>५</sup> यद्यपि यह गांव भूमिच्छिद्रण के अनुसार ही दान किया गया है। यदि पांचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी इस विषय के अनुसार बसे बसाय गाव दान किए जाते थे तो पूरी सम्भावना है कि छोटी तथा सातवीं शताब्दिका के अनुदानों में भूमिच्छिद्रण का उल्लेख एक औपचारिकता माना रहा होगा। गुजरात के एक भूमिच्छिद्रण अनुदान (६४२ ई०) में कुछ जमीन एक 'सागीवरम' (खेत पर बने घर) के साथ साथ दान की गई जान पड़ती है।<sup>६</sup> इसमें प्रकट होता है कि इस जमीन पर खेतों होनी थी। एक दूसरे मामले में तो दान की गई भूमि के आबाद हान का प्रमाण बहुत ही स्पष्ट है क्योंकि यहां बापो कूप तडाग आदि सिंचाई के साधनों के साथ साथ तिल भूमि दान की गई है।<sup>७</sup>

१ का० ६० ६० ३, न० ३१ पत्रियाँ ७ ११ और १३।

२ वही पत्रियाँ ७।

३ वही पत्रियाँ १० १८।

४ का० ६० ६० ६ न० ७ पत्रियाँ ६ न० ११ पत्रियाँ १० न० १४, पत्रियाँ २० न० १५ पत्रियाँ २१ न० १६ पत्रियाँ ३४ न० १७ पत्रियाँ ४ न० १६, पत्रियाँ १५ न० २०, पत्रियाँ १३, न० २१ पत्रियाँ २६ ७

५ सामप्रतिवासिन का० ६० ६० ६, न० ७ पत्रियाँ ५ ४।

६ वही न० २० पत्रियाँ १२ १३ और पृष्ठ ८० की पा० टि० १०।

७ वही, न० २१ पत्रियाँ २८।

इस प्रकार के लगभग तमाम अनुदानों में प्रायः एक ही तरह की शब्दावली का प्रयोग किया गया है। वह यह है कि अमुक गाँव अथवा भूमिखण्ड उद्भ्रम और उपरिस्तर, अर्थात् सभी तरह के करा और महमूला के साथ साथ दान किया जाना है, दाता उस क्षेत्र से कोई भेंट नजराना नहीं लेगा, वहाँ उसका कोई विशेषाधिकार नहीं रहेगा, और उसमें चाट भट आदि प्रवण नहीं कर सकते। इस शब्दावली के प्रयोग से भी प्रकट होता है कि ये क्षेत्र आवाद थे। कई अनुदानों में ग्रहीताओं का ऐसे लागा स जुमनि वमूल करन का भी अधिकार किया गया है, जो दम अपराधों के लिए लोपी सिद्ध हो चुके हैं। जिन करा और महमूला से ग्रहीताओं को छूट दी गई है, वे यौरान गाँव पर नहीं लगाय जा सकते थे। इस शब्द में अवनिरत्रयाय शब्द भी, जो भूमिच्छिद्रयाय का पर्याय है, कानूनी दृष्टि के निवाह के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के लिए मद्रास में ५७२ ई० में एक गाँव अवनिरत्रयाय के अनुसार दान किया गया परंतु वह गाँव भेंट नजराना और बठ बगार दन दोरे पर गय सरकारी अधिरारिया का खिलान विमान के लिए गुक देने तथा समस्त करा के दायित्वों में मुक्त घोषित किया गया है और साथ ही ग्रहीता को स्थानीय भगवा के फसल निबटार का भी अधिकार प्रदान किया गया है।<sup>१</sup> इससे उस गाँव के आवाद होने की पूरी सम्भावना प्रकट होती है।

इसलिए पाचवीं शताब्दी में लेकर सातवीं शताब्दी तक के भूमि अनुदानों में प्रयुक्त विल अप्रहत भूमिच्छिद्र और अवनिरत्रयाय का अर्थ लगाने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। जिस प्रकार अभिलेखों में प्रयुक्त आडम्बरयुक्त उपाधियाँ राजाओं की उपलब्धियाँ और प्रताप की धारक नहीं हैं उसी प्रकार जिन शब्दों का प्रयोग दान शान्ति में किया गया है वे उनका सही रूप को प्रकट नहीं करते। अक्सर ये शब्द यथाथ को प्रकट करने के बजाय नियम निवाह के लिए ही प्रयोग किये गये हैं।

ग्रामजनों का आदेश ग्रहीता ब्राह्मणों को सूचिन करन के साथ साथ उस गाँव के निवासियों का भी सूचिन किया गया है।<sup>२</sup> इससे प्रकट होता है कि अनुदान देने से पूर्व भी लोग वहाँ रहते थे। अधिकांश भूमि अनुदानों में विसपकर कलचुरि चंदि युग की पहली चार सदियों के अनुदानों में ग्रहीता ब्राह्मण के

१ कॉ० ६० ६०, १२०, पवित्या १८ २०।

२ कॉ० ६० ६० ३ २१, पवित ७।

मूल नियामस्थाना की चर्चा नहीं है यद्यपि उनका मात्र प्रायः भारद्वाज बनाया गया है। लेकिन जहाँ वही उनका निवास स्थान का उल्लेख हुआ है वहाँ वह जगह की गई भूमि से दूर नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार हमारे सामने एक बड़ी उदाहरण आते हैं जिनमें प्राचीन जमाने का भी कोई है और इनकी तुलना मध्य युगीन यूरोप की सामन्तवाणी प्रथाओं से की जा सकती है। अन्तर यह इतना है कि गुप्तकालीन और गुप्तोत्तर कालीन भारत में ग्रामीण लोग मुख्यतः पुरोहित वर्ग के थे और उनकी सत्ता कम थी।

एसा अनुमान है कि बंगाल में भूमि अनुदान की प्रथा का परिणामस्वरूप अधिक जमीन जात में आई और अधिक गाँव बने।<sup>१</sup> कोसम्बी ने भारत के अन्य प्रांतों के सम्बन्ध में भी इस अनुमान को लागू करने का प्रयास किया है।<sup>२</sup> गुप्त काल और गुप्तोत्तर काल में उत्तर भारत में कुछ इलाकों और पूर्वी बंगाल में एसी बात हुई होगी लेकिन मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र में सामान्यतया वैसे उदाहरण गाँव और सामान्य जमीन ही दात की जाती थी। चौरान इत्यादि में गाँव बसाने के बजाय बजर जमीन का प्राधान्य कराने का उद्देश्य ने ब्राह्मणों का भूमि अनुदान देने का प्रचलन प्रायः प्रायः मौर्य काल में प्रारम्भ हुआ जब यथा क्या मगध और कोसल में राजकीय भूमि का कुछ हिस्से ब्राह्मणों को दिया जात था।<sup>३</sup> यह प्रथा मौर्य काल में प्रचलित रही। उस काल में कर और दण्ड के अधिकारों से भुक्त कुछ भूक्षेत्र कतिपय ब्राह्मणों के लिए अलग रखे जाते थे।<sup>४</sup> इसका उद्देश्य अधिक भूमि को जोत में लाना था, क्योंकि अथशास्त्र की यह व्यवस्था नहीं बस्तियाँ बसाने की याचना 'जनपद' निर्माण का एक अंग है।<sup>५</sup> यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही।

गुप्त काल और गुप्तोत्तर काल में नये क्षेत्रों में बस्तियाँ बसाने में भूमि अनुदानों का बहुत बड़ा योग रहा। अभिलेखों से इस प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ऐसा अनुभव किया गया कि चौरान भूमि को जब तक जात के लायक नहीं बन पाता तब तक वह मालिक के किसी काम नहीं आ सकती और

१ पी० सी० चक्रवर्ती हिस्ट्री ऑफ बंगाल १ ६४८-६९।

२ एन द ट्राइकेशन टु द स्टडी ऑफ दिसिडियन हिस्ट्री पृष्ठ २६१-६२।

३ दीप निवाय १ ८७, १११ ११४ १२७ १ १ और २०४।

४ अथशास्त्र, १२ १।

५ वही।

इसलिए एमी भूमि को जोत म लान के लिए पुजारियो और मंदिरा को भूमि अनुदान दिये गये । बगाल म समाचारदेव का एक अभिलेख जो छत्ता गतादी के उत्तराद्ध म उत्कीर्ण हुआ था इसका प्रमाण है ।<sup>१</sup> इसके अनुसार जब एक ब्राह्मण न एक जिले के महत्तरा से कुछ जमीन मांगी, तो उहाने इस कारण उस जमीन देने का निणय किया कि वह जमीन खाई-बडडा और जगली जानवरों स भरी पड़ी थी और इसलिए न धम की दृष्टि से और न अर्थ की दृष्टि से ही राजा क किसी काम की थी, इसलिए उहाने सोचा कि अगर इमे अनुदानभागी ब्राह्मण करेगा तो हमसे राजा का धम और अर्थ, दाना ही दृष्टिमा से लाभ हो सकता है ।<sup>२</sup> दूसरे दानपत्रा मे ऐसा कुछ स्पष्ट रूप से तो नही कहा गया है लेकिन ग्रहीताओं को बजर भूमि देने के परिणामों की कल्पना सहज ही की जा सकती है ।

नोकनाथ के टिपडा ताम्र शासन स पता चलता है कि उनम पूर्वी बगाल के वन प्रदेश का कृषि के योग्य बनाने की नीति अपनाई । उसने एक सी से अधिक ब्राह्मणों को वन प्रदेश म जमीन और उह उसम अलग अलग और समुक्त हिस्स दिये ।<sup>३</sup> इस अनुदान म सिर्फ मुबारिक जिल की सीमाएँ ही बताई गई हैं जिसम वह वन प्रदेश स्थित था किन्तु लान की गई भूमि की सीमाएँ निश्चित नही की गई हैं । स्पष्ट ही उसका कारण यह था कि यह क्षेत्र ब्राह्मण नही था । जिन वन प्रदेश म दान की गई भूमि स्थित थी उनका वणन इस प्रकार किया गया है जिसम प्राकृतिक अप्राकृतिक का कोई भेद नही है जहा भाण्डिया और वेला का जाल मा बिछा हुआ है जहा हिरण भस, मानू बाघ, साँप आदि अपनी इच्छानुसार घरेनू जीवन के समस्त आन दा का उपभोग करते हैं ।<sup>४</sup> स्पष्ट है कि ब्राह्मण समाज को वहा महासामंत प्रदायशमन

१ ए० इ० १८, ७५ ।

२ वही न० ११, पंक्तियाँ १ १४ । इन अभिलेख म जिस गद्द को एन० के० भण्टगालि ने सावना पदा है उस अगर सुधार कर 'सकटा' पडा जा सके ता उसका मतलब होगा— वशास भरी भूमि, और सद्भ का देखन हुए यही ठीक भी लगता है ।

३ ए० इ०, १५ न० १६ पंक्तियाँ ३ ५० ।

४ वही, ४ ।

५ वहा, पृष्ठ ३१० १२ ।



द्वारा निर्मित मन्दिर में प्रतिष्ठित भगवान् धन्वन्तरि नारायण की पूजा के लिए लाया गया।<sup>१</sup> यह प्रयोगमय कोई उन्मत्तवर्गीय ब्राह्मण सामंत था, और ऐसा प्रतीत होता है कि उसी की कारिगरी में यह मन्दिर बनाया गया था। लेकिन, हम क्षत्र में ब्राह्मणों के धाममय का महत्त्व का बात में निश्चिन्त हैं कि उन्होंने हम वन प्रदेश को नियाम और कृषि के योग्य बनाया।<sup>२</sup> पश्चिमी भारत के कुछ हिस्सों में भी ऐसी ही प्रक्रिया देखी जा सकती है। विजयराज के राजानुताम्रपत्नी में जो मध्य छोटी गंगा के बाएँ किनारे समय तयार किया गया एक गाँव में ६२ ब्राह्मणों का स्थापित हिस्सा का हवाला मिलता है।<sup>३</sup> स्वभावतः धर्म के ब्राह्मणों का सामूहिक रूप में वसने का सुविधा मिलता। उन प्रयोगों की मूर्त्तियाँ कुछ उदात्त नहीं हैं लेकिन इन ज्ञान प्रयोगों में मात्र ही पर यह सक्त मिलता है कि परती उसर और जगती स्थापना का मन्दिर और ब्राह्मणों को दान देकर आवासीय कराया जाता था।

आवाद इलाका में जहाँ ब्राह्मणों का अग्रहारों के रूप में वसने का गाँव था किन्तु जानने वाली का तरीका जगती इलाका में प्रचलित होती है तरीके से निश्चय ही बहुत विरसित था। उस आवाद इलाका में भी सती के तरीके सबत्र एक समान नहीं रहे हाँ किन्तु हमका वनियों के जान गायन सबको रहा होगा। श्रीरुठ जापद का वणन करत हुए बाण मन्त्र की जोताइ, ललिहाना में कृत्रिम पहाड़ा की तरह लिखने धाय के द्वारा और पट्टि द्वारा भूमि की सिंचाई का उदरस करना है। मुख्य उपज मूँग और गेहूँ बनाई गई है।<sup>४</sup> स्पष्ट है अग्रहारों के स्वामियों को कृषि के ऐसे तरीकों की जानकारी थी, और उनकी प्रवृत्ति पूजा पाठ और अध्ययन प्रस्थापन तक ही सीमित नहीं थी। ह्य के अभियान के दौरान उन्होंने दही गुड और पटिकाओं में बने हुए लकड़ों उसका स्वागत किया।<sup>५</sup> ये सब चीजें विन्ध्य क्षत्र के जगती गाँवों में पत्नी नहीं का जा सकती थी क्योंकि वहाँ लोग सती के बहुत ही अपरिचित और

१ ए० ३०, १५ पंक्तियाँ १६ ३२।

२ का० ३० ३० ८, न० ३८।

३ पृष्ठ ६४। कहीं यह चाहमान अभिलषा में उल्लिखित अरहट्ट ही तो नहीं है?

४ वही।

५ पृष्ठ २१२।

प्रारम्भिक तरीके से काम लेते थे ।

हृषिकेशि ने अनुसूचित कान्ती मिट्टी वाले इलाकों के लोग हल और बल का उपयोग नहीं जानते थे ।<sup>१</sup> विमान लोग अपने अपने परिवारों की आजीविका की व्यवस्था करने के लिए फावड़ा पर पूरा जोर आजमाते थे और छोटे छोटे खेत तयार कर लेते थे ।<sup>२</sup> कृषि योग्य खेत छोटे छोटे और कम ही थे ।<sup>३</sup> लोग किसी प्रकार की खाद का उपयोग नहीं करते थे । शायद वे खेती की आधुनिक 'मम प्रणाली से काम लेते थे । एमी खेती आदिवासी लाग करते हैं । वे जगला को जन्मा देते हैं और इस तरह उस साफ किय गये क्षेत्र में वर्षा शुरू होने पर बीज डाल देते हैं । जलाय हुए पड़ पौधा का क्षार एक प्रकार की खाद का काम करता है । फसल काट कर वे फिर दूसरे स्थान की ओर चल दते थे और वहाँ फिर उमी रीति से खेती करते थे । हो सकता है, हृषिकेशि म जो विषय क्षेत्र में जंगल काटने का उल्लेख हुआ है, उसका सम्बन्ध खेती के इसी तरीके से हो । टिपडा के वन प्रदेश में भी, जिसके एक हिस्से में सी से अधिक ब्राह्मण जाकर बस गये शायद खेती का यही तरीका प्रचलित था । किन्तु इन नये ब्राह्मणों का न अन्वय ही पुराने लोगों की कृषि प्रणाली के स्थान पर नई पद्धति चलाई होगी । हृषिकेशि के समय में भूमि अनुदानों से विषय क्षेत्र में खेती के नये और अच्छे तरीके दाखिल करने में कोई सहायता मिली या नहीं, यह बात तो स्पष्ट नहीं है । लेकिन अगर वन प्रदेशों के धार्मिक प्रतिष्ठानों का स्वयं चलाय के लिए कुछ अग्रहार दान किये जाते थे तो उनसे उन प्रदेशों में खेती के बहुरंगी तरीके दाखिल करने में सहायता मिली है, ऐसा सम्भव है ।

भूमि अनुदानों के पुरालेखीय विवरण से यद्यपि भावनाओं की दी गई राजस्व और प्रशासन सम्बन्धी रियायतों की हम पर्याप्त जानकारी मिल जाती है, किन्तु दान किये गये क्षेत्रों की ठीक ठीक सीमा और रकबे आदि की जानकारी के लिए हम पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता । है जिस काल पर विचार कर रहे हैं, उस काल में यूरोप के सम्बन्ध में भी ऐसे आकड़ों का अभाव ही है, और तत्कालीन भारत में विषय में तो स्थिति और भी असन्तोषजनक है । प्रकृति के प्रकोपों और मनुष्य की कारगुजारियाँ से उत्तर भारत में

१ वही, पृष्ठ २२७ ।

२ वही ।

३ वही ।

ये पुरालेख ब० न जर्जों तक ध्वस्त हो गये हाग । यदि हम इस तथ्य का ध्यान रखें तो मानना होगा कि आज हमें जो पुरालेखीय विवरण उपलब्ध हैं वे मूल पुरालेखों के अंश मात्र हैं । फिर भी सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में धार्मिक अनुष्ठान प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों एवं संस्थाओं के अधीनस्थ क्षेत्रों का एक मोटा और सामान्य अंश हमें लगाने में है । उदाहरण के लिए नालन्दा विहार २०० गाँवों के राजस्व का उपयोग करता था, और गायत्री बलमी शिक्षा-केन्द्र को भी इतने ही गाँव मिले हुए हैं । हय के जो ताग्रपट्ट अभिलेख उपलब्ध हैं उनमें केवल दो गाँवों के दान किये जाने का हवाला मिलता है लेकिन इसी काल के बलमी के ताग्रपट्ट अभिलेखों में कम से कम १० गाँव दान किये जाने का उल्लेख मिलता है, और लोहनाथ कल्पिता अभिलेख में १०० ब्राह्मणों के जीवन निर्वाह के लिये जगली इलाका दान किये जाने का प्रमाण मिलता है । प्राण भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डालता है । हयचरित सप्तम भाग है कि हय ने एक सैनिक अभियान पर निकलने से पहले मध्यदेश में १००० इलाके काय १०० गाँव ब्राह्मणों का दान किये । १००० हल—प्रयत्न १००० हल से जोनी जा सकने लिये—अधान लगभग १०००० एकड़ जमीन दान की गई । बालम्बरी में तारापीड के प्रासाद में सहस्रों गामना के सत्विन्दुपार करन में रत लिपि का उल्लेख है । अगर हम गामनों का अर्थ यहाँ दान पत्र लगायें तो इसका अर्थ यही होगा कि ब्राह्मणों को बहुत सारे भूमि अनुष्ठान दिये जाते थे । इसके अतिरिक्त हयचरित में अमरी और नवली दाता तरु के आग्रहारिका का उल्लेख मिलता है यद्यपि इन आग्रहारिका के अधीनस्थ गाँवों की संख्या नहीं बताई गई है । अगर हम यह मान भी लें कि बाण ने अपने सरस्वत के अतिरिक्त वणन किया है और तारापीड के प्रासाद का चित्र बहुत बड़ा बना कर प्रस्तुत किया है तो भी उसकी तुलना से सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध की वस्तु स्थिति का मोटा अंश तो मिलना ही है । कुल मिलाकर यही लगता है कि हय के समय तक ब्राह्मणों के हाथ में काफी जमीन आ गई थी ।

१ हाचरित एड मसूजिफ अध्याय पृष्ठ २० ।

२ अधिकतर नामक आनिन्दमानासनमह्यम अथवा नालम्बरी पृष्ठ ८६ पा० टि० १ में उद्धृत ।

३ मातृदामनिगनराग्रहारिकालय वही पृष्ठ २१२ ।



के लिए बिहार और घर बनवाते थे तथा उन्हें खेत और बगैचे के साथ ही जोताई बोवाई के लिए कृषक मजदूर और मवेशी भी देते थे ।<sup>१</sup> इस चीनी यात्री के अनुसार लाओ पर गुदे स्वामित्वाधिकार पत्र एक के बाद दूसरे राजा क हाथा से गुजरते हुए बंध बने हुए थे । लेकिन स्मरण शक्ति के दाय के कारण यही वह गायत गलत बात लिय गया क्योंकि अब तक तो कोई भी लीहपट प्राप्त नहीं हुआ है । स्पष्ट ही पाटियात का मतलब ताग्रपट स था ।

भूमिघर मंदिरा और बिहारा क उद्यम और विकास म एक बात बटून सहायक सिद्ध हुई । वही धार्मिक तथा गणििक प्रयोजना क लिए राजाघ्रा द्वारा अग्रहार का दान किया जाना । छठी शताब्दी के एक परवर्ती गुप्त राजा दामातर गुप्त का एक सौ अग्रहार स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है ।<sup>२</sup> एमरा मानस यह हुआ कि धार्मिक तथा गणििक केंद्र बनाने क लिए ब्राह्मणा का १०० गांव दान किया गया । एम अनुमान गुप्त सम्राट ने भी दिया हाम यथासिख स्व गुप्त क क क बिहार गिलाभितया जि ह साथ साथ पना नहा जा सकता और भिनरी स्तम्भ अभितया क रूप म इसके कुछ उपाहरण मिलत है ।<sup>३</sup> मानवा आख्या गलातिया म भी ब्राह्मणा क मन म गुप्त कानान अग्रहार बनाना की स्मृति बनी हुए था और उ हान ममुगुप्त का नाम जाइकर कम न कम दो जाती बनान पत्र तगर कर भिय थ ।<sup>४</sup> बाणभट्ट न भी मानवा गलाती क पूर्वाड म हयकरित म एम नवनी आगहारिका का उतरण किया है जिनका कथित अनुमान पर कोई बंध अधिकार नहीं था ।<sup>५</sup> ह्येत्साग कहता है कि नाम ग बिहार का गव उसको दान किया गया लगभग सौ गांवा क राज्य म बनता था ।<sup>६</sup> और एमा प्रतीत हाता है कि इरिसग के समय तक अनुमान म वि य गांवा की मस्या लगभग ०० तक पहुंच गई था ।<sup>७</sup> भूमि अनु दान का प्रथा क परिणामस्वरूप य मंदिर और बिहार बनवाने क छूटा और

१ बानीय प्रयोग १८१५ न० ३ १५० ।

२ का० ए० ए०, ३ न० ४० पन्नि १० ।

वही न० १ पन्नि ८० न० १३ पन्नि १८ ।

४ वही, न० ६० ए० ए० २६ न० ६ ।

५ पृष्ठ २१० ।

६ एम० बी० ए० ए० डी० ए० ए० ए० पृष्ठ १०० ।

७ वे० ए० वावुसु (अनु०) - १८६४ ए० ए० इ० ए० ए० ए० पृष्ठ ६५ ।



जानकारी न है, लेकिन ऊपर की तीनों श्रणियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई शक्यता नहीं है। किन्तु बह्मरानि की स्मृति में शत्रु स्वामी शत्रु के स्थान पर स्वामी शत्रु का प्रयोग नमा है। साथ ही उक्त यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि स्वामी राजा और जमीन के मालिकी जोनकारक वीथ की श्रणा में आता था।<sup>१</sup> इन श्रणी के नू शमी कृषकों को पट्ट पर भूमि देने के और कृषि की उत्प्रेक्षा करने पर कृषक लोग जुमान के मागीं हान थे।<sup>२</sup> इस प्रकार ये कृषककृषि पास नहीं, बल्कि अस्वायी पट्टेकार हो थ।

मनी बारी के काम के मगठन की इन विगपनाश्रा की पुष्टि पुराततीय प्रमाणों से भी होती है। महाराष्ट्र और गुजरात के चौथी स लकर छोटी गताती तक के भूमि अनुदानों से साफ जाहिर हाना है कि ग्रहीता को भूमि के भोग का पूरा अधिकार दिया जाता था वह अपनी इच्छा और सुविधानुसार उसमें स्वयं भी खना कर सकता था और किसी अन्य से भी करवा सकता था।<sup>३</sup> खुलती करनेवाले ब्राह्मणों का अनुपात जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है यद्यपि सम्भव है कि एते ब्राह्मणों की संख्या अच्छी खासी रही हा क्योंकि उस काल की स्मृतियों में एमी व्यवस्था है कि अगर वे चाहे तो खेती बारी कर सकते हैं।<sup>४</sup> लेकिन जहाँ पूरा का पूरा गांव कुछ थोड़े से ब्राह्मणों को दे दिया जाता था वहाँ स्पष्ट है व सारी जमीन पर खुल ही खेती नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों के बहून से गांवों या अग्रहारों का स्वरूप अथ साम तवादी हो गया।

यह साचना ठीक नहीं है कि दान किया गया गावा के किसानों का अपने प्रभुओं से वसा ही सम्बन्ध था जसा कि इंग्लड के कम्मी गावा के किसानों का अपने प्रभुओं से था लेकिन कुछ बातों में किसान पूरी तरह से सम्बन्धित गावा के भोक्ताओं के अधीन थे। बहुत से स्थानों पर ग्रहीता लोग अपनी अपनी जमीन में दूसरों से खेती करवाने के अधिकार के बल पर पुराने किसानों

१ १६५६५।

२ यात्रवल्क्य २ १५७ = चटम्पति १६१६ ५३ ५५।

३ मुज्ज कपत प्रदिगत कपयन। का० इ० इ० ६ न० २ पक्ति ६ न० ११ पक्ति १३, मिलाइए न० २१ पक्ति ३२ स सि० इ० पृष्ठ ४०५ पक्तिया ६७ पा० टि० २३ सहित।

४ मनु स्मृति १० = १ = २ यात्रवल्क्य ३ ५ नारद १ १६ ६०।

को हटा कर नये विमानों का काम पर लगा सकते थे, इस प्रकार वे अपनी इच्छानुसार पट्टेदारों का हटा सकते थे।<sup>१</sup> -<sup>१</sup>

मध्य भारत के गुप्त कालीन अनुशासनात्मक प्रकट होता है कि किसानों का राजा का बगार करना पड़ना था।<sup>२</sup> वाकाटक साम्राज्य के अनुशासनात्मक और गुप्त साम्राज्य के नामों द्वारा मध्य भारत में दिये गये कुछ अन्य अनुदानों से ज्ञात होता है कि धार्मिक ग्रंथों का दान किया गया था। राजा का बाधित श्रम करने का अधिकार नहीं था।<sup>३</sup> महाराष्ट्र में प्राप्त पाँचवीं शताब्दी के एक साम्राज्य में मभी तरह के दत्त और विष्टि से मुक्त एक अग्रहार के अनुशासन का उल्लेख है।<sup>४</sup> एम. ही अनुशासन पश्चिमी भारत में भी दिये गये थे। इनमें से सबसे पहले के अनुशासन में एक है ४२७ ईस्वी का अनुदान।<sup>५</sup> इसका मतलब था यह है कि भावना लाता राजा को कोई भी कर देना और उसके लिए विष्टि की व्यवस्था करने के दायित्व से मुक्त थे जब कि स्पष्ट है कि वे अपने अधीनस्थ गाँवों से कर भी ले सकते थे और बगार भी। मध्य भारत और पश्चिमी भारत के कतिपय अनुशासन में संशोधन क्षेत्रों के निवासियों का ग्रंथों का पालन करने का प्राप्ति दिया गया है जिसका मतलब यह लगाया गया है कि ग्रंथों बाधित श्रम ले सकते थे।<sup>६</sup> लखन जनसाधारण से जो चीजें लेने का चलन परम्परा से नया चला आ रहा था, उनकी भी माँग व कर सकते थे या नहीं यह स्पष्ट नहीं है। जो भी हो इसमें स्पष्ट नहीं कि गुप्त काल में मध्य भारत और पश्चिमी भारत में गाँव लोग अपने गाँवों से बगार लिया करते थे।

गुप्त कालीन अनुदानों से जिस बात का सिद्ध साक्ष्य मिलता है वही बात छठीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बलभी नरेशों के अनुशासन में बिल्कुल स्पष्ट रूप से कही गई है। प्रथम धरमेन के (लगभग ५७२ ईस्वी के) एक

१ का० ६० ६०, ४ भूमिका का पृष्ठ १८१।

२ इन अनुशासनों का वर्णन मनी की इति इन्फॉर्मिज लॉफ ऑफ नार्दन इ दिया इन गुप्त सिमिन्ट, पृष्ठ १५२ में किया गया है। द्वितीय प्रकरण के अनुशासन में अवशिष्टि का प्रयोग हुआ है।

३ वही।

४ एम० जी० दीक्षित द्वारा संपादन सेलेक्ट इतिहास फॉर्म महाराष्ट्र पृ० ८।

५ का० ४० ६०, ५, न० ८ पंक्ति ६।

६ मनी की म० प्र० पु० पृष्ठ १५१ ५३।



अनुदान में धार्मिक ग्रंथों की आवश्यकतानुसार बगार लेने का अधिकार दिया गया है।<sup>१</sup> प्रथम गिलादित्य ने भी अपने ६०५ ईस्वी के शानपत्र में और फिर ६१०-११ ईस्वी के शानपत्र में ग्रंथों की ओर एसी ही रीखायत की है। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बलभी अनुशाना में बंजर गुजरान के सत्रक सरदार अलशक्ति के समान छोटे छोटे सरदारों द्वारा दिये अनुदानों में भी उस पारिभाषिक शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है जिसमें प्रकृत होता है कि ग्रंथों का बेगार लेने का अधिकार था। बालभी के शानपत्रों के भी शानपत्रों में भी हम यह शब्द दान का मिलता है। स्पष्ट है कि उन ग्रंथों को बेगार लेने का अधिकार प्राप्त था तब अपनी बगार लेने की आवश्यकता का निषेध तो वे इच्छानुसार जब चाहते तभी कर सकते थे।

बगार गिल्फिया में भी लिया जाता था। पुरवर्ती स्मृतियों में एसा विधान है कि गिल्फिया राजा का कर देने के बंधन मानीने में एक दिन अपना काम करे। कर के बंधन में तरह काम करेगा बगार नहीं माना जा सकता। लेकिन कौटिल्य के अनुसार कमकरा तथा बगार करने वाले मातुरों में बाइ अंतर नहीं था और यह सम्भव है कि कमकरा में गिल्फिया लोग भी शामिल रहे हों। ५६२ ईस्वी में पंचमा भारत में बणिक् एक समूह (बणिग्ग्राम) को दिये गये एक अनुदान से प्रकृत होता है कि गिल्फिया को केवल राजा का ही नहीं बल्कि जिन बणिक् का राज्य की ओर से छूट की सनद दी जाती थी उन बणिक् का भी बगार करना पड़ता था। इस प्रकार बणिक् का काम करने वाले बणिक् तुंगरा नाउगिल्फिया नाइया कुम्हारा गादि से बेगार लिया करते थे।<sup>२</sup> स्पष्ट ही जहाँ तक राजा का सम्बन्ध था तब और नील तयार करने वाले श्रमिक बगार से

१ ए० इ० ११ न० ८०।

२ इ० ए० ६ पृष्ठ १२ पक्ति ६। प्रयुक्त शब्द है 'सोत्पद्यमानविट्टि जिमका अनुदान मीराणि न इस प्रकार किया है उससे उत्पन्न होने वाले धार्मिक श्रम का लाभ उठाने के अधिकार के साथ साथ।

३ ए० इ० ११ न० १७ पक्ति २६।

४ यही २९ न० १८ पक्ति २५।

५ का० २० न० ४ न २१ पक्ति २७ इ० ए० ६, १२।

६ ए० २० न० ३० पक्ति २८ का अनुवाद करते हुए (जमल ऑफ इन्फोर्मिन्स ऐंड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ओरिएण्टल लायन्स २, २८, म)

मुक्त थे,<sup>१</sup> क्योंकि उनके रोजगार पर महसूल लगा हुआ था।<sup>२</sup> फिर, भित्तियाँ और ग्वाला स, जो स्पष्ट वणिक् का काम करते थे, राजा की बेगार के लिए नहीं कहा जा सकता था।<sup>३</sup> स्पष्ट है कि वणिक्ग्राम का दी गई इन रियासतों का उद्देश्य शिल्पियों और साधारण श्रमिकों की सेवाओं को वणिक्ओं के लिए सुरक्षित रखना था। यह मध्य काल की उस अर्थ-व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थी जो स्थानीय उत्पादन और स्थानीय उपभोग पर आधारित थी।

गुप्त काल में बेगार का स्वरूप कुल मिलाकर बहुत बदल गया। मौर्य काल में बेगार दास और बमकर किया करते थे, और श्रमिक वर्ग में इनके अलावा वे लोग शामिल थे जो भण्डार गृह में सफाई, नाप तोल, चौकीदारी और पिसाई की दल रख का काम किया करते थे।<sup>४</sup> श्रमिकों की भरती विधि बंधक करता था, और इन्हें मजदूरी दी जाती थी।<sup>५</sup> यह सही है कि राज्य की आय का साधन विधि भी थी लेकिन इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता कि गाँवों में रहनेवाले स्वतंत्र किसानों से भी बेगार लिया जाता था या नहीं। किंतु दूसरी शताब्दी में पश्चिमी भारत के राजा रुद्रदामन की समस्त प्रजा बेगार करने के लिए बाध्य थी। चौथी से सातवीं शताब्दी के बीच इस प्रथा में और भी जबरदस्त परिवर्तन हुए। बाकायदा राष्ट्रदूता और चानुनियों के अभिलेखों से प्रकट होता है कि यह प्रथा मध्य भारत के पश्चिमी क्षेत्र, महा राष्ट्र और बकायदा के कुछ हिस्सों में फैल गई। मध्य भारत में दसवाँ बड़ा व्यापक प्रचार हुआ और इसके लिए सर्वविधि शब्द प्रचलित हो गया।<sup>६</sup> पश्चिमी भारत के चौथी और पाँचवीं शताब्दियों के कतिपय कलाचुरि चदि

कोसम्बी कहते हैं कि इन शिल्पियों को करों के बदले में बेगार करना पड़ता था, लेकिन यह स्थापना तभी स्वीकार की जा सकती है जब हम अरिका को राज्याधिकारी मान लें, किंतु उन्हें राज्याधिकारी मानना गलत होगा।

१ ए० इ० ३०, न० ३०, पक्ति ८।

२ ज० इ० सी० हि० ग्रा०, २, २८७।

३ ए० इ० ३०, न० ३०, पक्ति ८।

४ अथशास्त्र, २, १५।

५ वही ५ ३।

६ ए० इ०, २६, न० १० पक्ति २३। द्वितीय प्रवरसेन के अनुदानों में इसका प्रयोग बार बार हुआ है।

मुगीन अनुदानों में सर्वप्रथम 'विधि' शब्द का प्रयोग हुआ है जिगता मतलब है— सभी तरह के धुएँ और बगार। फिर जहाँ पहल बगार उन का अधिकार केवल राजा का ही था वहाँ अब धार्मिक प्रधानों और उनके राजा को भी यह अधिकार प्राप्त हो गया। क्योंकि इस काल में यह देखा कि जो गाँव उहाँ दान में दिये जाते थे, उन गाँवों का राजा के लिए बगार नहीं करना पड़ता था। साथ ही माघ अब और अधिक कामों के लिए बगार दिया जाने लगा। कौटिल्य ने बगार के रूप में दिये जानेवाले तरह के कामों का हवाला दिया है जैसे कि लेटना, तापना, विगाह के काम की दवाएँ करना आदि। लेकिन उसने यही भी कहा है कि विपुल रूप में मनीषा से सम्बन्धित किसी काम का उन्नयन नहीं किया है। कृषि के लिए बगार का स्पष्ट मतलब वात्स्यायन के काममूत्र में मिलता है। उनका अनुसार एक श्रम का प्रयोग राजा के लिए नहीं बल्कि ग्राम प्रधान के लिए किया जाता था। 'काममूत्र' के सम्बन्धित अर्थ से जान पड़ता है कि गुप्त काल और गुप्तांतर काल में ग्राम प्रधान अपनी सुख सुविधा के लिए ही बगार लिया करता था। इसके अन्तर्गत बिना काई पारिश्रमिक दिए कृषकों द्वारा सँभाले-सँभाले के काम लिये जाते थे—जैसे उहाँ गाँव के प्रधानों के घाँसगारों में अन्न रखना पड़ता था उनका घर में सामान लाना और जहरत पड़ने पर वहाँ से लौटना पड़ता था, उसके घर की सफाई और सजावट करनी पड़ती थी उसके लेना में काम करना पड़ता और कई ऊँचे पट्टे या मन्त्र उसको कपड़ों के लिए सूत काटना पड़ता था।<sup>१</sup> वात्स्यायन की कृति में जो भौगोलिक वर्णन किया गया है<sup>२</sup> और जिन पदावली का उल्लेख हुआ है उनका सम्बन्ध मध्य और पश्चिमी भारत से जान पड़ता है। इसलिए ऐसा मानना अनुचित नहीं होगा कि ये बाधित शारीरिक मन्त्रों द्वारा प्रधान ही लिया करते थे, जो उन क्षेत्रों के गाँवों में राज्य-सत्ता के प्रतिनिधि रूप में।<sup>३</sup> इस प्रकार श्रमिकों को जो काम करने पड़ते थे उनमें अब ग्राम प्रधानों

१ पृ० ६० २६ न० १० पंक्ति २३।

२ ५ ५५।

३ एच० सी० चकलाकार के अनुसार वात्स्यायन पश्चिमी भारत का रहनेवाला था।

४ विष्णुपथ द्वारा एक वणिग्ग्राम को ५६२ ई० में दिये गये अधिकारपत्र (एरिग्रामिया इडिफिका ३० न० ३० १) में कहा गया है कि वर्षा ऋतु के आरम्भ में बीज खरीदने के लिए अपने इलाके से बाजारों में भाड़े

के खेता में श्रम करना भी शामिल हो गया था। हमारे विचार से यह एक महत्वपूर्ण सामन्तवादी प्रथा के सत्रपान का द्योतक है। स्वाभाविक है कि ग्रहीताओं को श्रम संवा के अधिकार के साथ दान किये जावा में इसका बहुत-यापक प्रचार हुआ होगा। वे इस प्रथा का अधिक से अधिक उपयोग करते हुए—विशेषकर परती जमीन को आबा करने के लिए। कारण, हम देख चुके हैं कि उह दान में मिली जमीन पर खुद खेती करने या दूसरा स करवान का अधिकार प्राप्त था। लेकिन किसानों की स्थिति तो इससे शायद बिगड़ी ही होगी।

एक ओर तो ग्रहीताओं और क्षेत्रस्वामियों के अधीनस्थ किसानों की स्थिति दासवत हो गई और दूसरी ओर तरह-तरह के नये-नये कर लगा दिये जाने के कारण स्वतंत्र किसानों की स्थिति भी काफी बिगड़ गई। उन पर लगाये गये दान की तुलना यूरोप के सामन्तवादी महामूलों से की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है जब राजकीय सेना और अधिकारी किसी गांव में पड़ाव डालते थे या वहाँ से गुजरते थे तब वे अपने खर्च के लिए उस गांव से जबरदस्ती पसा या रसद वगैरह वसूल किया करते थे।<sup>१</sup> इस महामूल की तुलना हम कौन्सिल के ग्रन्थशास्त्र के सिनाभक्त से कर सकते हैं।<sup>२</sup> इसके अनिश्चित एक के बाद एक गांव का उनके परिवहन के लिए पशुओं की भी व्यवस्था करनी पड़ती थी।<sup>३</sup> उह ओर पर निकले राजस्व अधिकारियों की फूल और दूध भी भेंट करना पड़ता था।<sup>४</sup> ये बाधित गुल्क सत्ता और राय का जरूरतें पूरी करने के लिए वसूल किये जाते थे। इस प्रकार इन गुल्कों से जान-बूझ प्राप्त होता था वह राज्य कोष में नहीं भेजा जाता था बल्कि वही का वही राजकीय सेना और अधिकारियों के काम आ जाता था। यह प्रथा एक और मध्यवर्ती वर्ग खड़ा करने में सहायक हुई और इस तरह इसका स्वतंत्र किसानों की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

---

हुए किसानों को स्वामी लोग अपने यहां रोक न रख। इससे यह ध्वनि निकलती है कि स्वामी लोग किसानों को अपने यहां धरार करने के लिए चाहें जहाँ वही और जब कभी रोक रखते थे। वे इनसे शायद अपने खेतों में काम करवाते थे।

- १ "ग्रन्थशास्त्र प्रारम्भिक" का० इ० इ० ३, पृष्ठ ६८ पा० टि० २।
- २ ग्रन्थशास्त्र, २ १५।
- ३ अपारम्पर गाबलिवद्, ए० इ० २७, न० १६ पृष्ठ २६।
- ४ वही।

उपर जिन राजकीय सनिका और अधिकारिया का उल्लेख हुआ है, वे किसी एक स्थान पर जमकर नहीं रहते थे और उनका पत्र वसानुगत नहीं हुआ करता था। इसलिए इन राजकीय प्रतिनिधियाँ के प्रत्यक्ष अधिकार शून्य न तो बगार और बाधित शुल्क का बोझ लगा के लिए उतना भारी नहीं होता होगा किन्तु प्रहीता लोग इस बाध को असह्य बना सकते थे क्योंकि उन्हें तो बराबर उसी गाँव में रहना था और उसके गाँव से पुनः दूर पुनः अधिक से अधिक लाभ उठाना था। श्रम के रूप में की जान वाली यह सवा हम यूरोप की उस सामन्तबान्नी प्रथा की याद दिलाती है जिसके अनुसार रैयत का दो तरफ़ के दायित्व निभाने पड़ते थे एक तरफ़ कर देना और दूसरे, जिस जमीन पर उसके प्रभु का भती जाती थी उस जमीन पर काम करना।<sup>१</sup> गुप्त-काल और गुप्तान्तर काल में अनुत्पन्न गाँवों के किसानों के प्रहीताओं के प्रति ये दोहरे दायित्व सिर्फ मध्य भारत और पश्चिमी भारत में निभाने पड़ते थे और यहाँ यह प्रथा यूरोप से किसी भी बात में भिन्न नहीं थी।

प्रहीताओं की याद और प्रशासन सम्बन्धी जो अधिकार प्राप्त थे उनके द्वारा वे अधीनस्थ गाँवों के निवासियों पर अपना आधिपत्य आधिकारिक भासानी में बढ़ा सकते थे। इस प्रकार कुछ जगहों में इन प्रहीताओं की तुलना यूरोप के सामन्तवादी जागीरदारों से की जा सकती है। लेकिन हमारी बात में स्थिति भिन्न थी। जिन लोगों से देगार लिया जाता था उन्हें प्रहीताओं के धेता में आयद उनका काम नहीं करना पड़ता था जितना कि मध्यकालीन यूरोप की जागीरों में किसानों को करना पड़ता था। उसके अतिरिक्त प्रहीता के अधीन जमीन का भी अपेक्षाकृत बहुत छोटा होता था क्योंकि प्रारम्भ में ब्राह्मणों की दानम्बु रूप एक बार में एक से अधिक गाँव देन के उत्पहरण आयद ही कही मिलते हैं।<sup>२</sup> फलतः उनके खेतों में काम करने का मौका कम आता था और उसकी सम्भावना बहुत सीमित थी।

विमानों की स्थिति सिगडन का मुख्य कारण यह था कि जब कोई इलाका एक भावता के हाथ में दूसरे भोक्ता के हाथ में जाता था तो माघ ही उस इलाके के किसानों पर भी उस नये भोक्ता का आधिपत्य हो जाता था।

१ माक ब्लॉक, क्यूटेल सामान्ती, पृष्ठ १७३।

२ किन्तु ५३३ ई० के एक अनुदान में एक राजपुत्र्येतर राजा ने मन्दिर के लिए एक माघ दो गाँव दान किये (का० इ० इ० न० ३६, पक्ति ७)।



धीरे धीरे यह षड्भुजा प्रथा विमाना पर भी स गृ हो गई । कनाक म जमान के नव स्वाधी की विमाना व सोर न्ये जाने के प्रमाण मिल है । योजापुर जित म प्राप्त यागामी के एक पूरवर्ती चानुस्य राया व छडा गणाना के धनु सापत्र मे योग निवगन भूमि नान की गई है और उग जमान की मारी उग्र, बागीचा, जारक और निवेग भी ग्रहाना को न निया गया है ।<sup>१</sup> न्ये ही यहाँ निवग गण का मतत्व कुटीर है जिसम विमान सोग रहत प । गत्राम जिले म प्राप्त इसी दानागी व एक गग धनुसापत्र म दम बान की मुद्रि हाती है ।<sup>२</sup> दम कहा गया है कि चार कुटीर व गाम गाय छ हल जमीन (धनु निवगनसहिता) अरहार व रूप म नारायण देवता का गण व निव दान कर दी गई और यह कर मुक्त भी कर दी गई ।<sup>३</sup> इन न ना धनुसापत्रा म निवग या निवगन गण का प्रयोग मात्र गह या गह-स्थान व रूप म ही नटा हुआ है । दरदमन इसका प्रयोग ऐस आवास व रूप म किया गया है जहाँ विमान साग रहत हा और हम आज भी ग्रामीण गत्रा म ग्राम सागा का बानी म इसका प्रयोग इसी अर्थ म हात दसत है । भूमि व गाय विमाना व भी ह्यनागरित कर दिये जान की प्रथा दक्षिण भारत स गुरुहोत्रर दायद मध्य भारत मभी फल गई । पाँचवी गना गी के एक वाटाटक धनुसापत्र म चार कपक विवगा व दान कर निया जान का उल्लेख है ।<sup>४</sup> इसम यही अर्थ निवगना है कि चार घरा मे रहनेवा न विमान ग्रहीता को सौंप दिय गये ।

धनुदत्त गाँव व सभी विमान ग्रहीता को सौंप दन का प्रथा उड़ीसा और मध्य भारत व आस पास के क्षेत्रों म आरम्भ हा गई थी । वाराणु जिन व

१ ए० इ०, २८, ५६ ।

२ वही न० १० ।

३ वही २० ६२ ३ ।

४ वही न० १० पत्रितर्पा १० १७ । यहाँ हल गण दायद उतनी जमीन का सकत देता है जितनी एक जोडा बल रखनवाला एक किसान जोत सकता है । उस दष्टि से एक हल जमीन १० १२ एकड होगी । यह बान ६ हल जमीन के साथ चार घरा के हस्तांतरण से भी सगत लगती है क्योंकि चार किसान परिवार ६० ७० एकड जमीन की देलमाल मजे म कर सकते हैं ।

५ वा० वी० मीरासि, वाफाटक राजवश ना इतिहास तथा अभिलेख न० ८, पत्रितर्पा १४ १६ ।

एक अभिलेख से जिसका काल छठीं शताब्दी का है उसमें जिस पर प्रकाश पड़ता है।<sup>१</sup> उसमें ब्राह्मणों को जो जमीन जोतत हैं और जो जमीन जोतत हैं और जो जमीन जोतत हैं दिया गया है यह सलाह दी गई है कि यही हुआ कि किसानों को ग्रहीता के नाम पर सलाह दी गई है, यद्यपि यह बात यहां के निवासियों के साथ साथ हमनाम्निक के साथ साथ है। मध्य भारत के पूर्वी हिस्स के अनुदानपत्रों में दान देने के अर्थ में ग्रहीताओं को कर देने, उनके आदेशों का पालन करने का कहा गया है।<sup>२</sup> भोक्ताओं को जिनके ग्रहण करने का अधिकारो को देखते हुए 'मुख स, यह है लेकिन इस पूरे निर्देश का मतलब यही है कि ग्रहण करने में पूर्ववत् बने रहने का कहा गया। किन्तु, यद्यपि इन बातों का अर्थ नहीं होती थी और इसलिए उन क्षेत्रों में जिनमें ग्रहण करने का अधिकार प्रायः करते रहने के लिए कुछ गकिन प्रयोग भी किया गया है।

मंत्रका और गुजरात के चालुक्यों के समय में, यद्यपि प्रकृत शासन है कि जमीन के साथ किसान भी हस्तान्तरित कर देते हैं। इनका प्रथम पहला उदाहरण हम छठीं शताब्दी के अनुदानपत्रों में देख सकते हैं। यद्यपि राजा द्वितीय धरसेन के इसी काल के एक अनुदानपत्र में विशेषतः प्रकृत का पाँच ऐसे भूमिखण्डों के दान किये जाने का बताना है, जो पाँच श्रमिकों की जान में थे, इन पाँच लोगों में से एक को मृत्यु और इनका कुटुम्बिक कहा गया

१ ए० इ०, २८ १२।

२ ए० इ० २८, न० २, पंक्तियाँ ६७ उन मन्त्रि (दश) ध्रुवकर्मा ता रम्भ सुनिव तविश्वस्त वस्तव्य (म्)। श० ता० सरकार (वही ५) के अनुसार इसमें कृपका से उनका नाम का अर्थ की गई जमीन में लेती करन और हर प्रकार के दुर्व्यवहार की प्राणवा से मुक्त होकर रहने को कहा गया है। लेकिन यह श्रम समीचान प्रतीत नहीं होता।

३ का० इ० इ० ३ न० ४० पंक्तियाँ ११ १३, १० ४१, पंक्तियाँ १३ १५।



है।<sup>१</sup> एसा प्रतीत होता है कि उक्त भूमि खण्डा के स्वामिया ने भूमि खण्डा की अन्त्या बदली के साथ साथ उनमें खेती करनेवालों की भी जदना बदली कर ली अथवा उनके नामों का उल्लेख करने की कोई गहरत हा नहीं थी। फिर, बलभी राज ततीय घरसेन के ६२३ ४ ६० के एक दानपत्र में विभिन्न क्षेत्रफल के चार आवाज भूमि खण्ड दान किये गये हैं। ये भूमि खण्ड चार अलग अलग किसानों की जात में थे और इन किसानों या कुटुम्बियों के नाम भी दिये गये हैं। ये भूमि खण्ड भली भाँति सीमांकित थे और दूसरे किसानों द्वारा जोत जाने वाला खेतों के बीच में पड़त थे।<sup>२</sup> दान की गई भूमि से सम्बद्ध किसान भी अहीना को सौंप दिया जात था यह बात गुजरात के एक प्रारम्भिक गुजरात राजा ततीय जयभट (७०६ ई०) के नवसारी अभिलेखों से भी सिद्ध होती है। उसने एक ब्राह्मण को घर तथा चल और अचल सम्पत्ति (गहस्यावर चलक) के साथ साथ ६४ निवतन भूमि दान दी।<sup>३</sup> उपयुक्त तीनों उदाहरणों में गाँव नहीं सिफ़्त ही दान किये गये। जिन अनुदानों में हम ग्रामवासियों के हस्तांतरण का सबसे पहला स्पष्ट उदाहरण मिलता है वह है महाराज समुत्सेन नामक एक सामन्त राजा का अनुदान जिस सातवीं गता ग का माना जा सकता है।<sup>४</sup> इस अनुदानपत्र के अनुसार कागरा क्षेत्र में एक भोक्ता को निवासियों के साथ साथ (मप्रतिवासिजनसमत) एक गाँव दान किया गया है।<sup>५</sup> इस प्रकार कागरा और गुजरात के कुछ हिस्सों में छोटी और सातवीं गता गिया में कृषि गतत्व की प्रथा चल चुकी थी।

एसा प्रतीत होता है कि जमीन के साथ साथ कम्पिया की तरह श्रमकों के हस्तांतरित कर किये जाने के प्रथम मुख्य रूप से उन भूमि खण्डों के सम्बन्ध में आन था जो सगठित गाँवों के हिस्से नहीं थे और एक किसानों की जात में थे जो गाँवों में न रहकर उहाँ भूमि खण्डों पर छिपकूट बने घरों में रहत थे। इसमें जाना यह था कि किसान जो भी जमीन जानता था सब उसके घर के

१ का० ६० ६० न० २८ पंक्ति २१ ८ ।

२ वही ।

३ का० ६ न० २१ पंक्ति १५ २८ ।

४ वही २८७ ।

५ का० न० ८० पंक्ति १० ।

इद-गिद ही हुमा करती थी। जब यह जमीन दान की जाती थी तो इम पर काम करनेवाले किसानों का उमम कायम रखा जाता था, धर्मया ग्रहीता की बड़ी कठिनाई होती। इनम से कुछ बिमान तो गाय हलगाह होत थे जो दाना व लाभ के लिए जमीन जोतते थे। इसलिए एमा माना जा सनता है कि कृषिदास दो तरह के हात हाग—एक तो व जो हलगाहो की तरह काम करते थे और दूसरे व जो गावा म रहनेवाले रैयन कास्तकार थे। य रयन कास्त कार अपन स्वामी का लगान व तौर पर उपज का एक हिस्सा निया करते थे और नानपत्र म निधारित उनकी धर्म सेवाएँ भी किया करते थे। भारत के सभ्य म भूमि से बंधे हलगाहा का पूर धर्मो म कृषिदास मानना चाहिए और गाँवा व माय विधेय रूप से हस्तांतरित वादनकारो को धर्म कृषिदास माना जा सकता है। वादनकारा का ग्रहीतागा के निजी खेता पर काम नहीं करना पडता था, यद्यपि उम समय की कठिन आर्थिक परिस्थितियों म व जीवन निर्वाह का साधन ढूँढन के लिए गाँव छोडकर और कही जा भी नहीं सकते थे।

पुरालेखीय प्रमाणों से प्रकट हाना है कि कृषिदासत्व की प्रथा पहले तो उपात क्षेत्रों म प्रारम्भ हुई और बाद म धीरे धीरे दग के केन्द्रस्थ हिस्से और उत्तर भारत मे भी फन गई। इसका यूपपात पवतीय या पिछडे इलाको म हुमा, जहाँ स्थानीय आर्थिक जीवन को चलाने के लिए पर्याप्त किसान नहीं थे, किन्तु इससे ग्रहीतागा को किसानों पर जा विस्तृत अधिकाग प्राप्त हो जाते थे उनके कारण यह प्रथा विकसित क्षेत्रों म भी फल गई। इसकी शुभ्रात घनायदारा से हुई और बाद म सभी किसान इसकी लपट म आ गये। प्रारम्भ म यह प्रथा भूमि स्वण्य के दान पर लागू हुई और फिर धीरे धीरे गाँवो के अनुगाना पर भी लागू हो गई। आठवा गतानी के मध्य तक इस प्रथा का काफी धाम चलन हो गया। एक चीनी यात्री के ७३२ म लिखे विवरण के निम्नलिखित अग इस बात की साक्षी भरते हैं।

पचभारत म यह नियम है कि राजा रानी और नरेशों से लेकर सगदार और उनकी पत्नियों तक सभी अपनी अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार अलग अलग विहार बनवाते हैं। हर एक अपना अलग मंदिर बनवाना है कि तु मिलजुलकर कोई नहीं बनवाना। उनका कहना है कि जे हर व्यक्ति

१ जान युन हुआ, 'हुयी चाउज रेकड प्राँन काश्मीर काश्मीर रिसच बाइ-एनुप्रल न० ० (१९६२), पृष्ठ ११६-२०।



रहनवाल लागे के लिए जबनक वे दाना के अधीन रहें तबतक उसकी सेवा करना और जब ग्रहीता को हस्तान्तरित कर दिया जायें तो उसकी सेवा करना अनिवाय था ।

यह चीनी विवरण दास प्रथा के बिलय और वृषिदास प्रथा के उद्भव के बीच महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है । बौद्ध विहारा को दिये अनुगतता की चर्चा करते हुए इसमें कहा गया है कि पंचभारत में मनुष्य का बचा नहीं जाता और यहाँ नाम स्त्रियाँ नहीं हैं । यह कथन हम मेगास्थनीज की इस उक्ति का स्मरण दिलाता है कि भारत में कोई भी दाम नहीं है किन्तु प्रकारानुसार से इससे यह अर्थ भी निकलता है कि सानवी सदी में कुछ दास पुरुष थे । लेकिन आम तौर पर दाम नहीं हुआ करते थे और इसमें कोई कठिनाई भी नहीं होती थी क्योंकि 'इच्छा और आश्रयकता होने पर गाव और उमके निवासी दान किये जा सकते थे । चूँकि गाव के साथ साथ वहाँ के निवासी भी खेती-बाड़ी का काम करने के लिए विहारा को सौंप दिया जाते थे, इसलिए ग्रहीताओं की श्रमिका की कोई कमी नहीं होती थी ।

एक सवंत मिलने हैं कि गुप्त काल में उत्तरादन-नाथ में लगाय जानेवाले दासों की संख्या कम होनी गई और गूढ़ लोग दासों की तरह काम करने के बंधन से उत्तरोत्तर छुटकारा पाते गये । दासों को मुक्त करने से सम्बन्धित कौटिल्य के नियम आम तौर पर उन दासों पर लागू होते हैं जो आय माता या पिता से उत्पन्न हैं या स्वयं ही आय हैं ।<sup>१</sup> लेकिन याज्ञवल्क्य ने तो एक श्राद्धिकारी सिद्धान्त का ही सूत्रपात कर दिया । उसकी व्यवस्था है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध दाम नहीं बनाया जा सकता ।<sup>२</sup> बाद के एक भाष्य के अनुसार हमका मतलब यह है कि अपनी इच्छा के विरुद्ध दास्य बन्धि में लगाया गया गूढ़ क्षत्रिय अथवा वश्य राजा द्वारा मुक्त कर दिया जायेगा ।<sup>३</sup> इस प्रकार याज्ञवल्क्य ने मनु के इस आशय को कि गूढ़ों को उनकी इच्छा के विरुद्ध दास बनाया जा सकता है, विलम्बित उलट दिया है ।<sup>४</sup> फिर नारद और बहस्पति ने उन अधम लोगों की बन्धि की तीव्र भत्सना की है जो स्वतन्त्र

१ अध्याय ३ १३ ।

२ २ १८२ ।

३ कोलब्रुक निरुद्धनियत एमन २, २३ ।

४ किन्तु नारद, श्लोक ७२२ में मनु की व्यवस्था का दुहराया है ।

होकर भी सारा धारणा बचते हैं।<sup>१</sup> इससे धनिरिक्त हम भारत व इतिहास में तारक का पट्टी चार दास मुक्ति व विधि विधानों को दिनांक रूप में निपारित करके देते हैं।<sup>२</sup> कात्यायन स्मृति में एक स्थान पर राजा व नानाप्रभ का बर्णन मिला गया है।<sup>३</sup> जगन् प्रसाद राजा है कि दासा का एक प्रकार का मगल भी होता था। इस तमाम कारणों से राजा प्रथा का जड़ धारण हीन गर्द राजा।

जगन् स्मृति व शीघ्र राजा एक महत्त्वपूर्ण कारण वाम कर रहा था यह यह था कि विभाजन घोर घटुगता व परिणामस्वरूप भूमि दुर्लभा में बटनी पनी गर्द। उत्तराधिकार व पूर्ववर्ती विधायक भ्रमणों व विभाजन का बोझ उठाने रहा है। अनु घोर सातवर्ष की स्मृति का भाष्य हीन है। इसकी चर्चा हम वरिष्ठ तारक घोर महत्त्वनिष्ठ की स्मृति में देते हैं। इसमें राजा विधायक विधानों का मगल है कि कुछ बात व मध्य सदस्य धनम परण में एक वर मगल परिणाम जिसे धारा विधान भूमि मगल राजा-छाटी कात्यायन में विधान राजा तम मगल। एक बार एक विभाजन विधान स्वीकृत हो गया तो उत्तर तारक में यदि योग्य भूमि व विधायक में तत्रा धा जाते धनिरिक्त हो धा वार्ति धनी या त्रिधा व विधायक का जमाने वाली उपजाऊ धा घोर तारक में एक बार चार वर धन धारणा हो गया तो वहाँ की धावानी उत्तरात्तर वाली ही गर्द। भूमि पर दबाव बितता बढ़ गया था यह बात श्वेता गता की व एक पुरातन में सिद्ध हो जाती है। इस पुरातन व अनुसार वगल में मात्र उड़ कुच्यवत जमीन चार धनम घटाग जगहा म गरीदनी पडी थी।<sup>४</sup> घोर यह जमीन दास म दन के लिए गरीबी गर्द धी जिमस

१ नारद स्मृति ५ ३७ सू. र्ण्य स्मृति १५ २० मिलाइए वा हि० घ० गा० २ १८२।  
 २ ५ ४२ ४३। मिलाइए वात्या के दास मुक्ति सम्बन्धी नियम (लाक ७५) से। लेकिन नारद-स्मृति में यह भी कहा गया है कि कुछ विधायक वर्गों के दासा को उनके स्वामियों की इच्छा के बिना मुक्त नहीं किया जा सकता। (श्लोक २६)  
 ३ वात्या, श्लोक ३५०।  
 ४ १३, ३८।  
 ५ २६ १० २८ ४३, ५३ घोर ६४।  
 ६ ए० इ०, २० न० ५, पक्तिर्वा ५ ११।

विलक्षण की प्रश्रिया म और भी तेजी आई ।

सामाय लोगो द्वारा दान देने पर कुछ प्रतिबंध भी थे । बंगाल क अभिलेखा से प्रकट होता है कि राजा के स्थानीय प्रतिनिधिया और जिला परिषद की सहमति के बिना दान देने के उद्देश्य से जमीन नहीं खरीदी जा सकती थी । महाराष्ट्र के अभिलेखा से भी मालूम होता है कि राज्य की सहमति के बिना सामाय जन भूमिदान नहीं कर सकते थे । किंतु दानो ही स्थाना पर सहमति देने स आम तौर पर इनकार नहीं किया जाता था, और परिणामत न केवल राजा और उसके सामंत वरिन् सामाय जन भी गाव और भूमि खण्ण दान किया करते थे ।

इस काल म हम न कहीं पाँच पाव सौ करीम क्षेत्रफल के खेतों की चचा सुनते हैं और न मीय वाल क जैसे राजकीय वृषि क्षेत्रों की । पुरानेला म वहीँ एक कुल्यवाप क्षेत्रफल के खेत का उत्तख मिलता है ता वहीँ चार ढाई या डेढ़ द्रोणवाप क्षेत्रफल के खेतों का ।<sup>१</sup> इन सभने किसी बड़े वृषि क्षेत्र का मकत नहीं मिलता । पार्जोटर क अनुमार कुल्यवाप एरुड से कुछ बडा होता था ।<sup>२</sup> लेकिन अगर विचाराधीन काल का कुल्यवाप असम के कछार जिल मे प्रचलित कुल्यवाप क ही बराबर था<sup>३</sup> तो उस कुल्यवाप म तरह एकड भूमि आनी हागी । चूँकि एक कुल्य आठ द्रोण के बराबर है इसलिए हमने अनुमार एक द्रोणवाप दो एरुड से भी कम हा होगा । इमी काल मे गुजरात स्थित बलमी क मन्व राजाया द्वारा लिय गय भूमि अनुदानो पर विचार करने से जात होता है कि जमीन क य टुकडे औमनन दो तीन एकड से बड नहीं हात थे ।<sup>४</sup> एना के छाट हो जाने से सम्भवत उन पर काम करने के लिए बहुत सारे दास और श्रमिक रखता आर्थिक दष्टि म लाभकर नहीं रह गया । निदान इन खेतों पर काम करने के लिए जहा दो दा, चार चार लोग रख लिय गये वहा दूसरा का अपना भाग्य कही और आजमाने के लिए छुट्टी द दी गई होगी ।

१ ए० इ० २० न० ५, पक्ति ५ ११ ।

२ इ० ए०, २६, २१५ १६ ।

३ हिस्ट्री ऑफ बंगाल १ ६५२ । एस० के० मती का विचार है कि एक कुल्यवाप मे १४४ एकड से लेकर १७६ एकड तक जमीन होनी थी । ज० इ० सी० हि० ओ०, १, ६८ १०७ ।

४ के० जे० बीरजी, एनिएट हिस्ट्री ऑफ सौराष्ट्र, पृष्ठ २४६ ४७, २६७ ।

यह परम्परागत विचार कि वश्य लोग कृषक हैं मौर्योत्तर-काल और गुप्त-काल के साहित्य में भी बार बार देखने को मिलता है।<sup>१</sup> 'ग्रामरकोश' में कृषको के पर्यायवाची शब्द वश्य वगैरे म रखे गये हैं।<sup>२</sup> लेकिन गूढ़ लोग भी बड़ी संख्या में कृषक बनन जा रहे थे। कई स्मृतियाँ से ज्ञात होता है कि अधवटाय पर खेती करन के लिए शद्रा का जमीन दी जाती थी।<sup>३</sup> इससे निष्कप यही निकलता है कि गूढ़ वटायदारों का पट्ट पर जमाने के प्रचलन बढ़ता जा रहा था। २५०-२५० ईस्वी के आस पास के एक पल्लव भूमि-दान-पत्र से ज्ञात होता है कि जब एक भूमि गण्ड ब्राह्मणा को ज्ञान कर दिया गया तब भी चार आधिक (वटायदार) पहले की ही तरह उस पर बने रहे।<sup>४</sup> सम्भव है ये लोग गूढ़ रहें हों।

साक्षी देने के लिए अनुपयुक्त व्यक्तियों की सूची में नारद की नाथ (किसान) को भी शामिल किया है।<sup>५</sup> सातवीं शताब्दी का एक भाष्यकार कीर्तिनाथ नारद का अर्थ गूढ़ बताता है।<sup>६</sup> इससे प्रकट होता है कि किसानों को गूढ़ माना जाता था। बहस्पति ने खेतों की सीमा से सम्बन्धित झगड़ों में अगुआ की तरह काम करनेवाले गूढ़ों को बहुत बठोर शारीरिक दण्ड देने का विधान किया है।<sup>७</sup> इससे भी यह निष्कप निकलता है कि गूढ़ों के पास खेत थे। और फिर अतः में ह्वत्साग ने भी गूढ़ों का कृषक कहा है।<sup>८</sup> इस बात का पुष्टि दसवीं शताब्दी से पूर्व सकलित नरसिंह पुराण से भी होती है।<sup>९</sup> इस प्रकार गूढ़ों के वास्तविकी का धंधा अपनाए की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति गुप्त काल में प्रारम्भ हुई और सातवीं शताब्दी के मध्य तक पूरी तरह सम्पन्न हो गई।

१ नाति पव ६० २४ २६ ६२ २ ।

२ २ ६ ६ ।

३ मनु स्मृति ४ २५३ विष्णु पुराण ५७ १६ याज्ञवल्क्य, १ १६६ ।

४ ए० ६० १ न० १ पविन ३६ ।

५ १ १८१ ।

६ हि० व० ३० पी० २ २८६ ।

७ नागद स्मृति (१ १८१) पर असहाय का भाष्य ।

८ १६६ ।

९ वाटस, ऑन मुञ्जान च्याग्म ट्रेवेन्स इन इण्डिया १ १६८ ।

१० ५८ १० १५ ।

यह मत कि कृषक-वर्ग में अधिकांशतः गूढ़ लोग ही थे,<sup>१</sup> गुप्त काल और गुप्तोत्तर काल पर अधिक घटता है और उससे पहले के काल पर कम। इस तरह गूढ़ का दासा और श्रमिका की स्थिति से निकल कर कृषक की स्थिति में आना सामंतवाद के उदय की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कारक तत्व माना जाना चाहिए।

जान पड़ता है गूढ़ शासक-वर्ग का ब्राह्मणों का भूमि-दान दिया जाना अच्छा नहीं लगता था। गया जिले में प्राप्त मध्य छठी शताब्दी के एक दानपत्र में कहा गया है कि इस शूद्र से बचाना चाहिए। उसमें प्रयुक्त 'गूढ़करेदरगुण' शब्द से ऐसा ही प्रकट होता है।<sup>२</sup> यहाँ रुडि के अनुसार दाता अपने वंशजों तथा श्रम्य लागों को भी यह निर्देश तो देता है कि वे ग्रहीता द्वारा दान में प्राप्त सम्पत्ति का उपभोग में कोई बाधा नहीं पहुँचायें साथ ही वह उसे गूढ़ों में भाँ बँचाने की आवश्यकता बताता है। यहाँ दान में दी गई सम्पत्ति को ऊपर के वर्ग का श्रेष्ठ से ता खतरा बताया ही गया है, निचले वर्ग की श्रेष्ठ से भी उसे खतरा बनाया गया है। किन्तु बाद के किसी भी दानपत्र में उक्त शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। इससे लगता है कि किसानों के बीच धार्मिक दानों के आध्यात्मिक महत्व का धीरे धीरे प्रचार किया गया जिसमें ऐसे दानों के प्रति उनका विरोध बहुत कुछ कम हो गया।

✓ मध्य-कालीन यूरोप में सामंतवाद स्वतंत्र आत्मनिर्भर धार्मिक इकाइयों के उदय के कारण पनपा। भूमि अनुदानों और कुछ श्रम कारकों से भारत में भी ऐसी इकाइयों का उदय हुआ। ग्रहीताओं को तरह-तरह के धार्मिक अधिकार होते थे जिनके परिणामस्वरूप दान किये गये क्षेत्रों और केंद्रीय सत्ता के बीच के तमाम धार्मिक बंधन खण्डित हो गये। अपनी श्रम-व्यवस्था का कायम रखने और विकसित करने के लिए वे केंद्रीय सरकार के धमलों की अपेक्षा स्थानीय बारीगरों और शासक-वर्ग पर अधिक निर्भर रहने लगे।

१ वी० हि० इ० १ २६८।

२ ज० ए० सो० ब०, यू० ए० ५ (१६०६) १६४। महाराज नन्दन कश्यप-ताम्रशासन (ए० इ०, १०, न० १०) का सम्पादन करते हुए टी० ग्लॉबे ने कहा है कि इस शब्द समुच्चय का 'शूद्र केनोत्कीर्णम्' पठना चाहिए। लेकिन ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दिखायी देता। स्पष्ट ही उसे "गूढ़करेदरगुण" ही पढ़ा जा सकता है, यद्यपि यह अगूढ़ सम्पत्ति है।



घड़ीता लोग सामान स्थानीय करों का हस्तांतरण, और इन करों में प्रायः राशि का कुछ भाग वे अथर्व ही स्थानीय कार्यों में लगाने प्राणिते। किसानों का, व जातों जोतन में उनमें बाँध कर रखने का मुख्य उद्देश्य यही था कि गाँव की आत्मनिर्भर व्यवस्था सशुद्ध रहे। दक्षिण बिहार में इस उद्देश्य को ध्यान में रख कर एक और भी सावधानी बरती जाती थी। समुद्र गुप्त का नाम म जानी तौर पर जारी किया गया दो सामन्तों में, जिन सामन्तों या सामन्तों का माना जा सकता है अथर्विक में कहा गया है कि यह किमी दूसरे गाँव में ऐसे किसानों और कर्मचारियों को दान में मिल गाँव में नहीं ध्यान दे जा उग गाँव में कर धानि दे रहे हैं।<sup>१</sup> अथर्विक में प्राप्त गाँव राजकीय करों और गुल्मों में मुक्त हुआ करते थे इसलिए ग्राम पास के गाँवों में रहनेवाले लोग स्वभावतः अपने गाँव छोड़ कर एक गाँव में जा बसने के लिए बह उद्युक्त रहते थे। सन्निधत्त अंगर उन्हें इस तरह अपने पुराने गाँव छोड़ कर जाना दिया जाता तो राज्य राजस्व से तो वंचित रह ही जाता, साथ ही जिन गाँवों का छोड़ कर वे अथर्विक में बसते उन गाँवों की व्यवस्था भी अस्त व्यस्त हो जाती। अथर्विक गाँवों की आत्मनिर्भर व्यवस्था को कायम रखने में इस प्रकार का प्रतिबंध सहायक सिद्ध होता था।

और जो गाँव दान नहीं किया गये थे और इसलिए ऐसे किसी ग्रामीणों का अधीन नहीं, बल्कि ग्राम प्रधान के अधीन थे उनकी स्थिति भी इससे कुछ भिन्न नहीं थी। हम देख चुके हैं कि वास्तविक में वाममूर्त के अनुसार ग्राम प्रधान कृषकों केवल अपने स्वतंत्रता में काम करने के लिए ही नहीं बल्कि मूल बातों के लिए भी साध्य कर सकता था जिससे उसे अपनी जरूरत के कपड़ बाहर से न खरीने पड़े।<sup>२</sup> इस प्रकार जो चीजें तयार की जाती थी उनमें से कुछ बेची भी जाती थी, किन्तु उनकी बिक्री भी सम्बंधित गाँव के निवासियों की मोटी मोटी जरूरत पूरी करने के लिए ही होती थी।<sup>३</sup> मौर्य काल में जहाँ व्यापार और उद्योग का नियमन राज्य करता था अब उनकी व्यवस्था केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त स्थानीय अधिकारियों के प्रधान करने लगे थे।

१ का० इ० इ०, ३ न ६० पत्रिका १० १३।

२ ५५५।

३ वही।

ऐसी आत्म निभर आर्थिक इकाइयाँ बनती जा रही थी, इसका एक प्रमाण यह है कि गुप्त काल से ग्राम चलन की मुद्राएँ बहुत कम संख्या में मिलती हैं। ग्राम चलन की मुद्रायाँ की कमी से पता चलता है कि आंतरिक व्यापार घट रहा था और स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्थानीय तौर पर सामान तैयार करने की आवश्यकता बढ़ रही थी।<sup>१</sup> इससे यह भी मालूम पड़ता है कि केन्द्र की सत्ता कमजोर होती जा रही थी और वह धीरे धीरे अपने कमचारियों को नकद वेतन न देकर जिसा के रूप में वेतन देने अथवा राजस्व का कुछ हिस्सा उनको सौंप देने का तरीका अपना रहा था। भारतीय-विकिट्टयाई शासकों, और विशेषकर कुषाण राजाओं ने तांबे के सिक्के प्रचुर मात्रा में जारी किये। पंजाब में स्पष्टतः इन सिक्कों का ग्राम चलन या श्रद्धा यदा कदा तो यह बहुत पूर्व में, बिहार के बक्सर में द्वितीय शताब्दी तक में मिलते हैं। किन्तु कुमार गुप्त के अलावा मध्य गुप्त सम्राटों ने तांबे के बहुत कम सिक्के जारी किये। इस प्रकार पाहियान का यह कथन सत्य ही जान पड़ता है कि कौटिल्यी विनिमय के ग्राम साधन थी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी कि तांबा कीमती धातुओं की अपेक्षा अधिक क्षरणशील होता है, गुप्त काल में तांबे के सिक्कों का अपेक्षाकृत अभाव होने से प्रकट होता है कि इस काल में मुद्रा पर आधारित अर्थ-व्यवस्था की जड़ें उखड़ती जा रही थी।

ईस्वी सन की प्रथम दो शताब्दियों में राजा महाराजा और सामान्य जन भी मरिचक, ब्राह्मण आदि को नकद दान दिया करते थे, किन्तु गुप्तोत्तर काल में वे अगत भूमि अनुदान का सहारा लेने लगे थे। इससे भी इस बात का सबेदा मिलता है कि इस काल में मुद्राओं के चलन में उत्तरोत्तर अधिकाधिक कमी आती जा रही थी। पूर्ववर्ती काल में सातवाहन राजाओं ने भूमि अनुदान बहुत कम दिया और कुषाण राजाओं ने तो ऐसा कोई अनुदान दिया ही नहीं। कुषाण और सातवाहन के राज्य में भी शिल्पियों और वणिकों के मद्यों का धार्मिक कार्यों में लगाने के लिए नकद अनुदान दिये जाते थे। फिर, हर्षोत्तर काल का तो ऐसा कोई भी सिक्का नहीं मिलता जिसके विषय में निश्चयपूर्वक

१ ऐसा जान पड़ता है कि मध्य काल के प्रारम्भ में जो देश के बाहर उपनिवेश बसाने और विदेशी व्यापार के उपक्रम हुए वे तटवर्ती क्षेत्रों के साहसी लोगों तक ही सीमित थे और उनसे आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा।

कहा जा सके कि यह समुक्त राजयग ने जारी किया था। इस काल में मात्र यलभी व मद्रक राजयग का ही कुछ सिक्का जारी करने का श्रय किया गया है। लेकिन, ठीक से देखा परखा जाय तो उह भी यलभा मुक्त मानना गायन कठिन ही होगा, क्याकि वे साम्भव में गुप्त-काल का है और गुप्त की मुक्तया से बहुत मिलनी सुलती है।<sup>१</sup> बगल स्मृतिया में मुक्त व घना का उल्लेख मिलता है, भूमि नानपत्रा में भी हिरण्य के रूप में कर लगान और समूल करने की चर्चा है और कुछ अभिलेखा में भी निमाण श्रय और कुछ बीजा की बीमों सिक्का में बताई गई हैं, किन्तु वास्तव में ऐसे सिक्का बहुत कम मिल हैं जिह इस काल का माना जा सकता है। दरमसल ६०० ईस्वी में लेकर ६०० ईस्वी तक के काल में मुद्रा व भभाव की धार बहुत-से विद्वाना का ध्यान गया है।<sup>२</sup> साहित्यिक सूत्रा में सिक्का के जो उल्लेख हुए हैं<sup>३</sup> उह अधि-महत्त्व नहीं किया जा सकता क्याकि इनमें से अधिकांश कृतियाँ दमवी एता की व बाद की हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि हणवधन व समय से सिक्का का चलन आम तौर पर बहुत कम हो गया। इससे यही निष्पन्न निकलता है कि व्यापार में बहुत कमी आ गयी और शहरी जीवन समाप्त होन लगा। ईरान में भी कुछ एसी ही स्थिति उत्पन्न हुआ गई थी और इस बात में भारत और ईरान में बहुत कुछ साम्य देखा जा सकता है।

गुप्त काल की आर्थिक स्थिति पर हाल ही में प्रकाशित एक कृति में दिनाया गया है कि रोम साम्राज्य व पतन और वैजन्तिया साम्राज्य के साथ फारसी साम्राज्य की प्रतिद्वंद्विता के कारण भारत का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत कम हो गया और अब उसकी वह स्थिति नहीं रह गई जो पहली गतांगी में थी, जब प्लीनी ने क्षोम के साथ कहा था कि भारतीय सामान की पीछे रोम का पसा वह कर विदेशीय जाता है।<sup>४</sup> इस व्यापार की दो सबसे महत्त्वपूर्ण सामग्री में से

१ डा० पी० एल० गुप्त ने अपनी विचार बताते हुए मुझ ऐसा ही सूचित किया है।

२ सी० जे० ब्राउन द क्वार्टर्स ऑफ इंडिया पृष्ठ ५०, मिलाइए पृष्ठ ५५ से।

३ एल० गोपाल न ज० यु० सी० इ०, २५, भाग १ में लिखे अपने एक नए में महत्त्वपूर्ण साहित्यिक सूत्रों का उल्लेख किया है।

४ एस० के० मती, द इफोनिस लार्डफ ऑफ नॉदन इंडिया वन गुप्त पीरियड, पृष्ठ १२६।

एक थी फारसी सौगमरा के जरिये भारत से बाहर भेजा जाने वाला रेशमी कपड़ा और दूसरी थी मसाला।<sup>१</sup> बजटिया साम्राज्य में रेशमी कपड़े के व्यापार का स्थान इतना महत्वपूर्ण था कि सारे देश में उसकी कामता का नियमन करने के लिए जस्टीनियन (५२७-६५) ने ऐसा कानून बना दिया था कि एक पौंड रेशमी कपड़े की कीमत साने के आठ सिक्का से ज्यादा नहीं ली जाय, और जो कोई इस नियम का उल्लंघन करेगा उसकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली जायगी।<sup>२</sup> फारसी व्यापारी उसके साम्राज्य में रेशमी वस्त्रों का मनमानी कीमता पर बेचत थे, जिससे देश का बहुत सारा धन वह कर फारसिया के हाथ में चला जाता था। इस रोकने के लिए उसने यूथोपियावालों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे भारत से रेशमी वस्त्र खरीद कर रोमवालों के बीच बचें, क्योंकि इससे उन्हें भी काफी लाभ होगा और रोमवाले भी अपना पसा एक शत्रु-दल के लोगों के हाथों में नष्ट हो जायेंगे।<sup>३</sup> लेकिन यूथोपियावालों को भारत से रेशमी वस्त्र खरीदवाना जमम्भव जान पड़ा क्योंकि फारसवाल पूव के बन्दरगाहों पर, जहाँ भारतीय जहाज पहले पहल आकर रकते थे सारा माल खरीद लेते थे और इस तरह उन वस्तुओं की माग की पूर्ति पर पूरी तरह एकाधिकार स्थापित कर लेते थे।<sup>४</sup> इससे स्पष्ट है कि पहली शताब्दी में भारत जिस तरह मसाला से विदेशी द्रव्य अर्जित किया करता था उसी तरह छठी शताब्दी के पूर्वार्ध में वह रेशमी वस्त्रों से विदेशी धन प्राप्त करता था। प्रथम शताब्दी में रोम साम्राज्य से जो सना विदेशी को जाता था, उसे तो कानून बनाकर रोक दिया गया, किन्तु बजटिया शासन काल में नूटनीति का सहारा लेने पर भी सोन के इस बहाव को रोकना नहीं जा सका। इसका समाधान ५५१ ईस्वी में मिल पाया जब रेशम पदा करनेवाले कीड़े धल माग से छिपे तौर पर चीन से बजटिया साम्राज्य मलाय गये।<sup>५</sup> वहाँ के लोगों के बीच रेशम के कीड़ा को पालने की कला फैलने में शायद पचास वर्ष और लग हाने, और छठी शताब्दी के अन्त तक उहान पूव से रेशमी वस्त्र प्राप्त करने की समस्या

१ एस० के० मती द इन्फोर्मिन्स लाइफ ऑफ नॉर्दर्न इंडिया इन गुप्त पीरियड, पृष्ठ १३६-८।

२ वही पृष्ठ १३७।

३ रिचर्ड पकहस्ट, इन्फोर्मिन्स टू इन्फोर्मिन्स हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृष्ठ ४६।

४ वही, पृष्ठ ४६-४७।

५ वही पृष्ठ ४७।

पूरी तरह हल कर ली होगी। इससे भारत का विदेशी व्यापार को, और विशेष कर उत्तर भारत के विदेशी व्यापार को बहुत धक्का लगा क्योंकि उत्तर भारत में तो विदेशी व्यापार रेशमी वस्त्रों तक ही सीमित था। एक तो गुप्त काल तक पश्चिमोत्तर भारत का विदेशी व्यापार या ही बहुत कम हुआ गया था। उस पर जब बज्जितिया साम्राज्य ने इसके रेशमी वस्त्रों का आयात बन्द कर दिया तब इसकी स्थिति और भी खराब हो गई। जब तक कोई और चीज रेशमी वस्त्रों का स्थान नहीं लेती तब तक विदेशी व्यापार को पुनः प्रतिष्ठित करने का कोई उपाय नहीं था, और उसमें मन्दी अनिवाय थी।

इस्लाम के भण्डे का नीचे अरबों के प्रसार के कारण भी भारत के विदेशी व्यापार में कमी आई होगी। पश्चिमी एशिया में और पूर्वी यूरोप के राज्यों में अरबों के विजय अभियानों के कारण बहुत उथल-पुथल मची हुई थी। पश्चिम के देशों के साथ भारत का व्यापार पर इस स्थिति का प्रतिकूल प्रभाव पड़ना अनिवाय था। जसा कि जागे चल कर देखेंगे जब अरब लोग इन दोनों में और सिंध में शासकों के रूप में जम गये तब जाकर अर्थात् हिजरी सन की तीसरी गताब्दी से विदेशी व्यापार में फिर तेजी आने लगी। लेकिन इस बीच इसने ह्रास को रोकने वाली कोई चीज नहीं थी। इस प्रकार इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि गुप्त काल की समाप्ति के समय से और विशेष कर सातवीं गताब्दी के पूर्वार्ध से पश्चिमोत्तर भारत का विदेशी व्यापार ह्रासामुख हो चला था।

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद की सदी में चीन के साथ भारत का व्यापार बन्द पर उससे बज्जितिया साम्राज्य के साथ व्यापार बन्द हुआ जान के कारण हानवाली क्षति कहाँ तक पूरी हापाई यह कहना कठिन है। नौवीं या दसवीं गताब्दी के एक चीनी विवरण से पता चलता है कि सातवीं गताब्दी में चीन में भारतीय व्यापारी और भारत में चीनी व्यापारी मौजूद थे।<sup>१</sup> लेकिन इन दोनों देशों का पारस्परिक व्यापार वित्तासिता की दस्तुमूरों तक ही सीमित जान पड़ता है और घान्तर्विक काल में चीनी विवरण में जो कौडिया के चलन

१ एन० सी० सन-वृत एकादम ऑफ इण्डिया एण्ड काश्मीर इन द टाइमेटिक हिस्ट्री ऑफ द ग्रेट पीरियड, जो विश्व भारतीय विश्वविद्यालय गान्ति-निकेतन की ओर से प्रकाशित होने वाला है।

का उन्मुख मिलना है, उससे विदेशी व्यापार को निश्चय ही कोई उन्नेजन नहीं मिला होगा।

आंतरिक वाणिज्य-व्यापार के नाम पर जो कुछ शोष रह गया था, वह भी सामन्तवादी ढाँचे में ढल गया। गिन्पिया और वणिका के सघो क काय कलापा क सम्बन्ध में स्मृतियाँ में विस्तारपूर्वक जो नियम निर्धारित किये गये हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। राजा से न केवल इन सघो के नियमों के पालन को, बल्कि दूसरा से उनका पालन करवाने को भी अपन्था की गई है। यह बतलाता है कि केंद्रीय सत्ता कमजोर हो रही थी। बृहस्पति का तो कहना है कि सघो के प्रधान दूमर लोगो के साथ सञ्ज या त्रम जो भी कारवाई करे उसका अनुमोदन करना राजा का कर्तव्य है।<sup>१</sup>

वाम्भव में स्थिति क्या थी इसका अनुमान पश्चिमी भारत क तटवर्ती क्षेत्रों क राजाघो द्वारा व्यापारियों के सघो को दी गई सनदा से लगाया जा सकता है। य सनद छठी शताब्दी क अंतिम वर्षों और आठवी शताब्दी क प्रारम्भिक वर्षों के बीच जारी की गई थी। इनमें से पहली सनद का अनुवाद पहले तास्निंगच द्वारा सरकार ने किया<sup>२</sup> और बाद में अपनी टिप्पणियों के साथ साथ दामादर कोमण्डो ने।<sup>३</sup> इस सनद से मालूम होता है कि ये व्यापारी किस प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। इनमें मत्त रावर नील अदरख, तल कपडे, लरणी लोह और चमडे आदि क सामान क व्यापार का उल्लेख है।<sup>४</sup> इसमें राज्य मूद्रा और नाप-तोल का नियमन तो करना है<sup>५</sup> किन्तु उनका नियंत्रण उतना कडा नहीं है जितने कडा नियंत्रण का विधान कोटिल्य ने किया है। कुल मिलाकर व्यापारियों के निकाय को काफी स्वतन्त्रता दी गई है। उन्हें कई तरह क गुन्का से भागी दे दी गई है और वे अपने श्रमिका, चरवाहो आदि क साथ इच्छानुसार व्यवहार करने को स्वतन्त्र हैं।<sup>६</sup> उन्हें लोहारा, चुनकरा, नाइया, कुम्हारा तथा अन्य गिन्पिया से बगार लेने का भी अधिकार

१ बृहस्पति-मृत्ति १७ १८।

२ ए० इ० ३०, १६३ ८१।

३ ज० इ० सो० हि० आ० २ २८१ ६३।

४ वही, २८५।

५ ए०, इ०, ३०, न० ३०, पक्ति १०।

६ वही पक्ति ८।

दिया गया है।<sup>१</sup> किन्तु व्यापारिया के अलग अलग तथा के लिए एक-दुमरे के साथ स्पर्धा करने की गजाइया नहीं छोड़ी गई है, क्योंकि व एक ही बाजार में व्यापार नहीं कर सकते।<sup>२</sup> अथवा कुछ गिल्दी व्यापारिया से यह प्रपणा जरूर रखी गई है कि वे अपने सामान साधारण ग्राहकों के हाथों जिम मूल्य पर बेचते हैं, उससे प्राये मूल्य पर राज्य को दें<sup>३</sup> तथा कुछ दूसरे लोग में करों के बदले अपना धर्म देने को कहा गया है। इनके अतिरिक्त व्यापारिया के लिए कई तरह के सीमा-कर चुगो और विप्रय-कर दना आवश्यक है कि तु बन्ने म उहें भी यह मुविधा दी गई है कि उनके क्षेत्र म राज्याधिकारीगण प्रवण नहीं कर सकते और उनके खच के लिए उहें कोई शुल्क और पुराक नहीं दनी पडेगी।<sup>४</sup> पुत्र हीन व्यापारी की सम्पत्ति अपने हाथ म लेने का अधिकार भी राज्य छोड देता है जब कि वह स्थित स्मति म उस यह अधिकार दिया गया है और शात्रु तलम म इसके प्रयोग का भी प्रमाण मिलता है। वणिग्प्राम को दी गई ये मुविधाएँ कुछ उसी प्रकार की हैं जिस प्रकार की मुविधाएँ ईस्वी सन की प्रारम्भिक सदिया से ही मदरो और ब्राह्मणों को दी जा रही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तटवर्ती क्षेत्रों में स्वतन्त्र आर्थिक इकाइयाँ उभर रही थी। सातवीं शताब्दी में ऐसी कोई सनद नहीं मिलती किन्तु कोकण क्षेत्र के चानुक्य नपति द्वारा आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जारी की गई दा सनदा से स्पष्ट हो जाता है कि व्यापारियों की श्रेणिया का महत्त्व बढ गया था। उहें अपने कारोबार की व्यवस्था आप ही करने की पूरी छूट थी। एक सनद में एक मदिर को आठ गाँव और बहुत सा धन दिया गया। इनकी व्यवस्था का अधिकार स्थानीय व्यापारियों के पाँच पाँच या दस दस क समूहों को प्रदान किया गया, तथा इन व्यापारियों को वापिक धार्मिक शोभायात्राओं का प्रब ध करने

१ ए० इ० ३० न० ३० पक्ति २८।

२ कामसबी न सवश्रेणिनाञ्चवापणनं न देय (ए० इ० ३०, न० ३०, पक्ति ६) का अर्थ यह लगाया है कि सभी श्रेणियों को एक ही तरह का व्यापारिक शुल्क नहीं देना है (ज० इ० सो० हि० प्रा० २ २८६) लेकिन इससे प्राग के अंग अर्थात् सवश्रेणिमि खोवा (?) दानम न दात व्यम को देखते हुए ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं लगता।

३ ए० इ० ३० न० ३० पक्ति २८।

४ वही पक्ति ६६।

का निर्देश दिया गया और उन्हें चुंगी तथा राज्याधिकारियों के लिए रसद जुटाने के दायित्व से मुक्त कर दिया गया।<sup>१</sup> दूसरे मामले में एक उजड़ा शहर बसा कर पडोस के तीन गांवों के साथ दो व्यापारियों को दे दिया गया, और उन्हें एक प्रकार की म्युनिसिपल सनद प्रदान की गई। इन व्यापारियों को भोगसक्ति के राज्य में सदा के लिए सभी प्रकार की चुंगियों से छूट दे दी गई और यदि वे दुनिया से पुत्र हीन ही चल बसते तो भी राजा को उनकी सम्पत्ति स्वायत्त करने का अधिकार नहीं था और न राज्याधिकारी लोग उनके घरों में प्रवेश करके उनसे अपने लिए खच खुराक ही माग सकते थे।<sup>२</sup> इतना जरूर है कि व्यक्तिगत रूप से अथवा किसी को घोट पहुँचाने के अपराध में व्यापारियों पर जुर्माना किया जा सकता था किंतु ऐसे मामलों के निपटारे का अधिकार भी शहर के आठ या सोलह श्रेष्ठ जनों के हाथों में ही था।<sup>३</sup>

इन सनदों के सम्बन्ध में तीन बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह कि ये अनुदान शिल्पियों को नहीं, बल्कि व्यापारियों को दिए गए और दान में दी गई सम्पत्ति अथवा शहर की व्यवस्था का अधिकार उन्हीं में से कुछ व्यापारियों का दे दिया गया। ऐसे व्यवस्थापकों की सग्या बहस्पति की स्मृति में विहित सत्या से मिलती जुलती है। बहस्पति के अनुसार दो, तीन या पांच व्यक्तियों को श्रेणि का परामशदाता नियुक्त करना चाहिए।<sup>४</sup> दूसरी बात यह है कि इन सनदों ने व्यापारियों के सिर गाँवा के प्रबन्ध का बोझ डाल दिया। इन व्यापारियों को सनद से प्राप्त गाँवों में लगभग वही रियायतें और सुविधाएँ प्राप्त थीं जिनका उपभोग पुरोहित और गायद सामन्त सरदार भी उन गाँवों में करते थे जो उन्हें अनुदान में मिले हुए थे। परंतु चूँकि वे गाँवों के प्रबन्ध में व्यस्त थे, इसलिए वे अपना पूरा ध्यान अपने व्यापार की ओर नहीं दे पाते थे। इन सनदों से प्रकट होता है कि ये व्यापारी भी सामन्त वादी सौच में डल रहे थे क्योंकि इन सनदों के कारण एक प्रकार से वे भी भूमिपर मध्यवर्ती लोग बनते जा रहे थे। तीसरी बात यह थी कि प्रत्येक श्रेणि की गतिविधियाँ उसका अपने क्षेत्र तक ही सीमित रहती थीं, जिससे एक

१ ११० ई० ई० ८ न ३१, पत्तियाँ २५, ४६, ५६, ६२ ।

२ वही, ३२, पत्तियाँ २७, ३८ ।

३ वही ।

४ १७, १० ।



श्रेणि के लिए दूसरे से होड़ करन की गुजाइश नहीं रह गई थी। यह मध्य काल की गतिहीन श्रयव्यवस्था की त्वास विनोपना थी।

कुछ कुछ इसी प्रकार की एक चौथी सनद मसूर के धारवार जिले में मिली है। यह लगभग ७२५ में जारी की गई थी। दाता है बादामी का चालुक्य युवराज विज्रमादित्य और ग्रहीता पोरिगिरि के अर्थात् वर्तमान लम्बेस्वर शहर के, महाजन (प्रमुख ब्राह्मण नागरिक ?)। इसमें राजकर्मचारियों और उस शहर के निवासियों के पारस्परिक दायित्व का निर्देश किया गया है।<sup>१</sup> रायाधिकारियों से कहा गया है कि वे राजकीय दाना की रक्षा करें राजघोषणाया का पालन कराए, खाली घरा की देख भाल करें, (सम्पत्ति के) उपभोग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ने दें आदि।<sup>२</sup> दूसरी शर नगर के हर परिवार को जिले के शासका को कर देने की हिदायत दी गई है।<sup>३</sup> ऐसा जान पड़ता है कि (महाजनो की) श्रेणि से मात्र इस दायित्व के निवाह की अपेक्षा रखते हुए उसे यह अधि कार दे दिया गया है कि वह गृहस्था की आर्थिक स्थिति के अनुसार उन पर कर लगा सकती है चोरी छोट मोट दुराचारा और दसा अपराधा के लिए स्वायत्त कर सकती है।<sup>४</sup> शहर में कई और भी श्रेणियां हैं क्योंकि हर परिवार में अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक ठठेरा की श्रेणियां हैं क्योंकि हर परिवार सकेन देती है। उह शहर के लोगो से केवल धार्मिक कर ही नहीं घमंतर कर वसूल करने का भी अधिकार दिया गया है।

गुप्त-काल में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जब चूगी और महसूल से होनेवाली आय मन्दिरों को अनुदान में दे दी गई हो। राजा और सरदार लोग धार्मिक प्रयोजना के लिए कुछ नकद देकर स नोय कर लेते थे।<sup>५</sup> ऐसा लगता है कि एक प्रमग पर यह राशि पांच व्यक्तियों की एक समिति को सौंप दी गई।<sup>६</sup> इससे प्रकट हाता है इम सम्बन्ध में कुपाण कालीन

१ प० ६०, १४ न० १४।

२ वही, १८६।

३ वही १६०।

४ वही।

५ का० ६० ६० ३ न० ५७ ८६।

६ वही न० ५ मिलाए ज० ६० सो० हि० प्रॉ० २ ०८३ से।

रीति अब भी जारी थी। उन दिना मध्य भारत और दक्षिण भारत के पश्चिमी हिस्स में बहुत सी श्रेणियाँ धार्मिक प्रयोजनाँ सँदी गईं राणियों के धातीदारा का काम करती थीं और उन राणियाँ पर व्याज भी दिया करती थी।

पश्चिमी भारत में गुप्त काल से पूर्व गिल्दियों की सन्ध्या अधिक थी, मार एमा नहीं है कि गुप्त काल में या उसके बाद के बिलकुल समाप्त हो गईं। किन्तु उस क्षेत्र में उह कभी भी कोई सनद नहीं दी गई और जितनी भी सनदें दी गईं, सब व्यापारियों की श्रेणियों का ही दी गईं। ऐसी सनद सबसे पहले गुप्त काल के अन्तिम दिना में जारी की गईं। इस सनद से प्रकट होता है कि जिस प्रकार पुराहिना और मंदिरा को कृपको पर सत्ता दे दी जाती थी, उसी प्रकार व्यापारियों को भी गिल्दियाँ पर सत्ता चलाने का अधिकार दे दिया जाता था। मंदिरा और पुराहिनों का दिया गया दानपत्रा का मतलब होता था ग्रामीण क्षेत्र में राजकीय सत्ता का त्याग और व्यापारियों को दी गयी सनदा का मतलब होता था शहरी इलाके में उसका त्याग। पहले मामले में ग्रहीताओं की जरूरत का पूरा करन के लिए दान की गईं भूमि के साथ किसान लोग भी उह सौंप लिये जाते थे और दूसरे मामले में व्यापारी ग्रहीताओं की आवश्यकताओं का ध्यान में रखात हुए उह श्रमिक और गिल्दियों पर पूरा अधिकार दे दिया जाता था। पहले मामले में जहा पुरोहिना को ग्रामीण आबादी पर कर लगान का अधिकार होता था वहा दूसरे मामले में कालक्रम से महाजना को भी शहरी लोगों पर कर लगाने का अधिकार दिया जाना लगा। जा भी हो पश्चिमी भारत और कर्नाटक के राजाओं द्वारा जारी की गईं सनदा की तुलना मध्ययुगीन यूरोप में ऐसे ही संधा का दी गईं सामंतवादी सन्ध्याँ से की जा सकती है। और इन सनदा तथा धर्मशास्त्रों में दिहित नियमों से इस बात का मकन मिलता है कि व्यापारियों की श्रेणियाँ राजकीय नियंत्रण से अधिकाधिक स्वतंत्र होती जा रही थीं और व उत्तरोत्तर आत्मनिभर भी बनती जा रही थीं।

मौर्योत्तर काल और गुप्त काल में निगम अपने सिक्के जारी किया करत थे। यह बात भी स्वतंत्र और आत्मनिभर आर्थिक इकाइयों के उदय का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इससे दगा के राजनीतिक दृष्टि से छोटे छोटे टुकड़ा में बँट जाने की प्रवृत्ति को और उत्तजन मिला क्योंकि सिक्के जारी करना प्रभुमत्ताधारी का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काम था। इसके अतिरिक्त हम देखते हैं कि नालंदा के गाँवाँ ने अपनी मुहरें जारी की थीं और गुप्त-काल में भी

य घण्टे घण्टेको जगत् बना करत थ । एगले दूग घण्टे का घण्टे । मरता है  
 तिस गीत न कवन राजीविक निस म रगत, यी क घाविक निस म घण्टे  
 निभर नकाइया क रत म उभर रत थ । गीत नारा जगत् का म क म म म म  
 चार गमी मुग्ध को ता पहापाता जा गचना है । पहा गिरफ घोर मुग्धे गिक  
 तिम ही जारी करत थ तिनु मुग्धोपर का म मीव मो रना बना सग  
 गय ।

गुप्त काल म निषाई का काम भा र्था गीय नकाइया क रनाया । जान मना  
 था । कीटिह्य क घण्टा म विरिा प्रकार को निषाई क रित निषाई  
 द्वारा राज्य को तिस जावाथ शु क निर्धारित किये गय है । एगल प्रकार जगत्  
 है कि निषाई की व्यवस्था मुख्यतः राज्य करना था । एगल गीत क विवरण  
 म भा जात हुता है कि राज्य निषाई निरोध रना करना था । एग राजा  
 रत्नाम (लगभग १५० ईस्वी) नावा करता है कि उगा प्रता पर काई क रित  
 कर सगाय घोर उमग बगार तिस विता मीगट्ट क प्रगिउ मुग्ध गरीधर का  
 जीर्णोद्धार करवाया । मगत काल म मग जिम्हारी मग्धा पग प्रता क कामना  
 की थी । लेकिन दुग्धो मग क प्रारम्भिक यगी म ही लागत र सता सता दतावा  
 म सिचाई क मन्वथ म घण्टी घार स गहल करता गुरु कर रिया था । इयन  
 प्राइसॉस्टम (लगभग १० ११७ ईस्वी) कहता है कि भारत म यधी घोर छोटी नन्धिया  
 से पानी लाने के लिए लोग खुद्दी बटून सनात बना ता है ।<sup>१</sup> घाग घनकर यह  
 स्पति की स्मति म कहा गया है कि सिचाई क हा<sup>२</sup> की दन रग धणिया का करनी  
 चाहिए । सामग्री के अभाव म हम इस प्रतिया का अनिहास तो गही जात मगत  
 लेकिन जब एक बार यह प्रवति प्रारम्भ हा गई तो निश्चय था कि इसस कन्द्रीय  
 सत्ता की जहें कमजार होगी और स्वतंत्र घाधिर इकाइया क उदय म सहायता  
 मिलेगी ।

१ ऊपर के विश्लेषण के आधार पर हम कुछ माट निष्कष निवास सक्त हैं ।  
 भारत म राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण का कारण यह नही था जो यूरोप

१ मजुमदार और अलतेकर द वाकाटक गुप्त एज पठ २६० ।

२ भोरैणियो ३५ ४३४, मकत्रिडल एशियट र विभा गेज रिक्वाइन्ड इन  
 क्लामिन्स लिप्रेचर पठ १७५ ।

३ वीरभद्रोदय (पठ ४२६ मे) मित्र मिश्र दसे 'कुल्यायन निरोध' पढते  
 हैं, किन्तु ब्रह्मस्पति स्मति (१७ ११ १२) म यह 'कुल्यानाम् निरोध' है ।

मे था । यही यह परिवर्तन मनुक सेवा प्रदान करनेवाला को दी गई जागीरा का परिणाम नहीं था । यहाँ ता विक्रीकरण की प्रवृत्ति का सबसे बड़ा कारण ब्राह्मणों और मीरों का भूमि अनुदान देना था । यह तो स्पष्ट ही है कि यूरोप की तरह यहाँ सामंतीकरण में विदेशी आक्रमणों का कोई विशेष हाथ नहीं था ।

ब्राह्मणों का दान क्रिय गय अग्रहार यूरोपीय जागीरा से कुछ कुछ मिलते जुलते हैं क्योंकि कहीं कहीं ग्रहीताओं का अपनी रयन से हर तरह का बगार देने का अधिकार दिया गया था । वेगरी प्रथा की व्याप्ति बहुत अधिक जान पड़ती है और ऐसा लगता है कि ग्राम प्रबन्ध जा किसान स्त्रियों से अपन खता और धरा में जबरन काम लेता था, यूरोपीय ढंग का जागीरदार बनता जा रहा था । लेकिन, जहाँ यूरोप में कुल मिलाकर किसानों का अपना बहुत सारा समय और शक्ति अपने प्रभु के खेतों में काम करने में लगानी पड़ती थी, वहाँ भारत के किसान अपना अधिकांश समय अपने ही खेतों पर काम करने में लगाते थे और उनकी उपज का एक बहुत बड़ा हिस्सा ग्रहीताओं और दूसरे मध्यवर्ती लोगों के हाथों में चला जाता था । लेकिन, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर कहा जा सके कि अधिकांश किसानों का सावकास मध्यवर्ती लोगों से पड़ता था । इसके विपरीत, स्वतंत्र किसानों की संख्या बहुत अधिक जान पड़ती है । फिर, उसी समय की संरचना का सिलसिला भारत में उतना अधिक नहीं था जितना यूरोप में था । इसलिए भूमि के असली जानदारों का केन्द्रीय सरकार से कुछ अप्रत्यक्ष सम्बन्ध बना हुआ था ।

✓ वगानुगत प्रशासकों के लिए पुरालेखा में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उन्हें ठीक-ठीक समझ पाना बहुत कठिन है । फिर भारत उस विशाल देश में, इस सन्दर्भ में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग शब्दों का प्रयोग हुआ है । इसलिए सामंती संगठन की विभिन्न श्रेणियों के बारे में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता और न यही बताया जा सकता है कि सामंत, उपरिक्त, भागिक प्रतिहार, दण्डनायक आदि क एक दूसरे से क्या सम्बन्ध थे । लेकिन इनका तो अर्थ स्पष्ट है कि गुप्त काल के अंतिम दिनों में, अर्थात् ५०० ईस्वी के आस पास तक वगानुगत मध्यवर्ती लोग अच्छी खासी संख्या में तयार हो गये थे और उनके कारण बहुत से स्वतंत्र किसानों की स्थिति अध-दासा के समान हो गई थी । लेकिन यहाँ का सामंतों का इंग्लैंड जितना जटिल नहीं था और न इसमें उतनी श्रेणियाँ ही थी, जितनी हम इंग्लैंड के सामंती ढाँच



का प्रसार, किसानों, शिल्पियों और व्यापारियों के अपनी इच्छानुसार जहाँ चाह वहाँ जाकर बसने पर रोक लगाना, मुद्रा का अभाव, व्यापार का ह्रास, राजस्व-व्यवस्था तथा दण्ड प्रशासन का धार्मिक अनुदान भोगियों के हाथों सौंप दिया जाना, अधिकारियों को वेतन स्वरूप अलग अलग क्षेत्रों का राजस्व सौंप देने की प्रवृत्ति का प्रारम्भ, और सामन्ती दायित्वों का विकास। परवर्ती काल में ये प्रवृत्तियाँ कहाँ तक कायम रही और इतना कहाँ तक परिवर्तन आये, इसका विचार हम अगले अध्याय में करेंगे।

## परिच्छेद २

# तीन राज्यों में सामन्ती राज्य-व्यवस्था

(लगभग ७१० १००० ई०)

गुप्त राजाशा और हप के समय में भूमि अनुदान के प्रहीताओं को प्रशासनिक और राजस्व विषयक अधिकार देने की जो प्रक्रिया शुरू हुई, वह बाद के राजाओं के समय में भी चलती रही। गुप्त राजाशा ने खुद बहुत कम अनुदान दिये पर मध्य भारत के उनके सामन्तों या अधीनस्थ सरदारों ने बहुत से गांव दान किये। लेकिन, पाल शासन काल में साधारणतया राजा स्वयं ही अनुदान दिया करता था। इसका सबसे पहला उदाहरण धमपाल है। उसने उत्तर बंगाल में अपने सामन्त नारायणवर्धन द्वारा गुप्तस्थली में स्थापित नए नारायण मन्दिर को चार गांव दिये।<sup>१</sup> इस अनुदान के असली मोक्षों के लाट ब्राह्मण, पुरोहित और मन्दिर के अन्य सबक थे जिनका उत्कल अनुदानभोगियों के रूप में किया गया है।<sup>२</sup> तलपाटक (खाई खड्डा में पडने वाली जमीन) और हट्टिकाआ (पेठा) के साथ साथ ये गांव सदा के लिए दान कर दिये गए, प्रहीताओं का यह अधिकार दिया गया कि वे गांव के निवासियों को दगापराध के लिए दण्ड दें और इन गांवों का राजाशा और राजकर्मचारियों के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया गया।<sup>३</sup> धमपाल ने गामद नाल का क्षेत्र में बौद्धों के अनुदानों का एक गांव प्रदान किया। उन गांवों में जो राज्याधिकारों प्रवेश नहीं कर सकता था और प्रहीताओं का चारा को सजा देने का भी अधिकार दिया गया

१ ए० ई०, ४ न० ३८ पंक्तियाँ ३० ५२।

२ वही, पंक्तियाँ ५० १।

३ वही पंक्तियाँ ५२ ३।





घोरा को सजा देने का भी अधिकार लिया गया है। जब कि मध्य भारत व गुप्त तालीन भूमि दानपत्रों में यह अधिकार दाना सामान्यतः घने हाथों में ही रहता था। इस घना प्रहीताओं की दस अपराधों के लिए भी दण्ड देने का अधिकार लिया गया है। य दस अपराध इस प्रकार बताये गये हैं जा वस्तु ही नहीं गई हो उम जरूरी प्राप्ति करना विधि विरुद्ध हत्या करना दूसरा की पत्निया व साथ व्यवहार करना किसी में दुर्वचन करना समय का आचरण करना किसी भी प्रकार की मिथ्या निष्ठा करना भ्रमगनान करना दूसरा की सम्पत्ति पर घात गडाना गलत धोखा के बारे में सोचना और जो सत्य नहीं है उम पर दुराग्रहपूर्वक आदृष्ट रहना।<sup>१</sup> इस गृहीत परिवार, सम्पत्ति या व्यक्ति के सम्बन्ध में किये जानेवाले प्रायः सभी अपराध आ जाते हैं। हो सजना है अतिम चार अपराधों की भार कोट ध्यान नहीं देना है। लेकिन इसमें से देह नहीं कि ग्य गाँव व अन्तर प्रहीता की जानकारी में दूसरे अपराध किये जाते हैं ता उनके लिए अपराधी को अन्तर् हो ल्या जाता होगा। दगापराधदण्ड का मतलब यह लगाया जाता है कि कितना अपराधों के लिए जुर्माने वसूल किये जाते थे<sup>२</sup> लेकिन यहाँ दण्ड गत्य को जुर्माने के अर्थ में न लेकर सजा के अर्थ में ही लेना चाहिए। इसलिये यही मानना ठीक होगा कि भाक्ताओं को इन अपराधों के लिए दोषी लोगों की दण्ड देने का अधिकार प्राप्त था और दण्ड जुर्माना और शारीरिक कष्ट में से कुछ भी हो सकता था। इस प्रकार प्रहीताओं को दण्डविधान और याय के प्रशासन का अधिकार देने का चलन ८वीं सदी व मध्य में शुरू होकर पाल साम्राज्य को एक सामान्य विधेयता बन गया। अब मन्त्रियों और ब्राह्मणों तथा पुजारियों आदि धर्म वाय से सम्बद्ध लोगों के हाथों में राजस्व और प्रशासन सम्बन्धी ऐसे अधिकार आ गये जिनका उपभोग उन्होंने बिहार और बंगाल में इससे पूर्व कभी नहीं किया था।

इस काल में प्रतीहार राजाओं ने उत्तरी भारत में ब्राह्मणों को बहुत से गाँव दिये जिससे उनकी शक्ति बढ़ी। ८३६ में प्रथम भोजदेव ने कायकुब्ज भुक्ति क कालजर मण्डल में एक पुराना अग्रहार फिर से दान किया। मूलतः यह अनुदान एक सामन्त राजा ने द्वितीय नागभट्ट की अनुमति से दिया था, लेकिन रामभद्र के राज्य काल में स्थानीय अधिकारियों की अक्षमता के कारण वह

१ का० इ० इ०, ३ १८६, पा० टि० ४।

२ वही १८६।

अग्रहार समाप्त हो गया था। इसलिए भोज ने पुराने ब्राह्मण परिवार को वह गाव पुन प्रदान किया उस पर केवल इतना प्रतिबंध लगाया कि जा-कुछ पहल ही दबताओं और ब्राह्मणों का दान दिया जा चुका है उसका उपभोग वह नही कर सकता है।<sup>१</sup> भोजदेव ने ही गुज्जरतराभूमि म इनी प्रकार एक और पुराने अग्रहार के अनुदान को फिर से चाल किया। यत् अनुदान उनके प्रपितामह के समय म निष्प्रभाव हो गया था, किन्तु भोज ने ग्रहीता व पीन को उसे पुन दान किया।<sup>२</sup> इन दोनों उदाहरणों से प्रकट होता है कि एक बार जब अनुदान दे दिया जात थे तो उन पर सिद्धान्तत और व्यवहारत ग्रहीताओं का वगानुगत अधिकार कायम हो जाता था और मूलतः दान देनेवाले राजा के उत्तराधिकारियों के लिए उन अनुदानों का बनाय रखना आवश्यक होता था— तब भी जब कि एम अनुदान सामन्त राजाओं द्वारा दिये जात थे। भोज व पुत्र और उत्तराधिकारी महेंद्रपाल न छपराजिन म जो उन दिना श्रावस्ती भूमि म पढता था, एक ब्राह्मण का पूरी आय के साथ एक गाव दान किया।<sup>३</sup> ८०१ म महीपाल न भी बनारस म एक गाव एक ब्राह्मण को इहा शर्तों के साथ दान किया।<sup>४</sup> द्वितीय महीपाल न ग्वानियर म एक मंदिर का एक गाव लानग इही शर्तों पर दान किया अनंतर केवल इतना था कि यह गोचर भूमि के साथ-साथ दान किया गया।<sup>५</sup>

प्रतीहार राजाओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दान किये गये गावों के सम्भ म कृषि और प्रशासन सम्बन्धी उन विभिन्न अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता जा पाल अनुदान पत्रों म ग्रहीताओं को हस्तांतरित कर दिया गया है। प्रतीहार अनुदानपत्रों म केवल सम्बन्धित गावों से हानवाली आय ही ग्रहीताओं का सीपी गई है और पालों के अनुदान पत्रों की तरह इतना भी ग्रामवासियों को ग्रहीताओं की प्राप्ति मानने और उन्हें सभी कर व शुल्क देने का आदेश दिया गया है। प्रतीहार राजाओं ने उपयुक्त अनुदान धार्मिक कारणों से दिये,

१ कॉ० ३० ३० १६, न० २ पंक्तियाँ १-१६।

२ वही, ४ न० २८ पंक्तियाँ ८-९।

३ ३० ए०, १५, पृष्ठ ११२ १३, पंक्तियाँ १ १०।

४ वही पृष्ठ १३८ पंक्तियाँ ६ १७।

५ ए० ३०, १५ न० १३ पंक्तियाँ ६ १३।

किन्तु उनका मंगना चाहे जो रहा हो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके परिणाम-स्वरूप राजा और काश्तकार। क बीच एक भूमिधर बग का उदय हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतीहारों के सामन्तों के राज्य। मह प्रक्रिया और भी प्रबल रूप में विद्यमान थी। काठियावाड़ में चालुक्य सामन्त प्रथम अश्वनिवसन के बटे बलवसन न ८६३ में तरणादित्यदेव के मंदिर को एक गांव दान किया। उसने भोक्ता को दत्ता अपराधा के लिए दोषी लोगों को दण्ड देन लोगों से कर लेने तथा से होनेवाली आय का उपभोग करन तथा कुछ अर्थ अधिकार भी ता स्पष्ट नहीं हैं प्रदान करते हुए सरकारी अधिकारियों और प्रतिनिधियों को निर्देश दिया है कि 'उसमें प्रवृत्त न कर।' उसी वंश में एक दूसरे चालुक्य सामन्त द्वितीय अश्वनिवसन न राज्याधिकारी विद्वक की अनुमति से उसी दत्तता का नाम उही गतों पर एक अर्थ गांव दान किया।<sup>१</sup> ९१४ में पूर्वी काठियावाड़ के एक चाप सामन्त धरणीवराह ने एक सिद्धक का जिन गतों पर उक्त चालुक्य सामन्त ने ग्राम अनुदान दिया था उही गतों पर पुरस्कार स्वरूप एक गांव दान किया।<sup>२</sup> ९६६ में एक चाहमान सामन्त का अनुरोध पर उज्जैन का शासक माधव ने सूर्य मंदिर को एक गांव दिया।<sup>३</sup> इस अनुदान का गतों उपयुक्त अनुदान की गतों से कुछ भिन्न थी क्योंकि इसमें प्रहीता का अनुदान क्षत्र की लकड़ी और जलागया से हानवाली आय के उपभोग तथा स्कंधक भागणक आदि नये कर बसूल करने के अधिकार प्रदान किये गये हैं,<sup>४</sup> वैसे यह कर किस प्रकार का था यह बात स्पष्ट नहीं है। और अतः हम ८५६ ईस्वी में भलवर में प्रतीहारों के एक गुजर सामन्त द्वारा दिये गये अनुदान का उल्लेख कर सकते हैं। उसमें एक गठ के गुरु और एक के वाट एक जो लोग उमक गिह्य होत उनके नाम एक गांव दान किया।<sup>५</sup> उपयुक्त उदाहरणों से प्रकट होता है कि पामिक अनुदान देने का प्रथा प्रतीहार राजाघ्रा द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शासित क्षत्रा में उनकी मजबूत नहीं थी जितनी उनके अधीनस्थ सामन्त

१ ए० २० ६ न० १ ए पत्तियाँ १२०।

२ वही वी पत्तियाँ ०५८।

३ ए० १० १० १८५ पन्ट ० पत्तियाँ १२४।

४ ए० ३० १८ न० १ पत्तियाँ १८२५।

५ वही पत्तियाँ १८५।

६ वही २ न० २६ पत्तियाँ २१५।

राजाआ के इलाको म थी । ग्रहीताआ को न केवल गाँवा म कानून और व्यवस्था बनाये रखने का दायि व सौंपा जाता था बल्कि विभिन्न कर वसूल करन का अधिकार भी लिया जाता था । इस सबके लिए ग्रहीताआ को अपने अधीन कुछ कमचारी भी रखने ही पडत हामे । इस प्रकार गुजरात और राजस्थान के कुछ हिस्सो म भूमिधर धार्मिक अनुष्ठानभोगिया का एक ऐसा मध्यस्थ बग खडा हो गया जिस आंतरिक गान्ति मुयवस्था बनाये रखन और राजस्व वसूल करने का व्यापक अधिकार प्राप्त था ।

ऐसा लगता है कि पालो और प्रतीहारा की तुलना म राष्ट्रकूट राजाआ न ब्राह्मणो और मित्रा को अधिक गाँव दान किये । इसक प्रमाण हम उनक शासन काल क आरम्भ से ही मिलत ह । ७१३ ४ मे दत्तदुग ने काल्हापुर के इलाक म एक ब्राह्मण का एक बसा बसाया गाव दान किया । उसन उस भूमि-कर अधि कारिया को यदा-वदा निये जानवारे गुक आदि तमाम प्रचलित कर वसूल करन और दगापराधदण्ड के अधिकार प्रदान किये थे ।<sup>१</sup> ८०६ ७ म ततीय गोविंद ने नासिक के इलाक म एक ब्राह्मण को उपयुक्त अधिकारा के साथ एक गाँव दान म देते हुए उनन घाटा और मटो का प्रवण भी वजित कर दिया ।<sup>२</sup> ७६४ के पठन प्लेटा म भी इन सभी अधिकारा का उल्लेख है<sup>३</sup> और नासिक जिले म साभ्रपट पर जो अनुष्ठान लिया गया है उसमे भी इहे दुहराया गया है ।<sup>४</sup> ८७१ मे अमोघवप न कुछ ब्राह्मणो को एक गाव इही अधिकारा के साथ दान किया ।<sup>५</sup> इस प्रकार ततीय गोविंद के समय से धार्मिक ग्रहीताआ का पहल से भी अधिक अधिकारा के साथ अनुष्ठान देने का जा सिलसिला शुरू हुआ वह लगभग एक सदी तक चलता रहा । किंतु पचम गोविंद के ९३३ ४ क एक अनुष्ठान पत्र म ग्रहीता का वेगार का अधिकार नही लिया गया है और न दान किये गये गाँवा म सरकारी अमला का प्रवेश ही वजित किया गया है ।<sup>६</sup> ९७० ३ म ततीय अमोघवप न इही शती पर खानदेश के इलाक म एक गाव

१ इ० ए०, ११, ११२ ३ पत्तियाँ २६-४४ ।

२ वही, १५६ ६ पत्तिया २४ ५० ।

३ ए० इ० ३ न० १७, पत्तियाँ ५७ ५८ ।

४ इ० ए० ६, ६७ ६८, प्लेट २ 'बी', पत्तियाँ १२ १३ ।

५ ए० इ० १८ न० २६ पत्तियाँ ६६ ७ ।

६ इ० ए० १०, २५१, पत्तिया ५० ५३ ।

दान किया, किन्तु उस गाँव में नियमित एक ग्राम्यायी सनिका का प्रवण निषिद्ध नहीं किया गया। यद्यपि अनुदान पत्रों की गतियों में अन्तर होने रह किन्तु राष्ट्रकूट राज्य में ब्राह्मणों और पुरोहिता का अनुदान में गाँव दान की प्रथा दो सदियों से अधिक काल तक चलती रही। राष्ट्रकूटों के सभी ताघनत्र नहीं मिल हैं लेकिन जितने मिल हैं वे कम नहीं हैं। तृतीय इन्द्र ने अपने राज्यारोहण के अवसर पर ४०० गाँव जिन्हें उसके पूर्ववर्ती सामन्तों ने ग्रही ताघना से वापस ले लिया था फिर से दान किया।<sup>१</sup> चतुर्थ गाविश्व के कम्ब प्लेटों से पता होता है कि अपने सिंहासनारोहण के समय उसने ६०० गाँव ब्राह्मणों को धार्मिक एवं शशणिक प्रमाजना से दान किया और ८०० गाँव मंदिरों को दान किया।<sup>२</sup> इस प्रकार सिर्फ इन्हीं दो राजाओं ने कुल १८०० गाँव धार्मिक ग्रहीताओं को दिये। इन अर्थों की प्रामाणिकता में शक्य करने का कोई कारण नहीं है क्योंकि भूमि अनुदान दान का चलन बहुत जोरा पर था। आश्चर्य नहीं कि अनुदान में दिये गाँवों की संख्या जितनी हम मानते हैं उससे बहुत ज्यादा ही रही हो।

राष्ट्रकूट राजाओं के मण्डलेश्वरों और सामन्तों ने भी धार्मिक अनुदान दिये। ८२१ में राष्ट्रकूटों की ही गुजरात शाखा के कक्कराज सुवर्णवर्ण ने धार्मिक शिक्षकों का एक क्षेत्र सदा के लिए दान कर दिया। उसमें नियमित और अनियमित सिपाहियों तथा राज कर्मचारियों का प्रवण वर्जित था।<sup>३</sup> ज८३ में उमी घराने के तृतीय ध्रुव ने एक ब्राह्मणों का ऐसी ही गतियों के साथ एक गाँव दान किया। भोजना को तृसा अर्थात् के लिए दोषी लोगों को दण्डित करने तथा धंगार गेन का भी अधिकार दिया गया था।<sup>४</sup> इन सामन्त राजाओं ने अपने प्रभु की अनुमति के बिना ही अनुदान दिये लेकिन अमोघवर्ष के शासन काल में बनवासी के शासक बकय ने अपने प्रभु अमोघवर्ष को इस बात के लिए राजी किया कि वह एक जन मंदिर को एक गाँव और कई क्षत्र दान में दे।<sup>५</sup> कुल मिला कर राष्ट्रकूटों और उनके सामन्तों ने विद्वान ब्राह्मणों को

१ इ० ए० २६६ पक्षितया ४३ ५७।

२ अ० स० अलतकर द राष्ट्रकूटान पड दयर टाडम्म पण्ड १००।

३ ए० इ० ७ न० ६ पक्षितया ४६ ६।

४ वही २१ न० ३२ पक्षितया ४८ ५१।

५ इ० ए० १२ १८४ ५ प्लेट २ बी, पक्षितया १ १६।

६ ए० इ० ६ न० ४ पक्षितया ३५ ४६।

काफी गाँव देकर<sup>१</sup> ग्रामीण क्षेत्रा म उनकी मत्ता को मजबूत किया ।

गाँव सदा क लिए दान किय जात थ और उन अनुदाना को कायम रखना दानाभा के उत्तराधिकारिया का कर्तव्य होता था । कुछ अनुदान तो दाना-परिवारा के पतन के बाद भी कायम रहे । उदाहरण के लिए, द्वितीय इन्द्र न गुजरात घगन के प्रथम और द्वितीय ध्रुव के द्वारा दान किया गया त्रेणा नामक गाँव ग्रहीताभा के उत्तराधिकारिया को पुन दान किया । ग्रहीताभा के उत्तराधिकारिया का यह गाँव फिर स प्राप्त करने की चिन्ता इसलिए थी कि घद दक्षिण गुजरात म दाना के परिवार की मत्ता समाप्त हो गई थी ।<sup>२</sup> फिर, जमा कि हन पहले दख चुके हैं ततीय इन्द्र न पहले के राजाभा द्वारा जन दिये गय ४०० गाँव सम्बन्धित ग्रहीताभा को पुन वापस कर दिये ।

प्रतीहार ने तो नहीं लेकिन पाला और राष्ट्रकूट न ग्रहीताभा का प्रणामनिक अधिकार भी बहुत स्पष्ट ण्य म प्राप्त किये और विशेषकर राष्ट्रकूट न उन्हें दण्ड और प्रशासन के अतिरिक्त अधिकार दिये । कुछ पाल अनुदानो म दान किये गाँव म राज्याधिकारिया का प्रवण वर्जित कर दिया गया है, कुछ म स्याधी और अस्याधी मन्त्रिका का प्रवण निषिद्ध है और कुछ म तो राज रमचारिया और सन्निदा दाना क प्रवण की मनाही कर दी गई है । उनम ग्रहीताभा को दसो अपराधा के लिए दापो लाभा का दण्ड देने का अधिकार भी दिया गया है । लेकिन राष्ट्रकूट के दहन म अनुदाना म ये सभी अधिकार और सत्ता एक ही साथ द गी गई है यद्यपि उनम चारा को दण्डित करने का अधिकार साफ-साफ नहीं दिया गया है । मगर जाहिर है कि दसा अपराधा के लिए दण्ड देने क अधिकार म यह अधिकार भी आ जाता है । कुल मिला कर ऐसा प्रतात हाता है कि पाल और प्रतीहार राज्या की तुलना म राष्ट्रकूट के राज्य म धार्मिक अनुदान माँगिया की सख्या ज्यादा थी और उन्हें अधिक प्रणामनिक अधिकार प्राप्त थे ।

पुरोहिता का दान देने के इस प्रचनन की तुलना मध्ययुगीन यूरोप म ईसाई मगठना को दान देने की प्रथा स की जा सकती है । अन्तर सिफ इतना ही था कि गिरजाघरो की तरह भारत में ब्राह्मण और मंदिर सस्था क रूप म संगठित नहीं थ । किन्तु पूव मध्यकाल म भारत म धर्मोत्तर अनुदान उतने

१ अलतकर स० प्र० पु० पृष्ठ १८६ ।

२ वही पृष्ठ ६८ ।

अधिक नहीं दिये गये जितने कि यूरोप में दिये गये। भूमि अनुदानों का रूप में वेतन पानेवाले राज्याधिकारियों और सामन्तों के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। प्रथम पाल अनुदान (८०२) से पता होता है कि उत्तर बंगाल में द्वाप्राधिकार नाम से अभिहित कोई राज्याधिकारी होता था।<sup>१</sup> मनु का अनुसार द्वाप्राधिकार को एक बूले भूमि दी जाती थी।<sup>२</sup> किन्तु परवर्ती पाल अभिलेखा में यह धर्मन का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ९९३ में महीपाल ने एमा भूमि जो किसी समय बब्तों का उनकी क्षतिपूर्ति सेवाओं का एवज में उनका विवाह के लिए ली गई थी वापस ले ली।<sup>३</sup> यह धर्मन अनुदान जान पड़ता है। पाला का भूमि अनुदान पत्रों में उल्लिखित राजपुत्र राणक राजराजनक महागामन महागामनाधिपति आदि आदि एमे गामन के जिनमें से अधिकतर का सम्बन्ध भूमि से ही था। इनमें से कुछ को पराजित कर के अपने धर्मन सेना में पुनः प्रतिष्ठित कर दिया गया था और कुछ को गायद सैनिक सेवा के बदले भूमि अनुदान दिया गया था। वैसे, धर्मन प्रभु की सैनिक सेवा दोनों तरह के सामन्तों को करनी पड़नी थी।

प्रतीहारों का अभिलेखा में धर्मन अनुदानों का नाम अधिक उदाहरण नहीं मिलता। ८९० में प्रथम भोज ने गारखपुर में गुणाम्भोधि या प्रथम गुणसागर नामक बलचरि सरदार को अनुदान स्वरूप भूमि ली क्योंकि उसने गौड की श्री का अपहरण करके अपने धर्म की बटुमूल्य सेवा की थी।<sup>४</sup> द्वितीय महेंद्र पाल विष्णु के शासन काल में एक उच्च राज्याधिकारी ने दो भूमि अनुदान पत्रों पर हस्ताक्षर किये हैं।<sup>५</sup> ऐसा लगता है कि उस अनुदान स्वरूप एक गाँव मिला हुआ था और शायद गायद प्रतीहारों राजा था। प्रतीहारों का एक गुजर सामन्त द्वारा दिये गये अनुदान से पता चलता है कि उस धर्मन अनुदान मिला हुआ था, क्योंकि उसने अपने अधीनस्थ क्षेत्र का स्वभावावाप्त बसपावक

१ ए० इ० ८ न० ३८ पृष्ठ ४७।

२ ७ ११८६।

३ ए० इ०, २६ न० १ वी २८६।

४ माजदवाप्तभूमि श्रीगुणाम्भाधिदव येन आहूता गौडलक्ष्मी का० इ० इ० ४ न० ७४, पृष्ठ ५।

५ ए० इ १६ न० १३ पृष्ठ १४ २७।

६ श्रीविष्णुभागावाये धारापद्रकग्रामे। वही पृष्ठ २१।

भोग कहा है।<sup>१</sup> इससे प्रकट होता है कि गासक-बुटुम्ब का सदस्य होने का नाते<sup>२</sup> उसके प्रतीहार प्रभु ने उसे व्यक्तिगत उपभोग के लिए वगपातक क्षेत्र दे रखा था। उसने अनुमान-पत्र से स्पष्ट है कि ग्रहीता का गुज्जरतराभूमि में पत्तनवाल उस क्षेत्र के प्रशासन का भी अधिकार दे दिया गया था।<sup>३</sup>

राष्ट्रकूटों के अनुमान पत्रों में सामंती अधिकारियों और सामंतों का गांव देन का स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलता लेकिन उनकी राज्य-व्यवस्था का विवरण अध्ययन करने के बाद अलतकर ऐसा मानते हैं कि बहुत-से राज्याधिकारियों को वनन के रूप में 'लगान मुक्त भूमि मिली हुई थी।'<sup>४</sup> यहाँ हम लगान मुक्त के बजाय 'राजस्व मुक्त' कहें तो अच्छा रहेगा क्योंकि लगान तो रैयत द्वारा अपने भूस्वामियों को दिया जाता है। अनवरत यह भी मानते हैं कि कभी-कभी सामंती अधिकारियों का नकल और जिन दोनो रूपों में वनन दिया जाता था।<sup>५</sup> जा भी हो जहाँ तक राजस्व व्यवस्था का सम्बन्ध है राष्ट्रकूट साम्राज्य में दस दस अथवा दस के बटुगुण-मन्यक गाँवों में जम बीस बीस तीस तीस या चालीस चालीस गाँवों के समूहों में विभक्त था।<sup>६</sup> धर्मशास्त्र के अनुसार ऐम एकाना के प्रधान अधिकारियों को भूमि अनुदानों के रूप में वनन दिया जाना चाहिए।<sup>७</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट राजा इस प्रणाली का अनुसरण विगपतया जिना और गाँव के प्रधानों को वनन देने में करते थे। इस प्रकार एक पाली गण अभिनव भू दण ग्रामकूट क्षेत्र अथवा जिना प्रधान के राजस्व मुक्त क्षेत्र का उल्लेख दो बार आया है।<sup>८</sup> स्पष्ट है कि ग्राम प्रधान को भी जिस राष्ट्रकूट साम्राज्य में ग्रामकूट कहा जाता था, इसी रूप में वनन दिया

१ ए० इ० ३ न० ३६ पक्ति ८।

२ वही।

३ वही, पृष्ठ २६६ ६७।

४ वही, पृष्ठ ४५।

५ वही पृष्ठ १८६।

६ ड० ए० ११ ११२ ३, पक्ति ३२ में राष्ट्रकूटों के साम्राज्य में ५०० गाँवों की एक भूमि का उल्लेख है। १२०००, ५००, ३०० और ७० गाँवों के एकाना का भी उल्लेख है (अलतकर, स० प्र०, पृ०, पृष्ठ ७७)।

७ मनु ७ १६।

८ अलतकर स० प्र० पृ० पृष्ठ १७६।



जाता था। यह बात निरिक्त ३ रि दर्शनी महाराष्ट्र म ग्राम प्रधान को राजस्व मुक्त भूमि मिलती थी। मीरतिका क रूटा क एन अधिलग म पात होता है कि कटाल के गनुण्ड (ग्राम प्रधान) न उम इलाक क प्रधाना क राजस्व मुक्त क्षेत्रा क बीच स्थित प्रपनी २०० मत्तर राजस्व मुक्त कृषि भूमि (किमी का) दी।<sup>१</sup> पर यदि राजस्व अधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र म स्थित भूमि क उस हिस्स को छाड़कर जा उम वनन म मिला हा अथवा जिसना राजस्व उम वननस्वरूप सौंप दिया गया हो नेप काइ भी हिस्सा किमी का दना चाहना तो उस अपने स्वामी स पूछना पडता था।

गुजरात के राष्ट्रकूटा क राज्य म राजस्व एकाग दामिक और दादगामिर दादा प्रणालिया क अनुमार सगठित थ। राजपूत इलाक म १२ गाँवा क अनुदान की चचा है<sup>२</sup> और ८४ गाँव क एकाग का भी अस्तित्व मिलता है। यह एकाग ७५० गाँवा के एक समूह का हिस्सा था और विचित्र बात यह है कि य गाँव दस दस गाँवा क एकाग म विभक्त थ।<sup>३</sup> गुजरात क राष्ट्रकूटा क साम्राज्य म दिव गय एक अनुदान म ८४ गाँवा क एकाग का उल्लेख है।<sup>४</sup> राष्ट्रकूटा के साम्राज्य म गुजरात स बाहर भी १० या १२ के बहुगुण सम्यक गाँवा के एकाग थ। प्रथम अमाधवप क सजान अभिलेख पटा म २४ गाँव क समूह का उल्लेख है<sup>५</sup> और ततीय गाँव द के शासन काल म प्रतिष्ठान भुक्ति म बारह बारह गाँवा के कर्ष समूह थ।<sup>६</sup> ततीय अमाधवप क शासन काल म भी १२ गाँवा के एक एकाग का उल्लेख मिलता है।<sup>७</sup> स्पष्ट ही य सत्र क्षेत्रीय "काइयाँ राजस्व वमूल करने के लिए सगठित की गई थी। चाहमाना की शासन प्रवस्था स हम अनुमान लगा सकत हैं कि राष्ट्रकूटा क अवीन य एकाश सामन्ता या रायाधिकारिया को जागीर क तौर पर दिय जात थे और वे इन एकाशो क प्रशासन चलात थ।

१ अलतकर स० प्र० पु० पृष्ठ १८२।

२ ए० इ० ३ न० ६ पकितया १५ १६।

३ वही १ न० ८ पकितया ३५ ३६।

४ इ० ए० १२ १६० पकितया ४५ ६।

५ ए० इ० १८ २५, ७।

६ अलतकर, स० प्र० पु० पृष्ठ १३७।

७ इ० ए०, १२ २६६।

राष्ट्रकूटों के साम्राज्य में सैनिक सेवा के एवज में भूमि अनुदान देने के भी कुछ प्रमाण मिलते हैं। कभी-कभी पल्लव राजा अपने सनानायक व विजय-अभियानों की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए गाँवों के नाम उसके नाम पर रख देने के और उन्हें अनुदान में ग्राहकों का दत्त थे।<sup>१</sup> लेकिन राष्ट्रकूट सेनापतियों की वीरता का गायक उपनामाय गाँव देकर पुरस्कृत किया जाता था।<sup>२</sup> गिलाहारा की सेवा करनेवाले ग्रामभोजन गाँवों का उपभोग करनेवाले ऐसे ही सैनिक अधिकारी जान पड़ते हैं। अतएव क अनुसार राष्ट्रकूट अभिलेख में उल्लिखित ग्रामपति पुरस्कार में प्राप्त गाँवों के स्वामी थे।<sup>३</sup> भूमि महाराष्ट्र में ग्राम प्रधान का ग्रामकूट कहा जाता था और वह ग्रामपति से भिन्न व्यवहित था।<sup>४</sup> इसलिए सम्भव है कि ग्रामपति सैनिक अधिकारी ही रहा हो। अगर हम सोदागर मुलमानों के विवरण पर भरोसा करें तो मानना होगा कि उस समय के राजा अपने सैनिकों का नियमित दत्तन नहीं देते थे। मुलमान कहता है कि 'भारत के राजाओं के सैनिकों की सख्या बहुत बड़ी होती है लेकिन वे उन्हें वेतन नहीं देते। राजा धर्म-मुक्त की स्थिति उत्पन्न होने पर ही उन्हें एकत्र करता है। राजा के आह्वान पर वे अपने अपने स्थानों से आकर एक जगह एकत्र हात ह और राजा से कुछ भी प्राप्त किये बिना अपना निर्वाह करते हैं।<sup>५</sup> मुलमान का यह कथन सामन्तों द्वारा राजा के लिए जुटाई गई सेना पर ही लागू होता है। उसमें यह भी लिखा है कि अरबा की तरह (लेकिन अधिकतर भारतीय राजाओं से भिन्न) राष्ट्रकूट राजा अपने सैनिकों को नियमित वेतन देता था।<sup>६</sup> लेकिन, यह बात स्पष्ट नहीं है कि इन सैनिकों को वेतन नकद दिया जाता था अथवा भूमि अनुदान के रूप में। अतएव का कहना है कि सैनिकों के परिवारों के निर्वाह के लिए उन्हें जाने जाने के लिए जमीन दी जाती

१ इ० ए० प २७६-८०।

२ ए० इ० ३, न० ३७ पृष्ठ ४७।

३ अतएव स० प्र० पु० पृष्ठ १८६।

४ वही।

५ एच० एम० इलियट व डामन (स०), 'मिडिल एंड इन्डिया पेन टोन्ट बाउन्ड्स हिस्टोरियम' १७।

६ वही ३।

थी।<sup>१</sup> जो भी हो मुलेमान के उक्त कथन का सम्बन्ध गायक राष्ट्रकूट राजाभा की नियमित सेना से ही है। लेकिन सामन्ता द्वारा जुटाये गये सैनिका की सरया राजा के नियमित सैनिका से कदाचित अधिक थी।

कतिपय अधिकारिया का वेतन फे बन्ने कुछ खास कर भी सौंप दिय जाते थे। राष्ट्रकूट काल में खास पदायों भाग-सज्जिया आदि पर जिस क रूप में लगाये कर स्थानीय अधिकारिया क प्रवन में शामिल होते थे।<sup>२</sup> अलतकर का विचार है कि भोग कर से, जो उपरि कर के ढग का ही था ऐसे सामान्य या अतिरिक्त करा का बोध हाता था जो मुस्लिम क्षेत्रों के राज कमचारिया के उपभोग के लिए था।<sup>३</sup> भोग कर हमे एसी ही एक अय कर प्रणाली का स्मरण तिलाता है ना आग चल कर च देला और गाहवाला के शासन काल म प्रचलित हुई। यह राजनीतिक व्यवस्था क आशिक साम तीकरण का भा आभास देता है क्याकि यूरोप की साम ती प्रणाली क अधीन प्रशासन चलानेवाल सामन्तका (उरना) को राज्य प्र यदा रूप से नकट या जिस म वेतन न दकर उह कुछ राजस्व ही साप िया करता था।

सामाना को अयने राष्ट्रकूट प्रभषा मे बने बड इलाके मिनत थे। सैनिक मवा के लिए लोया को पुग्स्टहन करन क निण नई नई जागीरें बनाई जाता थी। गायद प्रथम अमोधवप ने कक की निष्ठापूण सवाभा क पुरस्कारम्बरूप उस नमदा और ताप्ती क बीच का क्षेत्र दे दिया<sup>४</sup> जो लगभग ८६२ इस्वी तक गुजरात क राष्ट्रकूटा क थाया मरहा,<sup>५</sup> और गुजर प्रतीगारा क बिसाफ सुरभा दुग का काम करता रहा।<sup>६</sup> उधर इन सरदारों न भी अयन सामन्ता को जागीरें दी। अभिलेखा से जात होता है कि द्वितीय कक के अधिकार म ७२० गाँवों का एक क्षेत्र था,<sup>७</sup> जिमम चद्रगुप्त नामक यकिन महासामन्त प्रचण्ड क दण्डनायक के रूप म काम करता था।<sup>८</sup> सम्भवत यह ग्राम समूह प्रचण्ड को

१ अलतकर स० प्र० पु० पृष्ठ २२१।

२ वही पृष्ठ १८१।

३ वही पृष्ठ २१६ मिलाद पृष्ठ १६४५ स।

४ वही पृष्ठ ८६७।

५ वही पृष्ठ ८६७।

६ इ० ए० १० १५८ कक क प्रभु के लिए स्वामी गायक का प्रयाग दृषा है।

७ अलतकर स० प्र० पु० पृष्ठ ८६ ८७।

८ ए० इ० १ न० ८ नामक २०।

९ वही पत्तिपा ३४५।

द्वितीय कक्षक म जागीरक रूप म मिला था, और इसे शायद प्रचण्ड के पिता घवलण ने अपनी बहादुरी और निष्ठा के पुरस्कार के रूप म प्राप्त किया था।<sup>१</sup> प्रकारान्तर से यह भी प्रकट होता है कि जागीर प्राप्त हो जाने पर सामन्त अपनी अपनी जागीरा का प्रशासन स्वयं किया करते थे। राष्ट्रकूटों की गुजरात गाला द्वारा जागीर दान का एक और उदाहरण तृतीय गोविंद के शासन काल म (८१३ म) मिलता है। महामामत बुद्धवर्ष का जा शायद परवर्ती चालुक्य घराने से सम्बद्ध था १२ गाँवों के एक समूह पर सामन्ती अधिकार प्रदान किया गया।<sup>२</sup> इसी प्रकार शायद दक्षिण महाराष्ट्र म सौदंति के रट्टा म भी, जो पहले राष्ट्रकूटों के सामन्त थे और बाद म परवर्ती चालुक्यों के सामन्त हो गये, अपने उपसामन्त बनाये थे क्योंकि उन्हें दसवारा का प्रभु<sup>३</sup> कहा गया है। अतः अनैक शक्तिशाली सामन्त अपने प्रभु के हस्तक्षेप म सबथा मुक्त रह कर अपने उपसामन्त बनाया करते थे। लेकिन क्षेत्रीय शासक या छोटे छोटे सामन्त या तो राजा से अनुरोध आग्रह करके अनुदान म गाँव दिलाते थे या उसमें अनुमति लेकर स्वयं ग्राम अनुदान देते थे। वनवासी के शासक बक्य के निवदन पर प्रथम अमोघवर्ष ने एक जन मन्दिर को एक गाँव दान दिया।<sup>४</sup> इसी प्रकार तृतीय गोविन्द की अनुमति लेकर एक चालुक्य सामन्त ने एक जन मुनी को गाँव दिया।<sup>५</sup> इसी तरह, ध्रुव के सामन्त शंकरगण ने एक गाँव दान करने के लिए उसकी अनुमति ली।<sup>६</sup> किन्तु बड़े और छोटे सामन्तों में अन्तर चाह जो रहा हो, राष्ट्रकूटों के साम्राज्य म उपसामन्त बनाने की प्रवृत्ति बहुत व्यापक थी।

प्रतीहार शासन प्रणाली एक बात म पाला की शासन प्रणाली से भिन्न थी। वह यह कि प्रतीहारा की प्रणाली उपसामन्तीकरण की सुविधा प्रदान करती थी। विचाराधीन काल म हम पाला के राज्य म उपसामन्तीकरण का कोई स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता। घमपाल के महामामन्ताधिपति नारायण

१ दृष्टावही पृष्ठ ५३।

२ तद्वत्तसीहर्षकवीर्यादिके प्रभुज्यमान। ए० इ०, १, न० ६ पक्षिमां १५-१६।

३ इ० ए १६ २५, मिलाइए अलतकर स० प्र० पु० पृष्ठ २६३।

४ ए० इ० ४, न० ४, पक्षि ३४।

५ इ० ए० १० १८।

६ ए० इ ६ न० २६ पक्षिमां २७ ८।

वमन ने अपने प्रभु से एक मन्दिर को अनुदान में चार गावें मिला दिये,<sup>१</sup> परन्तु वह स्वयं ऐसा अनुदान नहीं दे सकता था। यह सम्भव है कि पाल राजाओं से जिन ब्राह्मणों, बौद्ध विहारों और मन्दिरों को अनुदान में गावें मिले उन्होंने इस प्रकार की सम्पत्ति की व्यवस्था के लिए अपने राजस्व या भूमि के कुछ अंश अपने उपसामन्तों को प्रदान कर लिये हैं। किन्तु इस अनुदान का सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु प्रतीहारों के साम्राज्य में उपसामन्तों के कई उदाहरण मिलते हैं। वत्सराज के शासन-काल में एक दाता ने गुज्जरतराभूमि में अनुदान में प्राप्त अपनी भूमि का छठा हिस्सा एक अनुदानपत्र के द्वारा भट्ट विष्णु को दान कर लिया।<sup>२</sup> इससे प्रकट होता है कि धार्मिक अनुदान पानवालों लोग या सम्पूर्ण अपने अधीनस्थ गावें धर्म यात्रा के लिए वरिष्ठों को दान कर सकती थीं। जहां तक सामन्त राजाओं का सम्बन्ध है कुछ राजाओं की अनुमति से अनुदान दत्त थे और कुछ स्वतंत्र रूप से। चानुचय सामन्त राजा वनवर्मान काठियावाड़ में मण्डलान्तिक्य के मन्दिर को बिना अपने प्रभु के पूछे एक गावें दान किया किन्तु उसी घराण के द्वितीय अर्धवत्सवमन (८८८) ने उसी मन्दिर का एक गावें दान करने के लिए प्रतीहार राजा के अमल में अनुमति ली। दाता ने ग्रहीता का अनुदान गावों का उपभोग स्वयं करने अथवा दूसरे में कराने और उसकी भूमि का स्वयं जोतने बोनने या दूसरों से जुतवाने बुवाने के अधिकार प्रदान किये थे।<sup>३</sup> इसमें उपसामन्तों की गुजाइश और भी बड़ी गई। परिणामतः अब उपसामन्तों के श्रेणीबद्ध सामन्त बन गये थे। उपसामन्तों के करण का दूसरा उदाहरण ९५६ में अजमेर क्षेत्र में एक गुजरे सामन्त राजा के अधीन मिलता है। शासक वंश के एक निकट दाय्याद सामन्त मथनदेव ने किसी की अनुमति लिये बिना अपनी जागीर से एक गावें मठ के गुरु और उसके शिष्यों को दिया।<sup>४</sup> इस अनुदान में ग्रहीता का कुवत कारयतीवा<sup>५</sup>

१ ए० इ० ४, न० ३४ पक्षिया ३० १२।

२ वही ५ न० २४ पक्षिया ६६।

३ वही, ६ न० १ प्लेट ए और बी।

४ वही प्लेट ए' पक्षित १६।

५ वही न० ३६ पक्षिया ३६ १० १५ और २१३।

६ ए० इ० ३ न० १ १६ पक्षित १७ मिलाइए प्लेट २६४, पा० टि० ६ से।

का अधिकार दिया गया था। इसका मतबल यह हुआ कि गांव पर उसका निबाध अधिकार हो गया और वह राजस्व वसूल करने अथवा खेती बरान की जिम्मेदारी किसी को भी द सकता था। इसी कोटि में पूर्वी काठियावाड के एक चाप सामंत द्वारा ६१४ में दिया गया अनुदान आता है। उसने अपने प्रभु से अनुमति लिये बिना एक शिक्षक का एक गांव अनुदान में लिया और साथ ही ग्रहीता का यह अधिकार भी दिया कि यदि वह चाहे तो सम्पत्ति का फिर से किसी को दान कर सकता है।<sup>१</sup> इस सामंत का यह क्षेत्र प्रतीहार राज के चरणों की कपा से प्राप्त हुई थी।<sup>२</sup> अब इससे भिन्न प्रकार के अनुदान का उदाहरण सामंत आता है। प्रतीहार साम्राज्य के एक उच्चाधिकारी माधव न जो उज्जैन का गामक था चाहमान सामंत इद्राच के कहने पर इद्राच द्वारा निर्मित एक मन्दिर का अनुदान दिया।<sup>३</sup> भूमि अनुदान पत्र पर माधव न विदग्ध नामक एक ग्रामशासिकाधिकारी के साथ हस्ताक्षर किया \* जिससे प्रकट होता है कि प्रतीहार साम्राज्य में प्रांता का गामक भी राजकीय अनुमति के बिना अनुदान नहीं द सकता था। इसकी तुलना हम उत्तर बंगाल में महासामन्ताधिपति नारायण वमा के अनुरोध पर धर्मपाल द्वारा दिये गये अनुदान से कर सकते हैं। ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि उपसामन्तीकरण की प्रवृत्ति केवल सामंत राजाओं के अधीनस्थ क्षेत्रों में ही नहीं बल्कि जो क्षेत्र प्रतीहारों के प्रत्यक्ष गामन में थे उनमें भी मौजूद थी। हाँ यह अवश्य है कि नाम न भना में यह प्रवृत्ति ज्यादा जोर पर थी।

राष्ट्रकूट गामन प्रणाली में धार्मिक अनुदान प्राप्त करनेवाले ग्रहीता उपसामन्त बना सकते थे और अनुदत्त सम्पत्ति फिर से दूसरा का दे सकते थे। ग्रहीताओं को गाँव इस अधिकार के साथ दिये जाते थे कि वे चाहें तो उनका उपभोग स्वयं करें अथवा तन्त्र किसी को द दें और भूमि की जुताई बुवाई खुद करें अथवा तन्त्र दूसरा को द दें।<sup>४</sup> प्रतीहारों के बहुत थोड़े से अनुदानपत्रों में यह महत्त्वपूर्ण रीयात दी गई है

१ इ० ए० १२, पृष्ठ १६५, प्लेट ० पंक्तियाँ १-२४।

२ वही।

३ ए० इ० १४ न० १३, पंक्तियाँ २०-२६।

४ वही, पंक्ति २७।

५ इ० ए० ११, १५६, पंक्तियाँ ४६-५०, १२, १८४-५, प्लेट २ पंक्ति १६ प्लेट ३, पंक्ति १, ए० इ० ०२ न० १२ पंक्तियाँ ५४-५५ आदि।

को हम पाल अनुदानपत्रा पर लागू करें तब तो यही निष्कप निकालना पड़ेगा कि दो दजन अधिकारी भूमि अनुदाना से सम्बद्ध थे किन्तु यह बात बुद्धिसगत नहीं प्रतीत होती। वास्तव में राष्ट्रकूट शासन प्रणाली में भी बहुत अधिक अधिकारियाँ की व्यवस्था नहीं थी क्योंकि प्रतीहारों की तरह राष्ट्रकूट राजा भी अपने अधीनस्थ सामन्त राजाओं और सामन्तों के द्वारा ही प्रशासन चलाते थे। राष्ट्रकूट अभिलेखों में पुलिस अधिकारियों का पदनामा के उल्लेख के अभाव से भी यही निष्कप निकलता है। केवल गुजरात के कक्कराज के अत्रोली चरोली ताम्रपत्र में चोरोधरणिकों का उल्लेख हुआ है।<sup>१</sup> यहाँ भी इस दलील में कोई बल नहीं दिखायी देता कि भूमि अनुदाना में उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं थी।<sup>२</sup> गायद महाराष्ट्र और गुजरात में शान्ति सुव्यवस्था की जिम्मेवारी स्थानीय सामन्तों पर थी, जिससे राज-कर्मचारी रखन की जरूरत नहीं रह जाती थी।

पाल और प्रतीहार राजाओं का विरुद्ध से सामन्तवादी सम्बन्धों का आभास मिलता है। परवर्ती गुप्त राजाओं और पाल तथा प्रतीहार राजाओं में परम भट्टारक परमेश्वर और महाराजाधिराज आदि विरुद्ध धारण किये किन्तु ये उनका सत्ता में किसी प्रकार की वास्तविक वृद्धि के चोतक नहीं हैं। इससे यदि कुछ प्रकट होना है तो यही कि वे इन उपाधियों के द्वारा अपने को सर्वोच्च प्रभु जतलाना चाहते थे और भट्टारक 'ईश्वर तथा राजा' के रूप में छोटे छोटे नरेश और सामन्त उनकी अधीनता स्वीकार करते थे। महादोस्साघसा धनिक महाकाताकृतिक महासाधिविग्रहिक<sup>३</sup> आदि पाल राज्याधिकारियों के पदनामा से पूर्व महा शब्द जुड़े होने से प्रकट होता है कि वे भी धीरे धीरे महासामन्त और महाराज जैसे सामन्तों की श्रेणी में आ रहे थे।

प्रतीहारों के साम्राज्य में राज्याधिकारियों के सामन्तीकरण की प्रबल प्रवृत्ति पाई जाती है। द्वितीय महेंद्रपाल का बसाधिकृत कोकण्ट परमेश्वर पाण्डेय जीवी कहलाता था।<sup>४</sup> इसके दो समकालीन तत्रपाल तथा महादण्डनायक माधव

१ वही।

२ वही।

३ ए० इ० १७ न० १७ पत्तियाँ २६ ३३, २६ न० १ की पत्तियाँ ३१ ३४।

४ ए० इ० १४ न० १३ पत्तियाँ १६ २०।

महासामन्त' कहलाते थे । फिर एक नगर का शासक उण्डभट महाप्रतीहार के पद पर था, किन्तु वह महासामन्ताधिपति की उपाधि से विभूषित था ।<sup>१</sup> स्पष्ट ही इन उपाधियों के साथ कुछ अधिकार और कर्तव्य जुड़े रहते हुए, किन्तु हम उनकी कोई जानकारी नहीं है । फिर भी, इतना स्पष्ट है कि महासामन्त का स्थान काफी ऊँचा था और उसकी प्रजा जब धार्मिक प्रयोजना के लिए स्तम्भ खड़े करती थी तो उसके और उसके प्रभु के शासन का उल्लेख करती थी ।<sup>२</sup>

राष्ट्रकूट के साम्राज्य में राज्याधिकारियों को सामन्तवाणी नाम और रतना देने की प्रथा जोर से चल पड़ी थी । ध्रुव का महासाधिविग्रहिक श्री मादल्ल पचवाद्या के प्रयोग के अधिकार से सम्पन्न सामन्त था ।<sup>३</sup> प्रान्तीय शासकों को महासामन्त या महामण्डलाश्वर का दर्जा दिया जाता था, <sup>४</sup> और वे अक्सर राजा या रासा (कन्नड) विस्तारण किया करते थे ।<sup>५</sup> कुछ विषय पति भी सामन्त राजाओं वाली स्थिति का उपभोग करते थे ।<sup>६</sup> भुक्तियाँ या तालुकों के प्रधान अधिकारों भौगिक या भागपति भी कर्मा-कमी सामन्त राजाओं वाली उपाधियाँ धारण करते थे ।<sup>७</sup> और यही बात बड़े बड़े नगरों के शासकों के साथ भी थी । कर्नाटक स्थित सारतुर का शासक कुप्प प्रथम अमाधवप का महासामन्त था ।<sup>८</sup> प्रतीहारों के साम्राज्य में सीयडॉणि नगर का शासक भी सामन्त था । इसी तरह सैनिक अधिकारियों को भी बड़ी चमक दमकवाली पोगाकें दी जाती थी और उन्हें कुछ ऐसी सुविधाएँ और अधिकार भी मिले हुए थे जिनका उपभोग सामन्त सरदार करते थे । चतुर्थ गाविन्द के अधीन विंसीत्तर नामक ब्राह्मण मण्डलायक को ६३० में राजसी वस्त्र और छत्र दिए गये और हाथिया

१ ए० इ० पक्ति २०

२ वही १ पृष्ठ १७३, पक्ति ५ ।

३ वही, ४ न० ४४, पक्तियाँ १ १० ।

४ ए० इ० १०, न० १६, पक्तियाँ ६५ ६६ ।

५ वही १६ न० ४ ए पक्ति ४ ।

६ अलतेकर, स० प्र० पृ०, पृष्ठ १७३ ।

७ वही प० १७७ ।

८ वही प० १७८ ।

९ वही पृष्ठ १८२ ।



तथा रया का उपयोग करने की अनुमति दी गई।<sup>१</sup> इसे हम सामान्य वस्तु-स्थिति का एक उदाहरण मान सकते हैं। युवराज को भा सामन्ती विरुद्ध दिया जाना था।<sup>२</sup>

उच्च राज कर्मचारियों के नाम के साथ सामन्ती उपाधियाँ क्या मिलती हैं ? या तो सामन्ता अथवा महासामन्ता का विभिन्न राजपत्रों पर नियुक्त किया जाता था या राज्याधिकारियों को ही स्वीकृत सामन्ती ओहदा दिया जाना था। पहली सम्भावना कई कारणों से ठीक नहीं प्रतीत होती। पद पुराना था, जब कि सामन्ती उपाधियाँ नई थीं। दूसरे, प्रतीहरा के साम्राज्य में कुछ ऐसे राज-कर्मचारी थे जिन्हें आरम्भ में सामन्ती उपाधियाँ प्राप्त नहीं थीं। तीसरे यदि हम प्रथम सम्भावना का स्वीकार कर लेते हैं तो उसका मतलब यह होगा कि युवराज को भी पहले महासामन्त बनाया जाता था और तब उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाता था। यह असंगत निष्कर्ष होगा क्योंकि प्रायः ज्येष्ठ पुत्र ही जन्म से युवराज माना जाता था। इसलिए दूसरी सम्भावना ज्यादा ठीक जान पड़ती है। सामन्तीकरण की इस प्रक्रिया ने पूरे समाज का प्रभावित किया और राष्ट्रव्यापी के राज्य में सामन्त राजाघरा के अनिश्चित गैरसैनिक और सैनिक दाना बगैरे के राज्याधिकारियों को कोई न-कोई सामन्ती दर्जा प्रदान किया गया। ऐसा लगता है कि जब तक किसी पद को सामन्ती स्तर नहीं दिया जाता था तब तक उसका अधिक महत्त्व नहीं होता था।

राज्याधिकारी उत्तरोत्तर सामन्ती ढाँच में ढल रहे थे इसका सबेदा हम जान सकते हैं कि राजा और सामन्ता तथा राजा और राज्याधिकारियों के सम्बन्धों का वर्णन करने के लिए एक ही तरह की भाषावली चल रही। यद्यपि कोटिया के अथवासत्र में एक स्थान पर राजपूजाधीन भाषा का प्रयोग हुआ है<sup>३</sup> किन्तु इस बात के सम्बन्ध में राज्याधिकारियों और सामन्तों के लिए एक भाषा का प्रयोग बहुत अधिक होना लगा। गुप्त-काल के परिव्राजक अग्निश्रम में पारशिवदायजी की भाषा का प्रयोग हुआ है लेकिन अब पास अग्निश्रम तथा अन्य अग्निश्रमों में भी हम इस तरह के कई शब्दों का प्रयोग

१ पृ. १००, १०१, १०२ (अध्याय १०)।

अध्याय १०, पृ. १००, १०१, १०२।

अध्याय १०, पृ. १०१।

२ पृ. १००, १०१, १०२।

पृ. १०१, १०२।

हानि दलत है। उदाहरण के लिए 'पादपद्मोपजीवी'<sup>१</sup> 'राजपादोपजीवी'<sup>२</sup> 'पादप्रसादोपजीवी'<sup>३</sup> 'परमद्वरपादोपजीवी'<sup>४</sup> आदि।

कभी कभी सामन्तों के लिए 'भय' और 'सम्बन्धी' राज्य का भी प्रयोग होता था, जसा कि हम हरिभद्र मूरि (७००-७७०) की प्राकृत पुस्तक 'समरञ्चनहा' में देखते हैं। इस श्रुति से पता होता है कि पराजित सरदार विजेता प्रभु और उसके सामन्तों के कुटुम्बी बन जाते थे।<sup>१</sup> इस प्रकार एक ही राजा से सम्बन्ध दो सामन्त जिनमें से एक ग़रब था और दूसरा बक्ष्य, एक-दूसरे के साथ 'सम्बन्धिन' मान जाते थे। इस राज्य को डॉ० दगर्थ गंगा 'कुटुम्बी' के अर्थ में लेते हैं।<sup>२</sup> लेकिन न तो वे एक ही परिवार के थे और न उनके परिवारों में कोई वैवाहिक सम्बन्ध ही था। फिर भी 'सम्बन्धिन' शब्द का प्रयोग इसलिए करना पड़ता था कि प्रभु और उसके सामन्तों के सम्बन्धों का वर्णन और किसी राज्य से ठीक-ठीक नहीं होना था। एक ही प्रभु के दो सामन्तों को परस्पर सम्बन्धी ही बनलाया जाना था। उक्त श्रुति से ही हम यह भी पता होता है कि जब सीमांत क्षेत्र के एक सरदार ने अपने प्रभु के विरुद्ध विद्रोह किया तो उस प्रभु के पुत्र ने अपने लोगों का उसके विरुद्ध बहुत सख्त कारवाही करने की मलाह देन हुए कहा 'यह विद्रोह तो बहुत मामूली सरदार है। लेकिन यह हमारे पिता को कर दिया करता था। इसलिए वह हमारा सम्बन्धी है और हम उसके खिलाफ कोई सख्त सैनिक कारवाही नहीं करनी चाहिए।'<sup>३</sup> राजकुमार अपने पिता के नृत्य विद्रोह को अपना बड़ा भाई मानता था।<sup>४</sup> मतलब यह हुआ कि राजकुमार और वह सामन्त दोनों राजा अर्थात् उस एक ही प्रभु के आश्रित थे। शासकत्व का एक राजकुमार (क्षत्रिय) अपने का ग़रब सरदार का छोटा भाई मानना है इससे प्रकट होता है कि सामाजिक

१ ए० इ० २२ न० ४७, पृष्ठ १५।

२ 'भागलपुर प्लेट आफ नारायणपाल इ० ए० ६७ ३०८ प० ३७।

३ का० २० २० ३ न० ४६ पृष्ठ ११।

४ ए० इ० १६ न० १३ पृष्ठ १६-२०।

५ प्रोमिनिम ऑफ द टबेटाफाय सेशन ऑफ द रियल हिस्ट्री कांग्रेस (दिल्ली, १९६१) पृष्ठ ८०-१।

६ वही।

७ वही पृष्ठ ८१।

८ वही।

सम्बन्ध बराबर बश-परम्परा से ही, जिम पर वण घम आश्रित था, निर्धारित नहीं होत थे कभी कभी इन सम्बन्धों के पीछे राजनीतिक तथा सैनिक कारण भी रहा करत थे। घमशास्य के अनुसार राजा व आश्रित इस आदिवासी सरदार को अनाय कहना चाहिए लेकिन उसे राजा का पुत्र माना गया है।<sup>१</sup> किन्तु पुरानेखों में सम्बन्धों और भय शब्दों का प्रयोग सामन्तों सम्बन्धों के मदभ में नहीं हुआ है। सामन्त सरदारों और रायाधिकारियों का वणन साधारणतया राजा के 'पादपदमोपजीवी' के रूप में ही किया गया है।

सामन्तों का मुख्य कर्तव्य अपने प्रभु के प्रति निष्ठा रखना और उसकी सैनिक सहायता करना था। निष्ठा व्यवहार करने के लिए वे अपने अनुदानपत्रों में प्रभु के नाम का उल्लेख करते थे जसा कि प्रतीहारों व सामन्तों द्वारा जारी किये थे। चाहमान<sup>२</sup> चालुक्य<sup>३</sup> गुहिलोत्त<sup>४</sup> और कलचुरि मामन्तों अपने प्रतीहार प्रभुओं को सैनिक सहायता देते थे। दक्कन के समय से पाल राजाओं द्वारा जारी किये गये सभी अनुदानपत्रों में ऐसा वणन मिलना है कि उनके जय-स्वभावों के साथ उनको उत्तरी भारत के बहूनों से अधीनस्थ नरपति अपनी अपनी सेनाओं के साथ उनकी सेवा के लिए उपस्थित थे।<sup>५</sup> इससे अतिरजना हो सकती है लेकिन इससे स्पष्ट नहीं कि पाल प्रभुओं के जय-स्वभावों में स्थानीय सरदारों का सेना के साथ हाजिर होना पड़ता था। यह तथ्य तो निर्विवाद है कि १०७० ईस्वी के आस-पास कवलों का विद्रोह दवाने के लिए पाल राजा ने अपने सामन्तों से बहुत बड़े पमाने पर सैनिक सहायता प्राप्त की थी।

१ अभिलेखा में सम्बन्धी शब्दों से सबसे ज्यादा मिलता जुलता अर्थ दानवानों का द समुच्चय के रूप में हम यथासम्बन्धमानकाम को ले सकते हैं। राष्ट्र-कूटों के अनुदानपत्रों में इस शब्द समुच्चय का प्रयोग राष्ट्रपति विदयपति ग्रामकूट मुक्कन नियुक्तवाधिकारिक महत्तर आदि व विदयपति के रूप में हुआ है। स्पष्ट है कि यहाँ इस शब्द समुच्चय से किसी प्रकार के सामन्तों सम्बन्ध का बोध नहीं होता। यह तो उन अधिकारियों के लिए प्रयुक्त एक विशेषण मात्र है जो भूमि अनुदान से सम्बद्ध थे।

२ हि० क० इ० पी०, ४, पृष्ठ २२ २३ २७।

३ वही पृष्ठ २५।

४ वही।

५ हदीचीनानेक नरपति प्रमति परमस्वरसवासमायातापेजम्बूद्रीप भूपाल ।' ए० इ०, १७, न० १७, पक्तियाँ २२ २३।

राष्ट्रकूट अभिलेखा स हमे सामन्तों के अधिकारी और सुविधाया तथा वनव्याके बारे म कुछ जानकारी मिलती है। सामन्ता द्वारा 'पचमहाशब्द' प्राप्त करना बहुत बड़ सम्मान का विषय माना जाता था। प्रनीहार<sup>१</sup> और राष्ट्रकूट<sup>२</sup> राजाया ने अपन कुछ सामन्तों को यह प्रतिष्ठा पद प्रदान किया था। निम्न-देह, किसी भी सामन्त के लिए यह सज्जे बड़ा सम्मान था, क्योंकि युवराज को भी इससे बड़ा कोई सामन्ती सम्मान प्राप्त नहीं था। कुछ सामन्त राजाया ने तो परमभट्टारक महाराज परमेश्वर जमा गरिमापूण विरुद्ध धारण करने के वाद भी इस उपाधि को नहीं छोड़ा। वस, यह उपाधि असम और उडीसा म तो प्रचलित थी, किन्तु पाल साम्राज्य म नहीं। राष्ट्रकूट के अधीन सामन्तों को सामन्ती सिंहासन, चँवर पालकी और हाथी का उपयोग करने की भी अनुमति दी जाती थी।<sup>३</sup> लेकिन, पालों और प्रनीहारा के राज्या म हम इस प्रथा की काइ जानकारी नहीं मिलती। जमा कि हम ऊपर देख चुके हैं, सामन्तों का एक महत्त्वपूर्ण अधिकार यह था कि व अपने उपसामन्त बना सकें। इन उपसामन्तों म स भी कुछ को 'पचमहाशब्द' का प्रयोग करने का अधिकार दिया जाता था। महाहम काण के गिलाहारा के सामन्त महासामन्त निम्बदेवरस<sup>४</sup> और गुजरात के राष्ट्रकूट के सामन्त महासामन्त उद्धवरस<sup>५</sup> के उदाहरण ले सकते हैं। बड़े बड़ सामन्तों को, सिवाय इसके कि उन्हें अपने अपने प्रभुया का अधीनता की स्वीकृति-स्वरूप कर देन पडत थे, अपन अपन क्षेत्रों के राजस्व पर विवाद अग्नार प्राप्त था। वे चाह जिसे कर मन्वधी अधिकार द सकते थे<sup>६</sup> अनुदान म गाँव भी दे सकते थे। इसके लिए उह वभी अपने प्रभु की अनुमति लेनी पडती थी और कभी नहीं भी लेनी पडती थी। पश्चिमी

१ ए० २, ४, न० ४८ पक्तियाँ ११० ८, १० १, पक्ति ३।

२ वही, २२ न० १२, पक्ति ३६ ३० १०, १२, १८४, प्लेट २ 'बी, पक्ति १, इन अनुदानपत्रा म 'समाधिगतः शेषमहाशब्द', शब्द समुच्चय का प्रयोग हुआ है ललित दलिये अलतकर स० प्र० पु० के पृष्ठ ४२ म उद्धृत द्वितीय बबक का अजोली छरोली अभिलेख।

३ अलतकर, स० प्र० पु०, पृष्ठ २६३।

४ ए० ३०, १६, न० ८ 'ए, पक्तियाँ ४५।

५ वही, ३, न० ६, पक्तियाँ १२ १६।

६ ६० ए०, १३ १३० १, पक्तियाँ ४५ ५८, १२, १३६।

चानुब्या के राज्य में सामन्त राजकीय अनुमति के बिना गांव बंध भी सकते थे।<sup>१</sup>

अरने प्रभु के प्रति सामन्तों के असन्निह और सैनिक दोगा तरह के कर्तव्य होने थे। उनका सबसे बड़ा अमनिक कर्तव्य प्रभु को नियमित रूप से कर देना था, जिस प्रभु कभी कभी व्यक्तिगत जाकर बसूल करता था। राष्ट्रकूट राजा नतीय गामिन्त ने अपने सामन्त राजाओं से कर वसूल करने के लिए अपने साम्राज्य के दक्षिणी हिस्से का दौरा किया था।<sup>२</sup> बाद की एक कृति 'नीतिवाक्यामृत' से ज्ञात होता है कि प्रभु के घर पुत्र जन्म या विवाहात्मक अवसर पर सामन्त दरबार में विशेष उपहार भेंट करते थे।<sup>३</sup> असैनिक लोग कर्तव्य कृत्या में राजकीय आदेशों का पालन तथा उत्सवों के अवसर पर और समय समय पर राजदरबार में सामन्तों की उपस्थिति शामिल थी।<sup>४</sup> राजदरबार में उपस्थित होकर वे अपनी राजभक्ति का परिचय देते थे। स्पष्ट ही प्रभु का सलाहकारों का देना या केन्द्र में उसकी कोई प्रशासनिक सहायता करना सामन्तों के कर्तव्यों का अंग नहीं था।

सामन्तों का सैनिक कर्तव्य अधिक महत्वपूर्ण था और उनकी यह जिम्मेवारी थी कि युद्ध के अवसर पर प्रभु की सैनिक सहायता करें। राष्ट्रकूटों के सामन्तों को एक घास मर्यादा में सैनिक दल पडन व और अपने प्रभु की सहायता में उसके कंधे से तलवा मिला कर लड़ना पड़ता था। गंगा के विरुद्ध राष्ट्रकूटों की लड़ाई में गंगा के चालुक्यों ने जो उनका सामन्त थे उन्हें सैनिक सहायता दी। सामन्त राजानुगमिह चानुगय जातीय इन्द्र का सामन्त था गुजरात प्रतीहार राजा महीपाल के विरुद्ध इन्द्र के युद्ध में उसके साथ हीकर बड़ी बहादुरी से लड़ा था।<sup>५</sup> राष्ट्रकूटों ने गुजरात में अपना एक उपराज्य स्थापित किया था जो पवहारन वस्तु बड़ी जानीर ही था। दूसरी स्थापना का उद्देश्य गुजरात प्रतीहारों से मालवा की रक्षा करना था।<sup>६</sup> बाद में १८ वीं सदी में इस प्रदेश का आधिपत्य प्राप्त करने के लिए मराठों और राजपूत भी एक दूसरे से लड़ाई लत रह।

१ पृ० ६० ३ २०७।

२ पृ० ६० ११ १२७।

३ पृ० ३२ अन्वेषण, म० प्र० पु० के पृष्ठ २६५ में उद्धृत।

४ वही पृष्ठ २६६।

५ वही पृष्ठ ६१ ६६।

६ नाग वमा कृत कर्नाटक नापाभूषण म० एन० राधम भूमिका पृष्ठ १४।

७ पृ० ६० १२ १५८।

जिस प्रकार राष्ट्रकूट राजा अपने सामन्तों से सैनिक सेवा की अपेक्षा रखते थे, उसी प्रकार उनके सामन्त भी अपने उपसामन्तों से सैनिक सेवा की अपेक्षा करते थे। उनका प्रमाण हम शिलाहार महामण्डलेश्वर गण्डरादित्यदेव के कोटहापुर अभिलेख में मिलता है। यद्यपि अभिलेख ११२५ ईस्वी का है किन्तु इस उस समय की वस्तुस्थिति का सातक माना जा सकता है, जब शिलाहार राष्ट्रकूटों के सामन्त थे। इसमें विभिन्न सामन्तों के साथ महामण्डलेश्वर निम्बदेवदेव के सम्बन्धों का वर्णन हुआ है। इन सामन्तों में से कुछ शत्रु भाव और कुछ मित्र भाव रखनेवाले थे। यहाँ मित्र भाव और शत्रु भाव से तात्पर्य, गण्डरादित्यदेव के प्रभु गण्डरादित्य के प्रति मित्र भाव और शत्रु भाव रखने वाले सामन्तों से है। महामण्डलेश्वर के पराक्रम का वर्णन करते हुए उस 'विजय-लक्ष्मी का स्वामी शत्रु सामन्तों की पत्नियों के भाल की शोभा का मञ्जक, वीरों की पत्नियों का प्रिय, धीरों का मर्षा का विघटन करने वाला समीर नागलक्ष्मी के त्रिणमदमत्त हाथी विद्वेषी सामन्तों के लिए प्रलय काल, योग्य सामन्तों के लिए गणपाल, तारासुर के विरोधी सामन्तों के लिए वीरकुमार, टण्डल सामन्त रूपी कमला दो कुचलनवाला प्रचण्ड हाथी सामन्त शिरोमणि गण्डरादित्यदेव की दक्ष दक्षिण मुखा में दण्ड रूप में कहा गया है। महामण्डलेश्वर के पराक्रमों की यह प्रशंसा करने से भी इससे इतना तात्पर्य होता है कि शत्रु सामन्तों का दमन करना और मित्र सामन्तों की रक्षा करना महामण्डलेश्वर का कर्तव्य था।

प्रभु अपने सामन्त राजाओं पर तरह-तरह से नियंत्रण रखता था। राष्ट्रकूट साम्राज्य में सामन्त राजाओं को अपने यहाँ प्रभु का एक दूत रखना पड़ता था। वह मोट तौर पर राज काज का निगरानी करता था और उस पर नियंत्रण रखता था। उसकी तुलना हम ब्रिटिश शासन काल में भारत के दूरी राज्यों में नियुक्त रजिस्ट्रार से कर सकते हैं। सुलेमान कहता है कि सर्वोच्च सत्ताधारी के प्रतिनिधि का जमा स्वागत से वार हाना चाहिए वसा ही उसका स्वागत

१ विजयलक्ष्मीकाम रिपुसाम तमीमतिनीसीम तभगम् वीरवारगणा-  
प्रिय भुजगम वरीसामन्त मेघविघटनममारणम नागलक्ष्मीय गंधवारणम  
विद्विष्टसामन्त विलयकालम, साम तगण्डगापालम, दायादसामन्ततारासुर  
वीरकुमारम सामन्तकेदारम, टण्डसाम तपुण्ड्रीरिक्पटप्रचण्डमदवेदण्डम  
गण्डरादित्यदेवदक्षिणभुजाण्डम सामन्तशिरोमणि । ए० इ०, १६  
न० ८ ए पंक्तियाँ ५८।

किया गया। सम्राट मारी वस्तु स्थिति से अवगत रहने के लिए बहुत-से गुप्तचर रखता था। कहे हैं, प्रथम अमावस्य विरोधा राजाघ्रा के दरबारा में वारा गणा रखना था, जो गायद सम्राट के प्रतिनिधियों के आश्रीत काम करती थी।<sup>१</sup> प्रभु अपने सामन्तों के राज्या से जब-तब कुछ भाग अपने प्रियजनों का देकर उन्हें अपनी सत्ता का बोध कराता रहता था। उदाहरण के लिए, द्वितीय कृष्ण ने महासामन्त प्रबण्ड के राज्य में पड़नेवाला एक गांव किसी को दे दिया।<sup>२</sup> गर वफादार सामन्त राजाघ्रा को अपने आश्रीत प्रतिगाथ का भय दिखाकर नियंत्रण में रखा जाना था। विद्रोह विफल होने पर तरह-तरह में उनका सम्मान किया जाता था। बेंगो के गायद का विपत्ता द्वितीय गोविंद के अस्तवत्ता को सफाई का काम करने पर मजबूर किया गया था।<sup>३</sup> विद्रोह के दण्ड स्वरूप सामन्त राजा कीमती हीरे जवाहरात बोधा नत्यागनाघ्रा पांडों और हाथियों से वञ्चित कर दिया जाते थे।<sup>४</sup> यथा तक कि उनकी पत्निया को भी कारागार में डाल दिया जाता था।<sup>५</sup> कभी-कभी पराजित सामन्त राजाघ्रा को सारा सम्पत्ति और राज्य छीन लिया जाता था और उन्हें राजा अपने आश्रिता के निर्वात के लिए उनका बीच बाट देना था। तृतीय कृष्ण ने दक्षिण आकट जिन में चाना का राज्य जालन के बाग एमा ही किया था।<sup>६</sup>

सामन्तों के साथ व्यवहार करने के लिए राज्य न क्या व्यवस्था कर रही थी, इसकी हम कोई स्पष्ट जानकारी नहीं है। राष्ट्रकूटों के राज्य में तो गायद महामार्ग परिवहन गुप्त राज में भी और गतिमाल में भी सामन्तों के प्रति राजकीय नीति का संचालन करता था। अस्तन्तर के विचार से यह अधिनारी सभी भूमि अनुदानपत्रों के मसविद तयार करता था वपारि पर राज्य विभाग के पाम दाता के पराश्रमा और वगैरह के वार में मजस महा और ताजी जान वारा रहती थी जिस अनुदानपत्र में सम्मिलित किया जाता था।<sup>७</sup> लखिन, अनुदानपत्र में उनका ही महत्वपूर्ण स्थान दाता और प्रदत्ता तथा प्रस्त गांव

१ अस्तन्तर सं० प्र० पु० पृ० २६८ ।

२ प० ६० १ न० ८, पत्रिका ३३ ५ ।

वहा १८ न० २६ पत्रिका ६१ ५ ।

४ अस्तन्तर सं० प्र० पु०, पृष्ठ २६५ ।

५ वगै ।

६ प० ६० ६ न० ८० पत्रिका ३४ ५ ।

७ अस्तन्तर सं० प्र० पु० पृष्ठ १६६ ।

के नाम-पते ठीर ठिकान को दिया जाता था, और इन सबका तो ज्यादा सही-सही राजस्व अधिकारी ही दज कर सकता था। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में बताया गया है कि साधिधिग्रहिक को आय-व्यय का पान होना चाहिए, और अलग अलग इलाका के लोगों की जानकारी और विभिन्न दावा की भाषा का पान होना चाहिए।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि भूमि अनुदान के बाय ब लिए इन गुणा की आवश्यकता थी। भूमि अनुदान साधिधिग्रहिक को इसलिए करना पड़ता था कि तरह-तरह के सामंत राजाओं व साथ सम्बन्ध बनाय रखने में इस नीति का प्रमुख म्यान था। ६७३ ईस्वी में राष्ट्रकूटों का प्रभुत्व समाप्त करनेवाले कल्याणी के चालुक्य वंश के राजा तृतीय सोमेश्वर की कति 'मानसोल्लास (रचना-काल ११३१) में कहा गया है कि साधिधिग्रहिक की सामंती, मण्ड लेखा और विशेषकर मायका को अपने सामन उपस्थित हान को मजबूर करने और वह पदच्युत तथा नय लोगो को इन म्याना पर प्रतिष्ठित करने में कुशल होना चाहिए।<sup>२</sup> चूंकि गति काल में सामंतों के सम्बन्ध में राज्य का मुख्य काय अनुदान में ली गई भूमि पर लगाया कर वसूल करना या जागीरा पर सामंती के क्षेत्राधिकार का निधारण और नियमन करना हाता था इसलिए साधिधिग्रहिक धर्मोत्तर अनुदानपत्र ही नहीं बल्कि मी दरा और ब्राह्मणा से सम्बद्ध अनुदानपत्र भी तयार किया करता था।<sup>३</sup>

सम्राट व नियंत्रण के बावजूद सामंत लोग कभी-कभी केन्द्रीय राजनीति में हस्तक्षेप किया करते थे। द्वितीय गाविन्द के सामंती न उसके खिलाफ विद्रोह करके राजमुकुट उसका चाचा तृतीय अमोघवर्ष का प्रदान किया और राष्ट्रकूट साम्राज्य के गौरव की रक्षा करने के लिए उम राजमुकुट स्वीकार करना पड़ा। अलतेकर व विचार से उपयुक्त ग्रथ देनवाले इस शक्त समुच्चय 'सामन्तरधरट्टरायमहि मालम्बाधमन्थित'<sup>४</sup>—का प्रयोग यहा लाक्षणिक ढंग से किया गया है।<sup>५</sup> लेकिन हम मालूम है कि वगत में पाल वंशीय राजा और उड़ीसा में सामन्तीय राजा कभी कभी चुनाव द्वारा नियुक्त किये जाते

१ २ २४ १६ १७।

२ २ इलोक १०८।

३ यान० मिनाक्षरा, १ ३१६ २०।

४ ए०इ०, ४ न० ४० इलाक २१, ५, न० २०, इलोक १६।

५ अलतेकर स० प्र० पु०, पृष्ठ १५१।



१। इस तथ्य को देखते हुए तृतीय समीपवर्ष व चुनाव की बात समझना नहीं प्रतीत होती। इसमें प्रकट होता है कि सामंत लोग राजाशा का पञ्चतुल्य और नये राजाशा को सिंहासनाब्द भी कर गत थे। हूँ यह गरी है कि ऐसे प्रसंग बहुत कम प्राप्त थे और सामन्तों के इस कार्य का समाधान सामन्तों द्वारा प्राप्त नहीं थी।

स्थानीय सामन्तों, जो धीरे धीरे सामुदायिक परिवारिक परिधि में निमग्नता चला जा रहा था, सामन्तों और अभिजात वर्गों का स्थान काफी महत्वपूर्ण था। १० या १२ गाँवों के एक गाँव की देव रंग बरनगाँव अधिकांश की विभिन्न जिला अधिकांश अपने ही सम्बन्धियों में संकलित थे। प्रथम समीपवर्ष व समय में धारदार विले का एक अधिकांश जो २०० गाँवों का एक गाँव का सामन्त था, १२ गाँवों के एक गाँव का भी व्यवस्था करने पर पुत्रों की भी रखी थी।<sup>१</sup> उन गाँवों के सामन्तों के अपने पुत्रों को निरन्तर ही द्वादन (जोड़ गाँवों के समूह) का प्रशासन सम्भालने के लिए नियुक्त किया।<sup>२</sup> अन्तर्वर्ष व अनुसार रचित राष्ट्रीय राष्ट्रपति और राष्ट्रपति १०। का प्रयोग स्थानीय सरकारी जिना अधिकांशों और वचन अभिनिर्देश के लिए किया जाता था।<sup>३</sup> कुछ अभिलेखों में विषयमहात्म्य और राष्ट्रपतिमात्र का भी उल्लेख मिलता है।<sup>४</sup> ये भी स्थानीय सामन्तों के ही सम्पन्न जान पड़ते हैं किन्तु ये सामन्त चुने नहीं जाते थे। ये पञ्च अभिजात लोगों की वचन परम्परा से प्राप्त होते थे।

अनुदानपत्रों में बवल गाँवों व महल्लों के उत्पन्न से प्रकट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में एक प्रकार का सामाजिक वर्गीकरण था। बंगाल और बिहार के पाल अनुदानपत्रों में ब्राह्मणों से लेकर चाण्डाल तक सभी वर्गों के लोगों को सम्बन्धित अनुदानों की सूचना दी गई है। किन्तु महाराष्ट्र और गुजरात के राष्ट्रपति अनुदानपत्रों में उनका स्थान महल्लों या महल्लराधिकांशों में नहीं रखा है।<sup>५</sup> इनमें से कुछ का रचना और भी बन गया और में रणव बन गया। महल्लों या गुजरात जिले प्रथम समाधरण के एक अनुदानपत्र का

१ ए० इ० ४, १०७।

२ वही ७ २१४।

३ अन्तर्वर्ष सं० प्र० पु०, पृष्ठ २६।

४ वही पृष्ठ १५८।

५ इ० ए०, १० २५१ प० ४१, २६३ पंक्तियाँ ४५ ४६।

प्रवृत्त किया, इमारा एक उदाहरण है। दूसरा उदाहरण द्वितीय कण्ठ क समय में राणक वरु का उरभोग करनेवाला एक महत्तरमर्वाधिकारी है।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि महत्तरा का भवना बढन से ग्रामीण आबादी के दूमरे वर्गों के महत्त्व में कमी आई होगी। महत्तरा के रूप में समाज में एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया था जिससे राष्ट्रकूट राजा अपने उच्चाधिकारी चुना करके थे और इस वर्ग से राष्ट्रकूटों के राज्य में सामन्तव्य के विकास को भी उत्तेजन मिला।

राष्ट्रकूट शासन प्रणाली की एक विशेषता थी राज्य और गिल्ड एवं व्यापार श्रेणियों के बीच सामन्ती सम्बन्धों का विकास। चालुक्य राजा जगदे-कमल ने दम्बल के व्यापारियों की एक श्रेणी को छत्र, चंवर और राजकीय सनद प्रदान की।<sup>२</sup> राष्ट्रकूटों के अधीन भी श्रेणियों की स्थिति ऐसी ही जान पड़ती है, क्योंकि राष्ट्रकूटों के सामन्त गिलाहारा के कोल्हापुर<sup>३</sup> और मिराज<sup>४</sup> में प्राप्त अभिलेखा में ऐसा उल्लेख है कि वीर बलजा (बहादुर व्यापारियों के समूह) के ध्वज पर पहाड़ी का निशान अंकित था। छत्र, चंवर और ध्वज राजाओं द्वारा श्रेणियों को दिये गये अधिकारों के प्रतीक थे और ये हम मध्य कालीन यूरोप में गिल्डों को दी जानेवाली सामन्ती सनदों का स्मरण कराते हैं। जिस प्रकार सामन्तों का अपने प्रभु को सैनिक देने पड़ता था उसी प्रकार इन श्रेणियों के लिए भी अपने प्रभु को सैनिक देना आवश्यक था। कोल्हापुर अभिलेख में व्यापारियों की श्रेणी का वर्णन 'ऐसे साहसी शूरवीरों के रूप में किया गया है जो परम योग्य हैं, जिनके हृदय में अपने बाहु-बल से विजयश्री के वर्णन के लिए उमंग थी, जिनका पराक्रम विद्वत् विश्रुत था।'<sup>५</sup> चालुक्यों के राज्य की एक ऐसी ही श्रेणी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'इसके सदस्यों के हृदय में प्रचण्डता और शूरता की दवी वास करती है।'<sup>६</sup> इस सबसे प्रकट हाता है कि श्रेणियों के पास अपने सैनिक होते थे और वे शायद अपने

१ ए० इ० १८, २५७।

२ अलतकर, स० प्र० पु०, पृष्ठ १६०।

३ इ० ए०, १०, १८८।

४ ए० इ०, १६, न० ४ पक्ति १२।

५ वही वी पक्तियाँ २३। चालुक्य अभिलेख (इ० ए०, ५, ३४४) में भी श्रेणी के ध्वज का उल्लेख है।

६ ए० इ० १६, ३४।

७ इ० ए० १० १८६।

अपने प्रभुओं की सामरिक सहायता भी करती थी।<sup>१</sup>

पाला की कोई स्थायी राजधानी नहीं थी। पाटलिपुर,<sup>२</sup> मुद्गगिरि<sup>३</sup> रामावती<sup>४</sup> (मालदा जिले में आधुनिक गौड के पास), विलामपुर या हरधाम<sup>५</sup> साहसगण्ड,<sup>६</sup> काचनपुर<sup>७</sup> और कपिलवासर<sup>८</sup> का उल्लेख उनके जय स्वभावारी के रूप में हुआ है। इनमें से अंतिम चार की ठीक स्थिति की जानकारी अभी नहीं मिल पाई है। ये सभी स्वभावार गंगा तट पर स्थित थे और यह नदी पाल साम्राज्य का एकता के सूत्र में बांधने का बहुत बड़ा साधन थी। लक्ष्मि राजधानी के बराबर बदलते रहने से निश्चय ही विघटन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। राजधानी परिवर्तन से प्रशासन के विकेंद्रीकरण का बोध होता है जो सामंती राज्य व्यवस्था में पाया जाता है। इस दृष्टि से प्रतीहारों के राज्य में अधिक स्थायित्व या ब्यापक उनकी राजधानी के रूप में केवल दो नगरो—उज्जयिनी और महोदय अर्थात् वनोज का ही उल्लेख मिलता है।<sup>९</sup> उह सामन्त सरदारों पर अपनी सत्ता का रोव जमान के लिए अपनी राजधानी बदलने की जरूरत कभी महसूस नहीं हुई। पाला के विपरीत राष्ट्रकूटों की एक स्थायी राजधानी थी, जिसका नाम

१ ए० इ० ४ न० ३६।

२ प्रा० ब्रह्म का कृता है कि कुल्लुश क अनुमार मणिग्राम लका के राजाओं को किराय क सनिक दिया करता था।

३ भागलपुर प्लेट आफ नारायण पाल इ० ए० ६७ पृष्ठ २०४, पत्तियाँ २७ व।

४ द मनहालि कारर प्लेट एटसटरा ' ज० ए० सो० व० ६८ भाग १, पृष्ठ ६६, पत्ति ३०।

५ इ० ए० १६ १६६ ६८ २१ ६७ १०१ ए० इ० न० २३ पत्ति २८ मिलाइए वही २६ ४ पा० हि० ३।

६ ए० इ० २६ न० १ बी पत्ति २६।

७ वही न० ७ पत्ति २४।

८ वही २३ न० ४७ पत्ति २।

९ प्रतीहारों की एक प्रारम्भिक राजधानी मेरता में भी थी। यह स्थान मडोर में ६० मील उत्तर-पश्चिम में पड़ता था। राज राजधानी गद्द का जो मय है उस मय में उसका प्रयाग मध्य काल में दक्षिण भारत में हुआ (द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया १६ म० जी० याजदानी, पृष्ठ ५१)।

मायघेट या मालखेड था। उनके कई सैनिक तथा साधारण शिविरो का उल्लेख हुआ है,<sup>१</sup> जहाँ से उन्होंने भूमि अनुदान की सनद जारी की। अल-मसूदी के विवरण से ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूटों की राजधानी माधारणतया पर्वत प्रदेशों में रहती थी किंतु अलतेकर इस बात को नहीं मानत।<sup>२</sup> फिर भी मसूदी के कथन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विद्रोही सामंताओं को खानों के लिए ये अपने सैनिक शिविर बदलत रहत थे और इसके लिए ऐसे पहाड़ी स्थान चुनते थे जो सुरक्षा की दृष्टि से अच्छे होते थे।

राजपूतों ने ऐसा शासनतंत्र चलाया जिससे पुराने और बसे बसाये गाँवों पर बड़े-बड़े परिवारों का आधिपत्य स्थापित हुआ। बस तो कुछ राजपूत दशक के पुराने क्षत्रियाँ के वंशज थे और कुछ आदिवासी कुलास निकल के पर कुछ राजपूत बाहर से भी अवश्य आये। गुजरात लोग हूणा व पीछे पीछे मध्य एशिया से आये। ख्याल है कि मध्य एशिया की वसुन जाति के लोग ही भारत आकर अंत में गुजरात कहलाने लगे। चौथी सदी में वसुन लोग गुजरात कहलाने लग गये और इसीसे गुजरात शब्द बना जिमका संस्कृत रूप गुजरा हो गया।<sup>३</sup> इस स्थापना में हम अपनी ओर से इतना जोड़ सकते हैं कि गुजरात लोग भारत में बहुत पहले आ गये थे। अश्वमेधादि में प्राप्त तीमरी गानादी के एक अभिलेख में मक के पुत्र और गंगूर कुल के एक सदस्य 'गफर' का उल्लेख हुआ है।<sup>४</sup> 'मक' और 'गफर' दोनों विद्वानों नाम हैं इसी प्रकार 'गंगूर' भी। इस गंगूर गानादी के आरयिन 'गुशर' और कुची संभवतः 'गौगूर' का पर्याय माना गया है और इसका अर्थ उच्च कुलोत्पन्न या गौगूर अभिजात कुल में उत्पन्न व्यक्ति लगाया गया है।<sup>५</sup> इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गौगूर या गुजरात लोग भारत में विजेता के रूप में आये और स्वभावतः उनकी संख्या बहुत कम थी। बाहर से आकर गुजरात परिवारों में आवादी गाँवों पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। युद्ध में प्राप्त जमीन-जायदाद को आपस में बाँट लेने की गणजातीय प्रथा के अनुसार विजेता सरदारों ने गाँवों को आपस में बाँट लिया। उनमें से कुछ का यह गाँव ८६८ के एकांश में प्राप्त हुए। राष्ट्रकूटों के अधीन हमें गुजरात में १२

१ वही ११ १५६, पंक्ति २७ ए० ड० न० १३, पंक्ति ३२।

२ अतएव, स० प्र० पृ० पृष्ठ २४८।

३ पी० सी० वागची, ६ डिमा एण्ड सेंट्रल एशिया, पृष्ठ १३८ ६।

४ ए० इ० २०, ६१।

५ वही।

घोर ८४ गाँवा के लोकोपनिषत् है जो द्रव्य कारण मान्य पत्नी का कि  
 वही गुजरा की बनिषत् का १ गुजर प्रतीहार १ साम्राज्य म तो हमारे साम्रा  
 ऐसा एकात्मक पद प्रतीहार का एक साम्राज्य साम्राज्य का नाम १ क प्रति  
 लग म आता है १ किन्तु चाहमाना, परमारा घोर साम्राज्य का प्रतिभा म  
 द्वापामिन एकात्मक काई उत्तम मिना १ १ मका कारण मान्य यह है  
 कि य सीता गणजानिया गुजर प्रतीहार गुजरा साम्राज्य का। कारण का किम  
 अनुश्रुति म इन सीता जानिया का घातु गहाट का एक प्रति गुहा म उत्पन्न  
 मतलाया गया है उससे भी यही निष्पत्ति मिलता है।

क्या मध्य एशिया का पूर्ववर्ती गणराज्य मगडा म गीवा की किमी गाम  
 प्रकार की दवाइया म यौट सन की प्रया की प्रस्तुत प्रमग म इन गवान की  
 छानबीन करना उपयोगी रंगा। जब यूषिया न दूसरी शती १० पू० म  
 ताहिया (तुमारिस्तान) का जीता उहान मार शत्रु की घपन सरदारों के  
 बीच चीनीत चीनीत के एकात्मक प्रतिपत्ति म मध्य एशिया गणराज्य का  
 मकत तुमारिस्तान म मिलना है। यहाँ के तुर्की शासक ने चीनिया की सहाय  
 ता से अपने राज्य का चीवास जिला में विभवा कर दिया १ घोगड जाति का,  
 जा मध्य एशिया म रहनी थी घोर जितना निहाल घाटवी शासनी से प्रकाश  
 म आता है आंतरिक मगडन भी कुछ दसो दग का था। प्रारम्भ म इन  
 जाति म नौ गण नामिन थे १ लेकिन अस जस य लोग मध्य पराजित सोगा  
 का आत्ममात करत मय वसे-वस इनके गणा का मन्था बढनी गयी घोर ११वी

- 
- १ पदिचमोत्तर घोर मध्य एशिया के स्थाना का नामा से गुजरा के प्रादेशिक  
 विस्तार की रूप रेखा पर कुछ प्रकाश पड सकता है, घोर मसलमाना तथा  
 अश्वेजा क समय के ग्राम प्रकाशो पर विचार करने से उनका मूल स्वरूप  
 किसी हद तक सामने आ सकता है।
  - २ ए० इ० न० ६ १ ए' पक्ति १०।
  - ३ रा० श० गमा लड ग्राट से टु वसत्स एड प्राविणियत्स इन नोटन
  - इडिया ज० इ० सो० ओ० ६ ८८ ६० ६१ ६४।
  - ४ पी० सी० वागबी, स प्र० पु० का पल २१।
  - ५ वही पल २२ २३।
  - ६ सा० इ० बासवय द मननवाटल पल २१०।

गनाब्दी तक तो २२ हो गयी।<sup>१</sup> बाद में चलकर इनकी संख्या २८ हो गयी क्योंकि सलजुक काल की किनिक जाति को भोगज जानि की चौबीस कुल-गाखाभा में स एन बनाया गया है।<sup>२</sup> प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपने अपने गोना<sup>३</sup> की संख्या में वृद्धि करने की इम मध्य एशियाई प्रथा को मध्य काल में गायद भारत में भी अपना लिया। कारण परम्परा के अनुसार राजपूत जानि में छत्तीस कबीले शामिल थे और सम्भव है कि प्रारम्भ में इनकी संख्या बारह या चौबीस रही हो। ऐसा जान पड़ता है कि जब कभी नय प्रयोग जीत जाते थे तबिना ज नि की प्रत्येक शाखा का कम से कम एक गाव द दिया जाता था जिसके परिणामस्वरूप बारह या चौबीस गावा व एकांतों का उदय हुआ। किंतु बाद में ये एकांग रूप हो गए और कबीले व प्रधान या गामन संग्रार के वशधर को दी जाने वाली जागीर में सम्मिलित गावा की संख्या नियमित बारह या चौबीस अथवा छत्तीस आदि होने लगी।

दशमिन् और द्वागामिन् प्रणाली के बीच क्या अंतर था? पाला के राज्य में राजस्व एकत्र करने के लिए ग्रामपतिया और दगामिका व अधान नामक एक एक और दस दस गाव के एकांग हुआ करते थे।<sup>४</sup> यह पद्धति मनु के समय से ही चली आ रही थी और इसकी चचा कई परवर्ती ग्रंथों में भी हुई है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में ऐसे अधिकारियों को ग्रामेण अथवा ग्रामस्यात्रिपति, दशग्रामाधिप अथवा दशपाल, दशग्रामाधिप अथवा गतग और विषयेश्वर कहा गया है।<sup>५</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि दशमिन् प्रणाली में राजा द्वारा नियुक्त अधिकारी अपने अधीनस्थ क्षेत्र का प्रशासन सीधे क्षेत्र के नियंत्रण में करता था। पाला के अधीन राज कमचारिया की बहुलता का कारण शायद यही था यद्यपि राष्ट्रकूटों के राज्य में भी सामान्य राजाओं और उनके मन्वधिषा के अधीन विषय दशमिन् एकांग थे। दूसरी बात यह है कि दगामिन् प्रणाली में अधीन अधिचारिया का वेतन के रूप में जमान दी जाती थी जो उनके अधीनस्थ शासन क्षेत्र का एक बहुत ही छोटा हिस्सा हुआ करती थी। इसके

१ वही पृष्ठ २१०-२११।

२ वही पृष्ठ २६८-६९० टि० ४६।

३ गान का प्रयोग यहाँ बड़े परिवार के अर्थ में हुआ है।

४ ए० इ० / न० ३८, पन्नि ८७। दगामिन् का उल्लेख सबसे प्रथम कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है।

५ २६१-६२।

विपरीत, परवर्ती चाहमान अभिलषा से पता चलता है कि द्वादशमिक प्रणाली के अतगत गाँवा का शासन सामान्यतया नियमित राजकर्मचारियों के हाथ में नहीं बल्कि सामन्तों के हाथ में हुआ करता था, जो माधारणतः सामक वसूली के हुक्म करते थे। फिर, ऐसा जान पड़ता है कि दशमिक प्रणाली का प्रचलन उत्तर पूर्वी भारत में था और आठवीं सताब्दी में यह दक्खिन में भी प्रचलित हो गयी, क्योंकि वटा बाहर से आये नये लोग कोई बहुत बड़ी सत्या में प्रवेश नहीं कर पाये। इसके विपरीत, द्वादशमिक प्रणाली राजस्थान के कुछ हिस्सा तथा गुजरात में प्रचलित थी और बाद में उत्तर प्रदेश में भी इसका प्रचलन हुआ।<sup>१</sup> वाला तर से इन राजपूत ग्राम इलाक़ों के शासक अपने गाँवको इनका भोक्ता मानने लगे और इन क्षेत्रों को स्वभोग भूमि कहने लगे।

भूमिपर माँदरो और विहारो पुरोहिता और ब्राह्मणों की सत्या में बढ़ि, सामन्तों और राजकर्मचारियों को वेतन के रूप में भूमि अनुदान दिया जाना, राजाओं और राजकर्मचारियों की उपाधियों का सामन्तीकरण, राजधानियों का बहुराज परिवर्तन, पुराने गाँवों का राजपूत परिवारों के बीच विभाजन— इन तमाम बातों का हम उत्तर भारत की मध्य-कालीन राज्य-व्यवस्था के सामन्ती तत्त्व मान सकते हैं। किन्तु कुल मिलाकर ये विशेषताएँ पाल राज्य व्यवस्था की अवस्था प्रतीकार राज्य व्यवस्था में अधिक स्पष्ट और व्यापक रूप में विद्यमान थीं। कइ मामला में राष्ट्रकूट राज्य-व्यवस्था अधिक सामन्तवादी थी। राष्ट्रकूट साम्राज्य में राजस्व तथा प्रशासन सम्बन्धी अधिकारों का उपभोग करने वाले धार्मिक भोक्तारों की सत्या काफी थी, सामन्तों द्वारा उपसामन्त बनाने की प्रथा अधिक फली हुई थी सामन्तों के कर्तव्य और अधिकारों की हद तक सुनिश्चित थे और ये कभी कभी राजा तक को अपत्य कर सकते थे और व्यापार तथा शिल्प श्रेणियों को भी सामन्त माना जाता था। राजकर्मचारियों की सत्या कम थी और उनका स्वरूप सामन्ती होता जा रहा था। स्थानीय शासन मुख्यतः सामन्ती ढंग के कर्मचारियों, सामन्तों और उनके परिवारों के हाथ में था, और ये लोग सामन्त गाँवों के महत्तरों के साथ किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध बनाये रखते थे। किन्तु, राष्ट्रकूटों की राजधानी स्थायी थी और उनके साम्राज्य में बारह या सोलह गाँवों की राजपूती इकाइयों के वजाय सामन्तों पर दशमिक प्रणाली चलनी थी।

१ एच० सी० रायचौधरी, द अर्ली हिन्दू ऑफ द डेकन, भाग १, स० ४, स० ३०।  
याज्ञगनी पृष्ठ ५१।

## तीन राज्यों में सामन्तवादी अर्थव्यवस्था

(लगभग ७५०-१००० ईस्वी)

गुप्त-काल और गुप्तोत्तर-काल में राजा और जमीन के असली जोतदारा के बीच अनुदानभागी भूमिधर वर्ग का उदय हुआ किसानों तथा शिल्पियों के अपने अपने पुराने क्षेत्रों पर प्रतिवर्ष लगे और व्यापार का अपकष हुआ। आगे चल कर पाला प्रतीहारों और राष्ट्रकूटों के राज्यों में सामन्तवादी अर्थव्यवस्था की ये तीनों विशेषताएँ और भी प्रबल हो उठी। पालों ने धार्मिक प्रयोजन से खूब भूमि अनुदान दिए। इन अनुदानों के भोक्ता वैष्णव<sup>१</sup> और गाँव<sup>२</sup> मन्त्रि थे। किन्तु इस दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान बौद्ध विहारों का था।<sup>३</sup> सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नालन्दा विहार के अधीन २०० गाँव थे।<sup>४</sup> नौवीं सदी में देवपाल से उसे पाँच और गाँव मिले।<sup>५</sup> इसी प्रकार उद्धतपुरी, विक्रमशिला और जगदल विहारों के अधीन सैकड़ों गाँव थे।<sup>६</sup> ऐसा कहा गया है कि बगाल में खेती के लायक बहुत कम जमीन ऐसे अनुदानों में दी गयी थी और उनका सामान्य कृषक समुदाय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा,<sup>७</sup> परन्तु

१ ए० इ०, ४, न० ३४, पक्तियाँ ३०-५२।

२ ए० इ०, ४७, पृष्ठ ३०४ से आगे, पक्तियाँ ३६-४६।

३ ए० इ०, २३ न ८७, पक्तियाँ १७-२४।

४ तत्त्वसु(अनु०) एकेकश्रीपदमुद्रिष्टरिलीजन (इतिहास का विवरण) पृ० ६५।

५ ए० इ० १७ न० १७, पक्तियाँ ३३-४०।

६ वही।

७ पी० सी० चक्रवर्ती, हिस्ट्री आफ बगाल, १ (स० द्वार० सी० मजुमदार), पृष्ठ ६४७।



यह सोचना ठीक नहीं है। हृष के समय में शक्तिशाली तथा धार्मिक प्रयोजनों के लिए राजस्व का चौथाई हिस्सा अनुदान में दिया जाता था और यह प्रथा शायद बाद में भी चलती रही। जो भी हो पाला के जो अनुदानपत्र उपलब्ध हैं उनसे भी प्रकट होता है कि बहुत सारे गाँव पुरोहिता मंदिरों और मठों के अधीन थे। उपलब्ध अनुदानपत्रों के आधार पर तो यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतीहारा के राज्य में भी बड़ी बड़ी धार्मिक और शक्तिशाली संस्थाओं के हाथों में बहुत ज्यादा गाँव थे, लेकिन इतना निश्चित है कि उनके राज्य में भी बहुत से गाँव अग्रहार बनाए गए।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त, खास खास पुरोहिता और मंदिरों को भी प्रतीहार राजाओं और सामंतों से काफी गाँव अनुदान में मिले।

कि नु पालो और प्रतीहारा के राज्यों को मिला कर मंदिरों और ब्राह्मणों के अधीन जितने गाँव थे अकेले राष्ट्रकूटों के राज्य में वे उनसे अधिक गाँवों के भोजता थे। छिटपुट तौर पर दान किया गया गाँवों के अतिरिक्त इस वर्ग के एक गाँवक ने ४०० गाँव पुन दान किया<sup>२</sup> और दूसरे राजा ने १४०० गाँव जिनमें से ६०० अग्रहार और ८०० गाँव थे देवकुला को दिया।<sup>३</sup> इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूटों के अधीन पुरोहिता के बजाय धार्मिक संस्थाओं ने प्रमुख भूमिधर वर्ग का रूप धारण किया। पालो और प्रतीहारा के राज्यों में यह बात उतनी अधिक देखने को नहीं मिलती।

पालो<sup>४</sup> प्रतीहारा<sup>५</sup> और राष्ट्रकूटों के राज्यों में बहुत से धर्मोत्तर अनुदान भागी भी थे। बड़ेतरे अधीनस्थ सरदारों तथा राजकर्मचारियों को राज्य की सेवा करने के लिए गाँव देकर पुरस्कृत किया गया था। अभिनेता से ता लगता है कि उनकी सभ्यता उतनी नहीं थी जितनी कि धार्मिक अनुदानभोगियों की थी लेकिन जब धार्मिक संस्थाओं को चलाने और पुरोहिता को पुरस्कृत करने

१ ए० इ०, १६ न० २ पक्तियाँ ११६, न० २४ पक्तियाँ ६६।

२ एम० घनशंकर द राष्ट्रकूटों के डायर टाउन्स पृष्ठ १००।

३ ए० इ० ७ १० ६ पक्तियाँ ४६-६८।

४ मार० एम० गमा लड ग्राम टु बसन्त ऐंड आफिशियल इन नादन इण्डिया ज० इ० सा० हि० प्रो० ६ ७१ ७२।

५ का० ए० इ० ६ न० ७६ इलोक ए० इ०, १६, न० १३, पक्ति २१-२२।

यही ३ न० २६ पक्ति ६।

के लिए जमीन और गाँव दिये जाते थे तब ऐसा स्थिति मे, जब मुद्रा का बप चलन था, राजकीय सेवामा के लिए और क्या दिया जा सकता था ? शायद इन धर्मोत्तर भूमि अनुदाना की सख्या भी धार्मिक भूमि अनुदाना के ही बराबर थी, या कदाचित्त उमस भी अधिक लेकिन धार्मिक अनुदानो के समान एमे अनुदान भन्त वान के लिए नही स्थि जात थे, इसलिये य या ता तालपत्र प्रयवा बपडे पर लिख जात थ, और परिणामत नष्ट हो गय । धर्मोत्तर अनुदान भोगी धार्मिक अनुदान भोगिया स शायद कुछ भिन्न थे । उत्तर भारत म धार्मिक अनुदानभागिया को कर नही देना पडता था, लेकिन धर्मोत्तर भोक्ता नजराने क तौर पर शायद कुछ दते थे । धार्मिक भोक्ताग्रा को अनुदान क्षेप्रा म सत्ता क लिए बन रहन का अधिकार था लेकिन सम्भवत धर्मोत्तर भोक्ता अनुदान सम्पत्ति क अधिकारी सभी तक रह पात थे जब तक कि व राजा के प्रति अपने दायित्वा का निर्वाह करत थ । दोनो तरह के अनुदान भोगिया मे चाह जो अन्तर रहा हो इनना ता असि दग्ध है कि राजा और भूमि के असली जेताना क बीच इन लागाने मन्ववर्ती बग बना रखा था । य लाग एक प्रकार मे गाँवा क असली स्वामी और भोक्ता बन गये और इस प्रकार भूमिधर सरदारा का एक बग रडा हा गया । इम बग की श्री समझि का श्रोत यह सिद्धांत था कि भूमि रागा की है किन्तु रिडम्बना यह रही कि ज्या ज्या इस बग का समझि बढती गयी भूमि पर राजा की मत्ता कम हाती गयी ।

अनुदानपत्रा की शर्तों का नाम उठा कर अनुदानभोगी निजी जेत म नयी जमीन ला सकता था प्रयवा अपनी जेत म पहले से ही मौजूद जमीन की सीमाएँ बना सकता था । अनुदान म दिये गाँवा की सीमाएँ अबसर नही बतायी जाती थी इसस ग्रहीता प्राप्त गात्र की चौहद्दी बढ मजे मे बढा सकता था । किन्तु राष्ट्रकूट अनुदानपत्रा म एस गाँवा की सीमाएँ सामान्यतया निर्धारित कर दी जाती थी,<sup>१</sup> जिसस अनुदानभागी अपना कृपि क्षेत्र नही बढा सकता थ । कतिपय पाल अनुदाना पर भी यही बात लागू हाता है । उत्तर बंगाल म धर्मपाल ने जो चार गात्र दिये उनकी सीमाएँ निश्चित थी । पर जिन अनुदानपत्रा म सीमाएँ

१ उडासा और दक्षिण भारत म कुछ धार्मिक अनुदानभागो भी कर दते थे और एस अनुदानो को कर शासन कहा जाता था ।

२ ए० इ० २३ न० १२, पवितर्या ४२ ४५, न० १३, पवितर्या ५६ ५८, इ० ए० ६, ६८, ए० इ० १८, न० २६, न० पवितर्या ६४ ५ ।

स्पष्ट नहीं की जाती थी। उस साम्राज्यगत प्रणाली धर्म की नींव बनाकर  
 ५। अधिकांश राजा और प्रजापति धर्मशास्त्रों की शीर्षक विधि  
 नहीं की गयी है। अतः राजा का कर्म विधि का है कि धर्म का अर्थ अर्थ  
 और शरीर-धर्म (सामान्य-धर्म) का अर्थ है। इस  
 लिए धर्मशास्त्रों में सामान्य का अर्थ है कि जो जो भी धर्म  
 बना सकता है।

धर्मशास्त्रों की यह अधिकांश या कि वह धर्म की वृद्धि का अर्थ है  
 हीन धर्म की शक्ति का अर्थ है। प्रजापति का अर्थ है कि धर्म का अर्थ  
 हिम्मा से यह प्रथा प्रचलित थी। अतः धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म शरीर-धर्म द्वारा जारी किए गए धर्मशास्त्रों में धर्मशास्त्रों की यह  
 अधिकांश विधि गता थी कि धर्म-धर्मों की धर्म का अर्थ है कि जो  
 (धर्मशास्त्रों) का अर्थ है कि धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 कोई धर्म धर्मशास्त्रों का अर्थ है कि जो धर्मशास्त्रों का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो

इस काल में धर्मशास्त्रों में धर्मशास्त्रों की भी धर्म  
 हीन धर्म और परिणाम अधिकांश धर्मशास्त्रों पर धर्मशास्त्रों का अर्थ है कि जो  
 होता गया। गुप्त काल में धर्मशास्त्रों में धर्मशास्त्रों का अर्थ है कि जो  
 के लिए धर्मशास्त्रों की महति प्राप्त करता और धर्मशास्त्रों का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो  
 धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो धर्म का अर्थ है कि जो

१ ए० इ०, ३ न० ३६, पृष्ठ १२। यहाँ तात्पर्य शायद एतत् सामान्य से है  
 जिनमें धर्म धर्मशास्त्रों के पुत्र नहीं होते थे और न के धर्मशास्त्रों के पुत्रों  
 को ही गोद ले सकते थे।

२ वही इस धर्म का अर्थ स्पष्ट जान नहीं पड़ता।

और चारागाह के उपभोग के अधिकार अनुदानभोगियों को दिये जाते थे और यह प्रकारांतर से ही किया जाता था, क्योंकि प्रदत्त गाँवों का खनिज चमड़े और चारागाह के राजस्व से मुक्त कर दिया जाता था।<sup>१</sup> लेकिन अब यथासाधन अनुदानभोगियों का स्पष्ट शब्दों में हस्तान्तरित किये जाने लगे। यह चलन मध्य भारत तक ही सीमित नहीं था बल्कि पूर्वी भारत उत्तरप्रदेश राजस्थान, गुजरात और दायदमहाराष्ट्र में भी फैल चुका था। पाला<sup>२</sup> और प्रतीहारों<sup>३</sup> के राज्यों में चारागाह फल दानवाले वन, कूप और ताल, भाड़ा भुरमुट्टा जंगल, परती जमीन, खाई खड्ड, यदा कदा वान में डूब जाने वाली जमीन आदि सब के उपयोग के अधिकार अनुदानभोगियों को दिये जाते थे। गुजरात अनुदानपत्रों में गाँव के ग्रामदानी के इन तमाम साधनों के स्पष्ट उल्लेख का मतलब है कि ये समस्त साधन अनुदानभोगियों के लाभ के लिए थे।

किंतु राष्ट्रकूटों के राज्य में वन-पत्तियों (सर्वक्षमालाकुलम)<sup>४</sup> के अनिश्चित गाँवों के ग्रामों और कोई साधन अनुदानभोगियों को स्पष्ट शब्दों में हस्तांतरित नहीं किया गया और वन-पत्तियों के हस्तांतरण का उल्लेख भी बाद के अनुदानपत्रों में ही मिलता है। पाला और प्रतीहारों की तरह राष्ट्रकूट दाना प्रदत्त गाँवों के निवासियों की सहमति नहीं खोजते थे और न उन्हें अनुदानभोगियों को सभी कर देने तथा उनकी सभी आनाओं का पालन करने का आदेश देते थे। मतलब यह कि राष्ट्रकूट राजा सम्पूर्ण गाँवों के निवासियों को अनुदान की औपचारिक सूचना भी नहीं देते थे। इससे प्रकट होता है कि वे ग्रामवासियों के अधिकारों को कोई परवाह नहीं करते थे। प्रतीहार अनुदानपत्रों के स्वरूप से चाहे जो अर्थ ध्वनित होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पाला और प्रतीहार दाता भूमि विषयक अधिकार अनुदानभोगियों को देते थे।

अनुदानभोगियों के हाथ इन अधिकारों के आने का ग्रामवासियों पर क्या प्रभाव पड़ता था? राजा का भूमि विषयक अधिकार हस्तान्तरित करने की सत्ता तो थी, लेकिन अनुदानपत्रों से इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि वह

१ का० इ० इ०, ३, नं० ५६, पत्तियाँ २८-२९ आदि।

२ ए० इ०, २६, नं० १ 'बी', पत्तियाँ ४१-४२।

३ वही, ३, नं० ३६ पत्तियाँ १०-११, ६० ए०, १८, पृष्ठ ३४, पत्तियाँ ५६।

४ ए० इ०, ७, नं० ६ पत्ति ५३।

वास्तव में स्वयं उन अधिकारों का उपयोग करता था। दूसरी ओर गुलबंदी का भी मूलिक सामुदायिक स्वामित्व का जो निम्न विमल है उनका उदाहरण सगना है कि उन अधिकारों का सामुदायिक स्वामित्व का ही विमल था। व पारागाह, कूप-सात जगल प्राप्ति का उपयोग कर सका था और यह सबक लिए उदाहरणों का कार्य कर रही दना पड़ता था। इसी तरह व जमन को भी साक्षात् कर सकत था। किन्तु एक बार जब व भूमि विपदक अधिकार अनुदानमागिया को सौर सिद्ध जान व तब सामवातियों का इन क्षेत्रों का उपयोग व लिए अनुदानमागिया को कुछ व कुछ दना ही पड़ता था। अनुदान भागी गौव की सम्पत्तियों पर मिले इन अधिकारों का क्या लाभ उठाने व और इससे विमानों का बोझ किस प्रकार बढ़ जाता था इसकी कल्पना ममि कर सम्भवतः उन कल्पित पुराने रीति रिवाजों के आधार पर की जा सकता है जो १६वीं सदी में प्रचलित थे। अथवा व कुछ हिस्सों में जहाँ कानों कीमती लकड़ी दूमा करती था राजा तथा बाहरी सागा से लकड़ी कापन पर 'कुल्हाडी-कर' वसूल किया करता था। इसी कारण व भूमिओं व कवन सगान वसूल करत थे बल्कि मर साबाद जमीन की उपज जम—जम मरकर फल प्राप्ति—और मछलीगाहा व भा लाभ उठात थे। १६वीं सदी के इन रिवाजों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विचारधीन काल में भी अनुदानमागी लोग जगल पारागाह, मछलीगाह फल प्राप्ति पर महगून सगान होंगे। इससे मा महत्वपूर्ण बात यह है कि अनुदानमागी परती जमीन का अपना निजा जायदाद बना सकत थे और दामोण साग अपने बढ़त हुए परिवारों व मरण पोषण व लिए चाह कर भी अपनी जेत नहीं बढ़ा सकत थे। इस प्रकार एक ओर तो भूमि का व्यक्तिगत स्वामित्व में रगन व अधिकारों का विकास हो रहा था, और दूसरी ओर भूमि विपदक सामुदायिक अधिकारों का लोप होता जा रहा था।

एक ओर तो राजा सामुदायिक अधिकार अनुदानमागियों को दवर भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व का बनाव दे रहा था और दूसरी ओर यथाकदास्थानीय समुदाय भी अपने समुक्त स्वामित्व व अधिकारों का लोप दता था। उदाहरण के लिए, बवालियर के लोगो ने जमीन व कई टुकड़े स्थानीय

१ बडन पावेल, एड मिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया।

२ वहाँ, २, १०५।

मदिरो को दान किय ।<sup>१</sup> इन अनुदानपत्रा से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि मामुदायिक सम्पत्ति किस प्रकार सामती सम्पत्ति बनायी जा रही थी । जब ये सामुदायिक क्षेत्र दान किय जात थे तो साथ ही इन्हें जानने बाने वाले किसान भी ग्रहीनाम्ना का सौंर दिय जात थे ।<sup>२</sup> नवदुर्गा और विष्णु के मदिरो को जिन्हे सनापति अल्ल ने बनवाया था नगर से अनुदानस्वरूप कई खेत मिले और स्पष्ट ही ये अनुदान नगर ने उसी सनापति क दबाव के कारण दिये थे । फिर हम देखते हैं कि पूरे सीयडोणि नगर ने श्री नारायण-मन्दिरक मदिरो को, जिस नगर क दक्षिणी हिस्स म एक ध्यापारी ने बनवाया था, २०० हस्त चौडा और २२५ हस्त लम्बा एक छोटा सा खेत दान म दिया ।<sup>३</sup> यह अनुदान किसी क दबाव के कारण नहीं लिया गया था लेकिन दोना ही मामलों मे मामुदायिक भूमिसम्पत्ति यक्तिगत भूसम्पत्ति बन गयी । निस्सदेह इस सम्पत्ति की व्यवस्था ता सामती ढग स हाने वाली थी क्योंकि देवी देवता और उनके पुजारी खुद ता जमीन जोतने बाने थे नहीं, व तो इसे दूसरा स ही जुतवात ।

प्रतीहारा के राज्य की तरह राष्ट्रकूटो के राज्य म भी स्थानीय समुदाय अपनी जमीन मदिरो को दान म दिया करता था और इस तरह जमीन निजी सम्पत्ति बन जाती था । प्रथम अमावस्य क शासन काल म ८६५ म बतमान धारवार जिला स्थित एलपुणुस के चालीम महाजनो ने एक पण्डित का ८५ मत्तर भूमि दान की ।<sup>४</sup> सोनदत्ति म प्राप्त एक अभिलेख मे एक जन मन्दिर को ५० कृपका की सहमति स लिया गय अनुदान का उल्लेख मिलता है ।<sup>५</sup> ६५१-५२ म चतुथ कृष्णके समय म धारवार जिले म शायद उन ५० महाजना की सहमति स जिनका उल्लेख अनुदान के सरसका के रूप म हुआ है, १२ मत्तर जमीन मठ और शशणिक प्रयोजन के लिए दान की गयी ।<sup>६</sup> इसस प्रसूट

१ ए० इ० १ न० २०, दूसरा अभिलेख पक्तिया २ ६ ।

२ वही पक्ति ८ ।

३ वही पक्ति ३ और ६ ।

४ वही १ न २१, पक्तियाँ १ ४ ।

५ ए० इ०, ७ न २८ 'ही पक्तिमा ७ १६ ।

६ ज० ब० ब्रा० रा० ए० सो०, १०, २०८, अलतेकर की स० प्र० प० क पृष्ठ ३७२ पर उद्धृत ।

७ इ० ए०, १२, पृष्ठ २५८ पक्तियाँ १० १५ ।

हाना है कि कर्नाटक में स्थानीय समुदायों के मध्य माय लोग जो महाजन कहनाते थे अपनी सामूहिक भूमि के कुछ हिस्से धार्मिक और यथावदा गक्षणिक प्रयाजना के लिए भी दान करते थे। लेकिन अनुत्त शत्रुओं के व्यवस्थापन स्वभाव एसी भूमि पर अपना यकिनगत स्वयं स्थापित करने की चेष्टा करते थे।

यूरोप की सामन्तवादी अथ पत्रस्था की मुख्य विशेषता कपि दासत्व (सफ डम) की प्रथा थी। इस प्रथा के अनन्त किसान भूमि से बंधे रहते थे किन्तु वे उमक मालिक नहीं होते थे। पाला प्रतीहारों और राष्ट्रकूटा के राज्य में एसा प्रथा रही थी परन्तु बन्द कारणों से अनुत्त गाँवों के किसानों की दशा कश्मिया जमी होती जा रही थी। उपसाम तीकरण की प्रवृत्ति के कारण किसानों का दगा विगड़ती गयी। उत्तर बिहार के एक पाल अनुत्तानपत्र में पाता होता है कि एक राज्याधिकारी ने अपने प्रथम तृतीय विग्रहपाल (१०५५-७०) की अनुमति लेकर अपनी जमीन का एक हिस्सा अनुत्तान में दिया।<sup>१</sup> गृहस्थ अनुत्तान भावना हान के कारण गायब बड़े अधिकारी राजा की अनुमति के बिना अनुत्तान नहीं दे सकता था। जो भी हो धार्मिक भावना अपनी जमीन प्राय नहीं जातते थे। नाल गे जस बड़ बड़ विचारों के प्रबन्धक अपनी जमीन में दूमरा से गनी करवाने के और लगाने उनके गुमान वगूत किया करते थे।

प्रतीहारों के राज्य में ग्रहाना अपने उपसामन्त बना सकते थे,<sup>२</sup> और अपनी अपनी भूमि के जोनदारों का दण्डन कर सकते थे। प्रतीहार साम्राज्य में—विशेषकर राजस्थान मालवा तथा गुजरात में—ग्रहीना को अनुत्त क्षेत्र में स्वयं पत्ती करन या दूमरा से कराने उग क्षेत्र का उपभोग स्वयं करन अथवा बिना और का उपभाग के तिन द देने का अधिकार प्राप्त था।<sup>३</sup> इसमें पूर्व बन्धना के मन्त्र राजाओं के अनुत्तानों में यगनें पायी जाती हैं।<sup>४</sup> राष्ट्रकूटा के राज्य में इन अधिकारों के साथ अनुत्तान देने का चलन मूब था। तात्पर्य यह कि राजस्थान गुजरात और महाराष्ट्र में राजा और धार्मिक अनुत्तानभागी जातदारों का जमीन में बन्धन कर सकते थे। धननकर का कहना है कि

१ इ० ए० २५ न० २ पश्चिम ८६ ५१।

२ शरी ५ न० २४ पश्चिम ९६ ५ न० १ प्लग ए और 'बी'।

ए० इ० ५ न० १ प्लग ए पश्चिम १६ प्लेट वा पश्चिम ६३, मिमाइय ३ प्लेट २६४, पा० त्रि० ६।

४ शी० इ० इ०, ५ न० २ पश्चिम ६ न० ११ पश्चिम १३।

बेदखली के अधिकार का वही उल्लेख नहीं हुआ है।<sup>१</sup> किंतु अनुमान की शर्तों से लगता है कि अनुदान क्षेत्र में अध्याया जोतदार हुआ करने थे और वे तभी तक जातदार रह सकत व जत्र तत्र ग्रहीता चाहत।<sup>२</sup> इच्छा हान पर व उह अपनी जमीन मे तिकान कर उसम दूसरो से घेती करवा सकत थ। जो गाव राजा के प्रपक्ष निय प्रण मे थे उनम वह भी बेदखली के अधिकार का उपयोग कर सकता था, किंतु अनुदान भूमि से अधिक निकट सम्बन्ध होने के कारण ग्रहीता इस अधिकार का उपयोग ज्यादा कारगर ढंग से कर सकता था। इस लिए प्रतीहार और राष्ट्रकूट के राज्या मे किमाना के जोत के अधिकार सुरक्षित नहीं हाते थ। इस प्रकार भूमि का स्वामित्व अक्सर जातदार के हाथ मे नहीं हुआ करता था। यदि याम म्मति पूव मध्यकालीन भारत की भूमि-व्यवस्था क सम्बन्ध मे सही जानकारी दती हो तो मानना पडेगा कि कभी कभी तो राजा और घसली वास्तुकारी के बीच भूमिपतिया की चार चार श्रेणियाँ हुआ करती थी।<sup>३</sup>

गासक कबील के भा सभी सत्स्य जमीना के स्थायी और पूण स्वामी नहीं हान थे। गुजर सरगारा और किसानों के बीच भी धीरे धीरे अन्तर पदा हा गया और कालांतर मे गुजर कपक सामंती ढाँचे के अग बन गय। उहे भी वे सारे कर देन को बाध्य किया गया जो सामान्य स्थानाय किसाना का देने पडत थे। १६० मे गुजर प्रतीहार कुल क गक सामंत राजा ने अपने वगमोनक भोग ( निजी उपयोग की भूमि ) मे से एक गाव दान किया जिसम बहुत सारे गुजर कपक रहन थे। यह अनुदान एक गुर् और उसक त्रमागत गिप्या को मिला। ग्रहीता को विभिन्न उचित अनुचित गुणको के अतिरिक्त भाग ( उपज का एक अंश ), खल मिश्रा ( खलिहान कर ) प्रत्यक (अधिका रिया के निमित्त कर ) नक घक, माग्गणक और नास्तिकर्ता और अपुत्रिकाधन तथा नीधि निधान जस छ और कर बसूल करने का अधिकार दिया गया था।

१ अलतकर स० प्र० पु० पृष्ठ २३६ ७।

२ मिलाइए मिराशी का० प० ८०, ४ १७१।

३ क्षत्रगहित्वा य करिच न च कारयत, स्व मिने, च पडमदाप्यराने दण्डम च तत्समम। व्यवहारमयूव १०५ ८६ पर उद्धृत।

४ श्रीगुजरवाहित समस्त क्षेत्र समतश्च। वही, पक्षित १२। यह स्पष्ट नहीं है कि सभी बांतिद गुजर थे या नहीं।

५ वही, पक्षियाँ ११ १२।



स्पष्ट है कि इन गुजर किसानों से पहले भी उनका समगोत्री प्रभु य कर वसूल करता था, और बाद में य सारे कर प्रहीता (गुरु) को मिलने लग। इस अनुष्ठान से प्रकट होता है कि इस सामंत को अपने समगोत्री वधुग्राहक गावण म कोई हिचक नहीं थी और भूमि से बंधे इन किसानों को वह इच्छानुसार भूमि के साथ जिस किसी का सौंप सकता था। फिर हम दखत हैं कि किसानों पर उचित अनुचित सभी तरह के कर प्रहीता लगा सकता था जिससे उनकी दशा कपि दामा की नसी हो जाती थी। इस प्रकार एक और गुजर प्रतीहारों और विजित जातियों के बीच सामंती सम्बन्धों का विकास हुआ तथा दूसरी और स्वयं विजिताग्राहक अपने गोन के भीतर भी सामंतवादी सम्बन्ध कायम हुए क्योंकि कालांतर से विजिता लोग अपने समगोत्री भाइयों को जीत म प्राप्त धन सम्पत्ति के हकदार मानने के बजाय एस कपिदास समभन लग जिनका कर्तव्य अपने गोत्रीय अनुग्राहकों और सन्निह नेताग्राहकों के लिए गून पसीना बहना था।

इस बात के और भी सबेते मिलते हैं कि राजस्थान में भूमि जातन वाले लोगों की भूमि के हस्तांतरण में कोई धावाज नहीं था और जब भूमि का हस्तांतरण किया जाता था तब किसान लोग अपना इच्छा से उसे छोड़ नहीं सकते थे। एक और ती अनुष्ठान-नौगिया को अपनी इच्छानुसार किसानों को बदल कर देने का अधिकार दिया जाता था और दूसरी ओर किसानों पर यह बंधन लगा रहता था कि भूमि का हस्तांतरण होने पर भी वे उस भूमि का अपनी मर्जी से नहीं छोड़ सकते। जहां तक किसानों का सम्बन्ध है य दोना पवस्याए परम्पर प्रसंगत जान पड़ती है। किन्तु हम से यह नहीं कि इनमें अनुष्ठान पान वालों की स्वायत्त सिद्धि होती थी वे अपना मर्जी के मुताबिक किसानों को रग या हटा सकते थे। भूतपूर्व भरतपुर राज्य प्रतीहार साम्राज्य का हिस्सा था—प्रथम भोज के समय में तो निश्चय ही। इस राज्य में प्राप्त कामन गितामिलय में जालगमग १०५६ का है षाठ अनुष्ठानों का बणन है जिनमें से सभा ७८६७ से लेकर १०५६ के बीच स्थानीय देवना गिव के नाम दिया गया। छठ साल के बहा गया है कि उदभट नामक एक व्यक्ति ने अपने अधीनस्थ गांव में तीन हला से जाती जान साथ के जमीन जिम पहन सहल जज्ज और कुछ धन्य ब्राह्मण जात के थे और बाद में एडवाक नामक हलिक जातवा

या दान कर दी।<sup>१</sup> इसमें प्रकट होता है कि कमी कभी उच्चतम दण के लोका का भी सामान्य कपका की तरह काम करना पड़ता था। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि जो सामन्त कवल एक गाँव का स्वामी था, वह भी अपने प्रभु से अनुमति लिये बिना अपनी जमीन दूसरे को दे सकता था और जमीन के साथ साथ जीने वाले हलिका का भी हस्तांतरित कर सकता था। इससे सिद्ध होता है कि प्रनाहारा के अधीन राजस्थान में वृषि दासत्व की प्रथा थी। और चूँकि साधारण सामन्त भी अपनी करने वाला क माथ अपनी जमीन हस्तांतरित कर सकते थे इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह प्रथा काफी व्यापक रही होगी।

वृषका का वृषि दासों की स्थिति में पर्येचा दन वाली दूसरी बात थी— बगार की प्रथा का विस्तार। पान अनुदानपत्रों में विष्टि नाम का प्रयोग नहीं हुआ है। किन्तु पाना क राया में किसान सबपीडा के भागी थे और ब्राह्मणों मंदिरों तथा विहारों का दान किया गात्रों में राजा सबपीडा का अपना यह अधिकार छोड़ दिया करता था।<sup>२</sup> ग्रहीता लोग ग्रामीणों को सबपीडा का अधिकार बनाते थे या नहीं, यह बात स्पष्ट नहीं है।

मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि पूर्वी काठियावाड़ में प्रतीहारा के सामन्तों को ग्रामीणों से बगार लेने का अधिकार प्राप्त था। वहाँ यह प्रथा विष्टि नाम से जाना जाती थी और अनुदान क माथ माथ ग्रहीता का विष्टि का अधिकार भी सौंप दिया जाता था।<sup>३</sup> यह प्रथा कलभी के मन्त्रों के राज्य में भी फल गयी, और बाद में प्रतीहारा और गण्डकटो दोनों क राज्या में जारी रही। 'सालपद्यमान विष्टिक' (अर्थात् विष्टि से उपादित वस्तुओं) का प्रयोग सबप्रथम मन्त्रों क अनुदान पत्र में हुआ है और इस शब्द समुच्चय को राष्ट्रकूट न जयानका त्या अपना दिया।<sup>४</sup> सच तो यह है कि बगार की प्रथा जितने व्यापक रूप में प्रतीहारा और राष्ट्रकूट क शासन-काल में गुजरात और महाराष्ट्र में प्रचलित थी, उतने व्यापक रूप में और किसी भी काल में कभी भी नहीं

१ अडब-काधुना यत्र बाह्यत्वेव हालिक । ए०१० न० ८५ पत्रिका १६ २० ।

२ ए० ६०, ७८ न० ३ वी पत्रिका ४२ ।

३ वही, १७ न० १७ पत्रिका ३५१ ।

४ इ० ए० १२ पत्रिका १८०, पत्रिका ११, पत्रिका १०४ ।

५ ए० ६० १८, न० ७६ पत्रिका ६६ ६७ ७२ न १३ पत्रिका ५६ ।

रही । विपिन बाग यह है कि यह प्रथा जहाँ गंगा में प्रवर्धित भी नहीं  
 यही प्रथा को अनुमान भूमि धरती इच्छानुसार स्वयं गरी करने या दूगरी के  
 करवाने तथा उसका उपभोग स्वयं करे या धोरी को स्वयं देने का अधिकार  
 प्रथा किया जाता था । अगर भी गु जाइंग गरी जाती है जहाँ भोग कम होते  
 हैं । क्योंकि यो धारणा धरती में जोर प्रवर्धित भी सम्भावना नहीं रहता ।  
 इस प्रथा का प्रथमता का कारण यह जो रहा है कि यह प्रथा नहीं कि यह  
 बहुत प्रायः रूप में विद्यमान थी । धारणा यह राजस्व का एक अधिकृत  
 साधन थी, और कीटिल्य का अधिगम्य में प्रयुक्त विधि यह का भ्रष्टगामी  
 द्वारा भी गयी धारणा में प्रवर्धित होता है कि इस प्रथा का द्वारा राजा कि  
 धारणा बनवाने का लिए मजदूर जगता था । यह स्पष्ट नहीं है कि धरणा  
 पानवाले नाम गुरामी सामन्तों को तरह किमाना में जमान धरती निती जान  
 की जमीन में काम करवाते थे धरणा कर्म लगे बापों का लिए ही उनका धर्म  
 का उपभोग करते थे किन्तु गायत्रिक कायों की धरणा में रगा जा सकता है ।  
 अतएव अनुमान में कि गरी गाँवों में अगर भी प्रथा कम काम कर रही थी  
 ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता है । अतः गाँव है कि राष्ट्रकूटों का अधीन  
 अनुमान पानवाला को धारणा से अगर लगे का गुनिचित अधिकार कि या  
 जाता था और पाला के अधीन जब कोई गाँव दान किया जाता था तब राज्य  
 उस गाँव में धरणा सबकीका का अधिकार छोड़ देता था । लकिन राज्य द्वारा  
 छोड़े गये इस अधिकार का उपभोग प्रतीता कर सकता था धरणा नहीं यह  
 स्पष्ट नहीं है ।

ऐसा कोई अभिलेख तो हम उपलब्ध नहीं है जिसका आधार पर हम निश्चय  
 कर सकें कि पाला और प्रतीहारा का अधीन किसानों का तिर पर पढ़ने वाले  
 प्रत्यक्ष मार में कोई वृद्धि हुई या नहीं लकिन गाहकवाला के अधीन उन पर  
 लगाये जाने वाले करों की जो लम्बी सूची मिलती है उससे वहाँ के किसानों के  
 बारे में ऐसा धारणा प्रवर्धित मिलता है । पाल अनुदानपत्रों में कुछ पाठों-स  
 करो का ही स्पष्ट उल्लेख हुआ है और धरणा कर उनमें प्रयुक्त धारणा धरणा के  
 अन्तगत आ जाते हैं ।<sup>१</sup> इस प्रकार इन अनुदानपत्रों में प्रतीहारा के लिए धरणा  
 वासियों पर नये-नये कर लगाने की पूरी गु जाइंग रह जाती है । उनमें धरणा  
 वासियों को बार-बार यह निर्देश दिया गया है कि वे अनुदानभोगियों को सभी

१ ज० द्वि० श्लो० रॉ० सो० १२ भाग १ १६८ ।

२ ए० इ०, २६ न० ७, पक्ति ४२ ।

कर (समस्तप्रत्याय) दें लेकिन इन करों के स्पष्ट उल्लेख के अभाव में ग्रहीता बखूबी नय-नये कर लगा सकते थे। यही बात प्रतीहार अनुदानपत्रों पर भी लागू होनी है क्योंकि उनमें राजस्व के सभी साधन (सबग्रायसमेत) हस्तान्तरित तो कर दिए गए हैं, किंतु उनके नाम नहीं बताए गए हैं। प्रतीहार साम्राज्य के कुछ हिस्सा में (राजस्थान में) ग्रामवासियों से ग्रहीताओं का उचित अनुचित निश्चित अनिश्चित सभी कर देने को कहा गया है।<sup>१</sup> ऐसे अधिकारों से युक्त होने के कारण ग्रहीता ग्रामवासियों से प्रचलित करा के अलावा नये कर भी वसूल कर सकते थे।

पाल और प्रतीहार अनुदानपत्रों के विपरीत राष्ट्रकूट अनुदानपत्रों में राजस्व के साधनों का हस्तांतरण स्पष्ट नहीं किया गया है और फलतः उनमें ग्रहीताओं के लिए प्रचलित करा में वृद्धि करने या नय कर वसूल करने का कोई गुंजाइश नहीं रखी गयी है। लेकिन करा के इस स्पष्ट निर्देश से ग्रामवासियों को जो लाभ हो सकता था उसे उन पर लगाए जाने वाले सात-आठ तरह के कर नगण्य बना देते थे। ये कर थे—उदरग, उपरिक्कर, भूतवात प्रत्याय, घाय हिरण्य दण्डदशापराध, और उत्पद्यमान विष्टि तो थी ही। इन सबका वे ठीक ठीक अर्थ चाहे जो रहे हों, इतना निश्चित है कि प्रत्येक शब्द से एक कर का बोध होता है और कुल मिलाकर ये इस बात का संकेत देते हैं कि राष्ट्रकूटों के अधीन किसानों के सिर का बोझ बहुत बढ़ गया था। गांधी के अनुदान में दे दिए जाने के बाद भी किसानों को, ग्रहीताओं को ये सभी कर देने पड़ते थे, यद्यपि राष्ट्रकूटों के अधीन ग्रहीताओं को उतनी छूट नहीं थी जितनी कि पाला और प्रतीहार के राज्यों में थी।

अनुदानभोगियों के हाथों में जाने से किसानों के भूमि विषयक सामूहिक अधिकार तो छिन ही गए, साथ ही उन्हें उपसामन्तीकरण और दरपट्टे के चलन का शिकार बनना पड़ा। इसके अलावा ग्रहीताओं के वेदखली के अधिकारों के कारण किसानों का नाशकारी का हक कमजोर पड़ गया, उनसे बगार लिया जाने लगा, उन पर अतिरिक्त कर लगाए जाने लगे और उन्हें जबरन भूमि से बाध दिया गया। इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि कुछ क्षेत्रों में ग्रहीताओं को किसानों को बदखल करने का भी अधिकार दिया गया, और मजदूरों के मुताबिक उन्हें अपनी जमीन से बाध रखने का भी हक दिया गया। यद्यपि ये दोनों अधिकार परस्पर असंगत दीखते हैं, किंतु स्पष्ट है कि इनसे ग्रहीताओं का

हित साधन होता था क्योंकि अब व अपनी इच्छा से किसानों का अपनी जमीन मरग या वहाँ से निकाल सकन थे। इस सब व परिणामस्वरूप यूरोपीय कृषि दासों की तरह यहाँ के किसान भी आर्थिक दृष्टि से विन्तुल पराधीन हो गये।

अनुदानपत्रों में ऐसा वाद उपाय नहीं बतलाया गया कि जिसके सत्कार विमान ग्रहीताओं के खिलाफ अपनी गिरफ्तारें दूर करवा सकत। पाला और प्रतीहारों व प्रायः सभी अनुदानपत्रों में ग्रामवासियों का यह आदेश दिया गया है कि वे ग्रहीताओं के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करें तथा उन्हें सभी कर दें और उनकी आज्ञा पर चलें। उनमें राजा व वंशज और अन्य गवर्नरगाली तथा प्रभावशाली राजपुत्रों की भी नवी प्रकोप का भय दिखा कर—अनुदानपत्रों की तमाम शर्तों का पालन करने की सलाह दी गयी है। और इस सलाह को वास्तव में माना भी जाना था क्योंकि हम देखते हैं कि भोज ने दो अपहरण गाँव जा उसके पूर्वजों के समय में ग्रहीताओं का हाथ से निकल गये थे उन्हीं ग्रहीताओं को फिर से दान किया। किंतु, अपने अधीनस्थ ग्रामवासियों के प्रति ग्रहीताओं के कर्तव्य का हम कहीं कोई सकन नहीं मिलता। यदि वे नये कर लगान या प्रचलित करा में वृद्धि करने का निणय कर लत तो वधार किसान राहत के लिए जात किसके पास? इसलिए ग्रहीता द्वारा ऐसा कोई कदम उठाने पर स्वभावतः किसान असहाय हो जात हाग और उनके वंशज और भी कस जात हाग।

धर्माय अथवा धर्मोत्तर प्रयोजना से अनुदान में लिए गए गाँवों के अनिश्चित शेष गाँवों में करा का निर्धारण और वसूली राज्याधिकारी करत थे। हम इस सम्बन्ध में तो कोई जानकारी नहीं है कि ये राज्याधिकारी अपने व्यक्तिगत खाने खर्चों के लिए किसानों से कोई शुल्क लते थे या नहीं किंतु पाला के अधीन राज परिवार के खर्च के लिए ग्रामवासियों से कुछ कुछ अवश्य वसूल किया जाने था। साथ ही नियमित और अनियमित सनियत तथा पुनिसवालों का वेननस्वरूप जो कुछ मिलता था उसके अलावा व ग्रामवासियों से अपने लिए खाना-खर्चा वसूल किया करत थे। यदि ऐसा नहीं था तो फिर अनुदान में लिए गाँवों में ऐसे मरकरी अमला का प्रवेश वजित करने का कोई मानी नहीं था। वगाल बिहार और बुन्दलखण्ड में तो गुप्तकाल में ही गाववालों को घाटा और भ्रष्टाचार के रहने और खाने पीने की व्यवस्था करनी पडती थी और जिस काल की स्थिति का निरूपण हम कर रहे हैं उस काल में चम्पा में भी ग्रामीण लोगों का यन् मार बहन करना पडता था। गुप्त काल से पहल इस प्रथा का सही स्वरूप क्या था इसकी जानकारी हम नहीं है किंतु चम्पा प्रभिलेख (६७५) में प्रकट हाता

है कि देश के दूसरे हिस्सों में भी जो गाँव राजा के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे उन्हें इन सरकारी झमला के भोजन आवास परिवहन आदि पर काफी खर्च करना पड़ता था। चम्बा अधिलक्ष से ज्ञात होता है कि चाट और भट किसानों के घरों में प्रवेश करके उन्हें अपनी कच्ची और पकी फसल, ईला और नमक तथा गाय के दूध का एक हिस्सा देने का मजबूर कर सकते थे व अपने उपयोग के लिए उनकी कुसिया, बेंचें या खाटें उठा ले जा सकते थे, और उनकी लकड़ी इधन, घास भूसा आदि हथिया सकते थे।<sup>१</sup> अतः व ऐसा व्यवहार नहीं करते हागे, ऐसा मानने का कोई कारण दिखायी नहीं देता।

पाला और प्रतीहारा के राज्यों की अधिव्यवस्था में उद्योग-यापार का भी सामंतीकरण देखने को मिलता है। घमपाल के अधीन चार गाँवों से समुक्त हट्टिकाएँ एक व्यक्ति को अनुदान में दे दी गयीं।<sup>२</sup> जाहिर है कि इस प्रहीता ने व्यापारियों का उतनी स्वतंत्रता नहीं दी होगी जितनी कि उन्हें राज्य ने दे रखी होगी। सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण ३५ अश्व विक्रेताओं का है। वे अपने घोड़े आदि बचने के लिए देश के विभिन्न भागों से चलकर पेहोला में एकत्र हुए थे और वहाँ उन्होंने छ मदिरा को प्रत्येक घोड़े खर्चर आदि की बिक्री पर दो द्रम्म देने का वादा किया था।<sup>३</sup> यह स्पष्ट नहीं है कि मदिरा को दिए जाने वाले शुल्क के अतिरिक्त ये राजा को भी कोई आगम शुल्क देते थे या नहीं। गायद राजकीय ऋणों से मजबूर होकर लोग आगम शुल्क वसूल करने का अधिकार मदिरा और देवताओं को हस्तान्तरित कर देते थे। फिर सीयडोण के गामक उदमट ने वस्तुओं पर लगाय गए आगम शुल्क का एक निश्चित हिस्सा विष्णु के मन्दिर का सौंप दिया।<sup>४</sup> इसी प्रकार वही के विष्णु मन्दिर को कुछ व्यापारियों ने कम-कम १६ दुकानों से होने वाली सारी आय हस्तान्तरित कर दी।<sup>५</sup> राजस्थान में लच्छुकेश्वर मन्दिर को दिया गए एक भूमि अनुदान में हट्टिका में विक्रय के लिए प्रति बरस आठ पर तीन विगोपक आगम शुल्क और हर दुकान से दो विशोपक मासिक शुल्क भी शामिल था।<sup>६</sup> राष्ट्रकूटों के साम्राज्य

१ धार० सं० रि०, १६०२ ०३, पृष्ठ २५२ ३, पंक्तियाँ २१-२४।

२ ए० इ०, ४, न० ३४ पंक्तियाँ ५२ ५३।

३ वही, १, न० २, पंक्तियाँ १ १७।

४ वही, न० २१, पंक्तियाँ ४ ७।

५ वही पंक्तियाँ १३ ३४।

६ वही, ३, न० ३६ पंक्तियाँ २२ २३।

हित साधन होता था क्योंकि अब वे अपनी इच्छा से किसानों को अपनी जमीन में रख या वहाँ से निकाल सकते थे। इस समय के परिणामस्वरूप यूरोपीय कृषि दासा की तरह यहाँ के किसान भी आर्थिक दृष्टि में विल्कुल पराधीन हो गए।

अनुदानपत्रों में ऐसा कोई उपाय नहीं बतनाया गया है जिसे सहार किसान ग्रहणकर्ताओं के खिलाफ अपनी गिरावट दूर करवा सकें। पाला और प्रतीहारों के प्रायः सभी अनुदानपत्रों में ग्रामवासियों का यह आशय दिया गया है कि वे ग्रहणकर्ताओं के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें तथा उन्हें सभी कर दे और उनकी आज्ञा पर चलें। उनमें राजा के वंशज और अब गवर्नरगली तथा प्रभावशाली राजपुत्रों को भी दबी प्रकाश का भय दिया कर—अनुदानपत्रों की तमाम शर्तों का पालन करने की सलाह दी गयी है। और इस सलाह को वास्तव में माना भी जाना था क्योंकि हम देखते हैं कि भोज ने जो अपहरण गाव जो उमक पूवजा के समय में ग्रहणकर्ताओं के हाथ से निकल गए थे उन्हीं ग्रहणकर्ताओं का फिर से दान किया। किंतु, ग्राम ग्रहीतस्य ग्रामवासियों के प्रति ग्रहणकर्ताओं के कर्तव्य का हम कहीं कोई सबूत नहीं मिलता। यदि वे नये कर लगाने या प्रचलित करों में वृद्धि करने का निश्चय कर लें तो तबचारे किसान राहत के लिए जात किसके पास? इसलिए ग्रहणकर्ता द्वारा ऐसा कोई कदम उठाने पर स्वभावतः किसान असहाय हो जाते होंगे और उनके बचन और भी कस जाते होंगे।

धर्मिक अथवा धर्मोत्तर प्रयोजना से अनुदान में दिए गए गाँवों के अतिरिक्त गैर गाँवों में करों का निर्धारण और वसूली राज्याधिकारी करते थे। हम इस सम्बन्ध में तो कोई जानकारी नहीं है कि वे राज्याधिकारी अपने व्यक्तिगत खाने खर्चों के लिए किसानों से कोई शुल्क लेते थे या नहीं किंतु पालों के अधीन राज परिवार के खर्च के लिए ग्रामवासियों से कुछ शुल्क अवश्य वसूल लिए जाते थे। साथ ही नियमित और अनियमित सन्निधि तथा पुलिसवानों का वनस्वरूप जो कुछ मिलता था उसके अभाव में ग्रामवासियों से अपने लिए खाना-खर्चों वसूल किया करते थे। यदि ऐसा नहीं था तो फिर अनुदान में दिए गाँवों में ऐसी सरकारी अमला का प्रवेश वृद्धि करने का कोई मानी नहीं था। बंगाल विहार और बुटवलखण्ड में तो गुप्तकाल में ही गाँववालों को चाटा और भूत क रहने और खाने-पीने की व्यवस्था करनी पड़ती थी और जिस काल की स्थिति का निरूपण हम कर रहे हैं उस काल में चम्बा में भी ग्रामीण लोगों का यथा भार बहन करना पड़ता था। गुप्त काल से पहले इस प्रथा का सही स्वरूप क्या था इसकी जानकारी हम नहीं है किंतु चम्बा अभिलेख (८७५) से प्रकट होता

है कि दूध के दूसरे हिस्सा में भी जो गाव गजा व प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे उन्हें इन सरकारी अमलों के भोजन आवास परिवहन आदि पर काफी खर्च करना पड़ता था। चन्दा अमिलख स ज्ञात होता है कि चाट और भट किसानों के घरों में प्रवेश करके उन्हें अपनी बच्ची और पकी फसल, ईख और नमक तथा माय के दूध का एक हिस्सा देने का मजबूर कर सकते थे वे अपने उपयोग के लिए उनकी कुंसियाँ, बेंचें या खाटें उठा ले जा सकते थे और उनकी लकड़ी, इधन, घास भूसा आदि हथिया सकते थे।<sup>१</sup> अर्थत्रय व ऐसा व्यवहार नहीं करते हागे, ऐसा मानने का कोई कारण दिखायी नहीं देता।

पाला और प्रतीहारा के राज्यों की अर्थव्यवस्था में उद्योग-व्यापार का भी सामंतीकरण देखने को मिलता है। घमपाल के अधीन चार गावों से समुक्त हट्टिकाएँ एक व्यक्ति को अनुदान में दे दी गयीं।<sup>२</sup> जाहिर है कि इस प्रतीहारा ने व्यापारियों का उतनी स्वतंत्रता नहीं दी होगी जितनी कि उन्हें राज्य में दे रखी होगी। सत्रस महत्त्वपूर्ण उदाहरण ३५ अश्व विक्रेताओं का है। वे अपने घोड़े आदि बचने के लिए देश के विभिन्न भागों से चलकर पेहोआ में एकत्र हुए थे और वहाँ उन्होंने छ मंदिरों को प्रत्येक घोड़े खर्चर आदि की विक्री पर दो द्रुम्य देने का वादा किया था।<sup>३</sup> यह स्पष्ट नहीं है कि मंदिरों को दिए जाने वाले शुल्क के अतिरिक्त ये राजा को भी कोई आगम शुल्क देते थे या नहीं। शायद राजकीय दबाव से मजबूर होकर लोग आगम शुल्क बसूल करने का अधिकार मंदिरों और देवताओं को हस्तान्तरित कर देते थे। फिर सीयडोणि व मासिक उदमट ने वस्तुओं पर लगाए गए आगम शुल्क का एक निश्चित हिस्सा विष्णु के मंदिर को सौंप दिया।<sup>४</sup> इसी प्रकार, वही के विष्णु मंदिर को कुछ व्यापारियों ने कम-कम १६ दुकानों से होने वाला सारी आय हस्तान्तरित कर दी।<sup>५</sup> राजस्थान में लच्छुकेश्वर मंदिर को दिये गए एक भूमि अनुदान में हट्टिका में विक्रय के लिए प्रति बारे अन्न पर तीन विशेषक आगम शुल्क और हर दुकान से दो विशेषक मासिक शुल्क भी शामिल था।<sup>६</sup> राष्ट्रकूटों के साम्राज्य

१ भार० सं० रि०, १६०२-०३, पृष्ठ २५२-३, पंक्तियाँ २१-२४।

२ ए० इ० ४, न० ३४, पंक्तियाँ ५२-५३।

३ वही १ न० २० पंक्तियाँ १-१७।

४ वही न० २१, पंक्तियाँ ४७।

५ वही, पंक्तियाँ १३-३४।

६ वही ३ न० ३६, पंक्तियाँ २२-२३।



में शिल्पिया से होने वाली राजकीय आय के अनुदान में दे दिए जान का उत्पन्न कही नहीं मिलता, लेकिन स्थानीय श्रणियाँ धार्मिक प्रयाजना के लिए अपनी आय अनुदान में अवश्य दती थी। उग्रहरण के लिए ७६३ में लामस्वर के युनकरा की श्रणि के प्रधान ने एक घमदाय के लिए युनकर द्वारा तयार किये माल का एक निश्चित अनुपात देना स्वीकार किया।<sup>१</sup> ८८० में ३६० नगरों की एक श्रणि के चार प्रधानों ने एक ऐसा ही अनुदान दिया।<sup>२</sup> सम्भव है, ऐसे अनुदान राजा भी देते हैं—पाल और प्रतीहार राजा तो देते ही थे। हमें यह जानकारी नहीं है कि राजा चुगी और आगम गुल्ब से होने वाली आय अपनी सेवा करने वाले सामंतों और राज्याधिकारियों को भी यथा-यथा हस्तान्तरित कर देता था या नहीं। लेकिन पारलौकिक लाभ के लिए मंदिरों को तो आय के ये साधन अवश्य ही अनुदान में दिये जाते थे।

उद्योग और व्यापार से होने वाली आय को धार्मिक अनुदान के रूप में हस्तान्तरित करने का चलन इसी काल में आरम्भ हुआ। भौरीतर काल और गुप्तों के समय में श्रेणियों के पास नकद राशियाँ जमा कर दी जाती थी और धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति उनसे प्राप्त ब्याज से होती थी। इस प्रकार अनुदान में दी गयी राशियों पर धार्मिक संस्थाओं का कोई नियंत्रण नहीं होता था। प्रतीहारों के अधीन पुराना रिवाज चलता रहा। हाँ यह जरूर था कि ये राशियाँ श्रेणियों के पास नहीं बल्कि श्रणियों के प्रधानों के पास जमा होती थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वस्तुओं की बिन्नी या दुकानों पर लगाये जाने वाले महमूला को भी अब मंदिरों को हस्तान्तरित करने का चलन शुरू हो गया। इस प्रकार शिल्पिया और व्यापारियों की आर्थिक प्रवृत्तियों पर एक हद तक मंदिरों का नियंत्रण हो गया जिससे वे अपने निजी स्वाध साध सकते थे।

स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय तौर पर तयार और पदा की गयी चीजों से होती रहे यही सामन्तवादी व्यवस्था का आधार था। इसमें बाजार के लिए बड़ी मात्रा में किसी खास वस्तु के उत्पादन की गुंजाइश नहीं रह जाती थी। पालों और प्रतीहारों के राज्यों में गावों की बिल्कुल यही स्थिति थी। जातकों में शिल्पियों के गाँवों का उल्लेख मिलता है लेकिन पालों के अधीन गाँवों की आवादी के स्वरूप की जो थोड़ी-बहुत जानकारी हमें उपलब्ध

१ ए० इ० ६ न० १६ पत्रिका १ १२।

२ ज० ब० व० रा० ए० सी०, १०, १६२, वही उद्धृत।

हे उमम सगना है कि इन गाँवा म सिफ विज्ञान ही नहीं, बल्कि ब्राह्मणा मे सेवर मर्दों, धर्मघोर चाण्डाला तक, सभी पंग के लोग रहते थे।<sup>१</sup> एक प्रतीहार अनुशासन से प्रवृत्त हुआ है कि घलवर के पास के गाँवा म गिल्पी, व्यापारी घोर शूद्रक सभी रहते थे।<sup>२</sup> पामा घोर प्रतीहारों क राज्या म करा की जो मूर्खियाँ मिलती हैं उनम प्रवृत्त होता है कि ये सभी कर रिमाना त ही नहा लिय जाने होंगे।<sup>३</sup> कर शिरण्य आदि नोकवल गाँव के गिरी घोर व्यापारी ही देते होंगे। इस प्रकार गाँव क धर्म निभर धार्मिक जीवन का कायम रखा के लिए यह धाव यव था कि धुनियाणी जबरता की तमाम चीजा को पदा घोर तैयार करा जाने लाग गाँव म रहें। पिछडे घोर जनजातीय नाग भी गाँव क लिए उपयोगा धार्मिक प्रवृत्तिया म लग रहते थे। पाल साम्राज्य के गाँवा में चाण्डाल साग नायक चमडा बमान घोर गाँव वाला के लिए जूत आदि बनाने का काम करते होंगे घोर मेद तथा धर्म घनिदर मजदूरों का काम करते होंगे।

विहारो घोर मन्त्रि से मम्बद धार्मिक प्रचल कुछ बडे होत थे। देवपाल के नाला अनुशासनपत्र के अनुमार पाँच गाँव भिक्षुघा की पूजन सामग्री, पहनने घोर बिछाने क कपडे भोजन तथा औषधियाँ जुटाने घोर विहार की मरम्मत के लिए दान करिये गये।<sup>४</sup> यह मानना ठीक नहीं होगा कि इन तमाम चीजा का प्रबंध गाँव वाला सनकद खमूल की गयी खम से ही हाना था। मम्बवन कुछ गाँव धर्म देते थे घोर कुछ कपडा घोर कुछ धर्म गाँव मकाना की मरम्मत के लिए मजदूर देते थे, या फिर प्रत्येक गाँव इन सभी चीजा क एक एक हिस्से का इन्तजाम करता होगा। तफमीलवार व्यवस्था चाहे जसी रही हो, इतना तो निश्चित है कि गाँव विहारा का तरह-तरह की सेवाएँ प्रदान करके उनकी धर्म निभर धर्म प्रवृत्तियों को कायम रखने म सहायक होत थे।

प्रतीहारा क अधीन राजस्थान म कुछ मन्त्रि न धार्मिक धर्म निभरता प्राप्त करने के निमित्त अपनी जमीन के बिलारे टुकडो की चकवादी की<sup>५</sup> घोर ऐसी व्यवस्था की जिससे दस्तकारा से आवश्यक सामान नियमित रूप से मिलत

१ जालपो म उल्लिखित गिल्पिया के गाँव घोर अर्थशास्त्र म उल्लिखित सनिका क गाँव।

२ ए० इ० ३, न० ३६, पंक्तियाँ ५ ६, २२ २३।

३ वही, २३, न० ८७ पंक्तियाँ ३६ ४०।

४ वही १४ पृष्ठ १७७।

रहें। उदाहरण के लिए हम जानते हैं कि तली लोग एक मन्दिर को स्वेच्छा से प्रति-  
 बन्धु एक निश्चित मात्रा में तैल दिया करते थे।<sup>१</sup> जो गिन्पी स्वेच्छा से ऐसा  
 नहीं करते थे उन्हें लाचारीवश कराना पड़ता था, क्योंकि उन्हें मन्दिर की  
 भित्ति पतल में पड़ने वाले क्षेत्र को छाड़ कर वही और बसने की छूट नहीं थी।  
 प्रतीहार शासक मयनदेव ने लच्छुनेश्वर मन्दिर के लिए प्रति घण्टा घी और  
 तेल पर ली पल्लिकाया का तुल्य लगाया, और प्रत्येक चौल्लिक (तमोती ?)  
 को उसने पचास पत्ते देने की कक्षा।<sup>२</sup> स्पष्ट है कि इस समय पर राज करन के  
 लिए न तो दाता के पास और न मन्दिर के पास काफी नकद था और इस-  
 लिए शिल्पियों और कारीगरों को अपनी बनायी चीजों का एक हिस्सा देना  
 पड़ता था।

कुछ नगर भी आर्थिक दृष्टि से धातुमिभर थे क्योंकि उनके पास  
 खेती की जमीन थी जिससे उन्हें अनादि मिल जाते थे। ऐसे नगरों में रहने  
 वाले शिल्पियों का अपना अपना धातु अपना मर्जी के मुताबिक करने की पूरी  
 छूट नहीं होगी थी। प्रतीहारों के राज्य में तलिया तमालियों कल्लपाला  
 (धराब बनाने वाले) और मालिका के प्रधान अनुष्ठान देने थे और कभी कभी  
 अपनी अपनी शिल्पियों की ओर दी हुई याती भी रखते थे।<sup>३</sup> पहले के अभिलेख  
 बतलाते हैं कि इस प्रकार की याती पूरी शिल्पी श्रमिकों के पास रखी जाती थी,  
 लेकिन प्रतीहार अभिलेखा से ज्ञात होता है कि ये यातिया श्रमिक प्रधानों को  
 सौंप दी जाती थी। राजकीय अधिकारियों की सहाय से श्रेणि प्रधान अपनी  
 श्रेणि के सदस्या पर कर लगा सकता था और उसकी धार से सौदा और लेन देन  
 कर सकता था। अभिप्राय यह है कि नगरों में शिल्पी लोग अपनी इच्छानुसार  
 अपना ध धा नहीं चला सकते थे बल्कि जिस प्रकार किसान अपने अपने प्रभुओं  
 की इच्छा पर चलते थे उसी प्रकार दस्तकारों को भी अपने अपने प्रधानों की  
 मर्जी के मुताबिक चरना पड़ता था। शिल्पी अपने मन से कहीं आ-जा या बस  
 नहीं सकते और अपने मन से अपने ध धे में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते थे।  
 यह चीज क्षेत्रवद्ध नगरीय अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता थी।

देग में और विशेषकर प्रतीहार साम्राज्य में छोटी छोटी आर्थिक इकाइयों  
 के अस्तित्व का एक घन प्रमाण भी है। *सातवाहन* *महाराज* *हयग* *म* *महाराज*

१ ए० इ०, १ न० २१ पत्रिका २७ ८, ३० ३१।

२ वही ३ न० ३६ पत्रिका २७ २३।

३ ए० इ० न० २०, दूसरा अभिलेख पत्रिका ११ २०।

अलग ढंग के माप-तौल के अवन स है । इनमे से कुछ का उल्लेख सीयडोफि अभिलेख मे हुआ है । ऐसा जान पडता है कि मणि तालि और तुला के स्थानीय मानक थे ।<sup>१</sup> ग्वालियर क्षेत्र म जमीन नापने के लिए उसका अपना मानक प्रचलित था<sup>२</sup> और इन स्थानीय मानको का निर्धारण सम्राट के हाथ (परमेश्वरीय)<sup>३</sup> की लम्बाई के आधार पर होता था । गुप्तो और सेनो के अधीन हम पूर्वी भारत क भूमि माप के स्थानीय मानका की कुछ जानकारी है । ऐसे मानक पालो के अधीन भी प्रचलित थे । देश के छोटी छोटी राज नीतिश इकाइया म विभक्त हो जाने से माप तौल के समान मानको का विकास नहीं हो पाया, और फलतः यहा का उद्योग-व्यापार राष्ट्र-व्यापी रूप नहीं ले सका ।

इस काल म उद्योग व्यापार की स्थिति अच्छी नहीं थी, इसका सक्त सिक्का की कमी से मिलता है । जिस एक मात्र पाल अनुदानपत्र म द्रम्मा का उल्लेख मिलता है, वह घम्पाल का अभिलेख है । इस अभिलेख के अनुसार ८०१ म ३००० द्रम्म खच करके गया म एक तालाब खुदवाया गया, लेकिन हम किसी भी मुद्रा के बारे मे निश्चयपूर्वक नहीं कह सकत कि यह ग्रमुक पाल राजा की मुद्रा है । अभी हाल म भागलपुर जिला तगत कहलगाव नामक स्थान के पाम पालरा के एक ठिकाने की खुदाई हुई है । उसम भी कुछ कौडिया तो मिली हैं लेकिन मुद्रा कोई नहीं । पालो का शासन लगातार लगभग चार सौ वर्षों तक चलता रहा फिर भी उनके साम्राज्य क्षेत्र म अब तक कोई मुद्रा नहीं मिली है इसकी कोई ठीक सफाई ले सकना विद्वाना को बहुत मुश्किल लगता है ।<sup>४</sup> लेकिन यदि हम पूर्व मध्यकालीन भारत म प्रचलित अर्थव्यवस्था को ध्यान मे रख कर साच ता इसका कारण समझना कठिन नहीं है ।

प्रतीहार अभिलेखा म द्रम्म, पाद, विशेषक, रूपक पण काक्रीणी, कपदक आदि कई तरह की मुद्राओं का उल्लेख हुआ है ।<sup>५</sup> इनमे से अंतिम का

१ बी० एन० पुरी हिस्ट्री ऑफ द गुर्जर प्रतीहारान, पृष्ठ १३६ ७ ।

२ ए० इ० १ न० २०, पकितया ८ ६ ।

३ वही पकित ४ ।

४ हिस्ट्री ऑफ बंगाल, १, पृष्ठ ६६८ । ऐसा समझा जाता है कि इस काल मे असम म स्वयं मुद्राशा का प्रचलन काफी था लेकिन केवल पुरालेखीय प्रमाणों के आधार पर ज्यादा कुछ कह सकना कठिन है ।

५ पुरी, स० प्र० ग्र०, पृष्ठ १३४ ६ ।

मतलब कौड़ी है जिसका उपयोग बड़ बड़ मौजा और लन लन म अधिन नहीं हो सकता था। मुलेमान के अनुसार रहमी दंग म विनिमय का साधन कौड़ी थी, और यापार म वसी का उपयोग होना था।<sup>१</sup> द्रम्म का चलन स वाणिज्य व्यापार का प्रथम मील सकता था। द्रम्म का सबसे पहला उल्लेख हम मारवाड म प्राप्त ६०८ के एक अभिलेख म मिलता है,<sup>२</sup> किंतु प्रतीहारो के अधीन हम ९वीं शताब्दी स पहल द्रम्म के बारे म काइ जानकारी प्राप्त नहीं है। चाँगी व द्रम्म जिन पर आदिवराह का चित्र उत्कीर्ण है मिहिरभोज (८३६-८८५) क बताया जात है और जो घटिया धातुका के हैं वे उसक दो उत्तराधिकारियों महेंद्रपाल (८८५-९१०) और द्वितीय भोज (९१०-९४) के मान जात हैं किंतु यह एक अनुमान ही है। उनके अलावा हान म मिहिरभोज के पीछे विनायक पाल (९१४-४३) के भी कुछ द्रम्म मिले हैं।<sup>३</sup> बाद म ठक्कुर फेर वृत द्रव्यपरीक्षा म प्रथम भाग की बराहमुत्ता के मुताबले दनका उल्लेख विनायकमुद्रा क रूप म हुआ है<sup>४</sup> जिससे प्रकट होता है कि ये दो तरह के सिक्के काफी प्रचलित थे। किंतु अब तक प्राप्त द्रम्म मुद्राओं की संख्या बहुत कम है। इस प्रकार साहित्यिक और पुरालेखीय सूत्रो स पता चलता है कि ९वीं शताब्दी से पून द्रम्म का बहुत ज्यादा प्रचलन नहीं था। इसका चलन १०वीं शताब्दी से ही बढ़ा, और वह भी सीयडोणि जैसे कतिपय नगरा तक ही सीमित रहा। ९वीं शताब्दी के बाद के भी जो द्रम्म प्राप्त हुए हैं, उनकी संख्या अधिक नहीं है। २०० आदिवराह और विग्रहपाल मुद्राएँ लखनऊ म्यूजियम म सुरक्षित हैं चांदी और तांब की लगभग २० आदि बराह मुद्राएँ इण्डियन म्यूजियम म हैं, और कुछ बडोदा म्यूजियम म भी।<sup>५</sup> मौर्योत्तर काल और गुप्त काल की मुद्राका की भारी संख्या की तुलना म ये थोड़ी सी मुद्राएँ कुछ नहीं हैं। जो भी हो उनकी संख्या इतनी

१ पुरी स० प्र० प्र०, पृष्ठ १३६।

२ अशहाय न जिसका नारद स्मृति का भाष्य ८वीं सदी का माना जा सकता है एक लाख द्रम्मा का उल्लेख किया है (ज० यु० सो० ६०, १७, ६६)। बभली पाण्डुलिपि म द्रम्म का जो उल्लेख आया है वह गायद इससे पहल का है।

३ ज० यु० सो० ६०, १०-२८-३०।

४ वही २९।

५ वही पृष्ठ १५३।

नहीं थी कि वे उस समय की क्षेत्रबद्ध अथ व्यवस्था के प्राचीर को भेद सकती।<sup>१</sup>

यह बतलाया जा चुका है कि किसी भी सिक्के को निश्चित रूप से पाल सिक्का नहीं कहा जा सकता है और जिन्हे प्रतीहारों का माना जा सकता है, ऐसे सिक्के भी बहुत कम हैं। अतएव इस काल के जो सिक्के मिले हैं वे और जिनका उल्लेख समकालीन अभिलेखों में हुआ है, वे सब शायद अधिकतर उन स्थानीय मस्यामों या वणिक समूहों द्वारा जारी किये गये थे जिन्हें अपने अपने साम्राज्य में यह अधिकार दिया था। गद्यया पंक्तियों पर यह अनुमान लागू हो सकता है। ये राजस्थान में पहले पहल सायद दसवीं शताब्दी में डाले गये, और उन पर लिखे हुए अक्षरों को देखकर तो यही लगता है कि ११वीं शताब्दी के पहले इनका चलन नहीं के बराबर था। दसवीं सदी के सीमडोणि अभिलेख में जिस पचीसक द्रम्म का उल्लेख हुआ है उसे मण्डारकर स्थानीय पचायत द्वारा डाला गया सिक्का मानते हैं।<sup>२</sup> उस काल में द्रम्मा के स्थानीय नाम हुआ करते थे जा वात परवर्ती काल में भिल्लमाल या श्रीमालिय द्रम्मा के उपयोग से भी साबित हानी है।<sup>३</sup> इसमें सन्देह नहीं कि स्थानीय मस्यामों, नगरों या व्यापारियों द्वारा जारी किये गए सिक्के के द्वीय सत्ता के निष्प्रभाव होने और क्षेत्रीय आर्थिक एकाग्रता के अस्तित्व की साक्षी मरते हैं।

राजस्थान में ८६६ में २०४ तक के आठ अभिलेखा में मंदिरों के प्रबंधकों द्वारा नकद मूल्य देकर दुकानों खरीदन का उल्लेख है,<sup>४</sup> पर यह किस प्रकार की मुद्रा थी कहना कठिन है। उस काल की किसी भी श्रेणी की मुद्राओं के बारे में हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि ये पाल, प्रतीहार अथवा राष्ट्रकूट साम्राज्यों द्वारा जारी किये गए थे। इस काल में उड़ीसा में बड़े राजवंश में शासन किया, पर ११वीं सदी के पहले वहाँ भी सिक्का का अभाव जसा है। दक्षिण भारत में भी यही अवस्था पाई जाती है। फिर भी, जो सिक्के मिले हैं और जिनका उल्लेख प्रतीहार अभिलेखा में हुआ है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतीहार साम्राज्य की आर्थिक अवस्था उतनी क्षेत्रबद्ध नहीं थी

१ लकिन इस विवेचन में काश्मीर भी शामिल नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि वहाँ मुद्रा का प्रचलन काफी था।

२ ज० पु० सो० ६०, १७, ७० ७१। अब इनका मतलब  $\frac{1}{4}$  द्रम्म लगाया जाता है।

३ ज० पु० सो० ६०, १७ ७६ ७५।

४ ए० ६० १६, न० ७ पृष्ठ ५२ ५८।



सीयडोणि अभिलेख से यह धारणा बनती है कि प्रतीहार साम्राज्य के व्यापारियों म नमक के व्यापारियों का महत्व सबसे अधिक था। इसमें सात नमिक वणिका का उल्लेख है, जिनमें से कुछ को मन्दिरा की स्थापना का और कुछ का उन्हें अनुदान देने का श्रेय दिया गया है। यदि तत्कालीन अर्थव्यवस्था क्षेत्रवृद्ध न होती तो अन्न और कपड़े के व्यापारियों का महत्व सबसे ज्यादा होता। यहाँ तक कि नगरो म रहने वाला के पास भी पास पड़ोस म जमीन हुआ करती थी, और ये लोग शायद उसी जमीन की उपज पर निर्भर थे। सीयडोणि<sup>१</sup> और खानियर<sup>२</sup> के व्यापारियों के बारे में तो यही स्थिति जान पड़ती है। आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का यह सबसे सबल प्रमाण है कि प्रतीहार साम्राज्य में नमक के व्यापारियों का महत्व सभी व्यापारियों से अधिक था। प्रतीहार अभिलेखों म जिस दूसरे महत्वपूर्ण व्यापारी वग का उल्लेख हुआ है, वह है तलका (तलिको) का वग। किन्तु इनका महत्व भी ग्राम निर्भर अर्थ-व्यवस्था का ही सूचक है। शायद सभी गांव खाना बनाने और रोगनी के लिए जरूरी पूरा तेल अपने यहाँ तैयार नहीं कर पाते थे, और उनकी जरूरत तलक पूरा करते थे।

सक्षेप म पूर्व मध्यकालीन अर्थव्यवस्था की चार प्रमुख विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। एक तो यह कि भूमि पर राजकीय और सामुदायिक स्वामित्व का ह्रास हुआ रहा था और व्यक्तिगत स्वामित्व का विकास हो रहा था। दूसरे, उपसामन्तीकरण, ब्रेदखली, नये नये करा के आरोपण तथा बगार के कारण किसानों की दशा दासवत होती जा रही थी। तीसरे, व्यापार और गिरफ्तकारीगरी आदि से होने वाली राजकीय आय भी कुछ लोगों की जागीर बनती जा रही थी। और चौथी बात थी आत्म निर्भर आर्थिक जीवन, जिसका अस्तित्व मुद्रा के अपेक्षाकृत कम उपयोग और व्यापार की कमी से सिद्ध होता है। इन सबको पाल, राष्ट्रकूट और प्रतीहार साम्राज्य म प्रचलित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ माना जा सकता है। इनमें से भूमिधर मध्यवर्ती लोगों के अस्तित्व को तो पहले से ही चली आ रही बात माना जा सकता है। हा यह अवश्य हुआ कि इस काल म उनकी सत्या में खूब वृद्धि हुई। इसी तरह किसान लोग भी इन साम्राज्यों की स्थापना में पहले से ही तरह-तरह के प्रतिवधा और बाधा के कारण हीनावस्था में पहुँचने जा रहे थे। अब अन्तर सिर्फ दत्तना

१ ए० इ० १ न० २१ पक्तियाँ ३४।

२ वही न० २०, दूसरा अभिलेख, पक्तियाँ ३।



पडा कि राजस्थान गुजरात और महाराष्ट्र में दरपट्टे, वेदखली तथा बंगार का सिलसिला और भी जोरो से चल पडा । तब तो ग्रामीण लोग के भूमि विषयक तथा सामुदायिक अधिकारों का ह्रास और उसके परिणामस्वरूप भूमि पर निजी अधिकारों का विकास, शिल्प उद्योग तथा व्यापार का सामन्तीकरण, और मुद्रा का अभाव ये सब इस काल की अर्थ-व्यवस्था की नयी विशेषताएँ जान पड़त हैं । इनमें से कुछ को—विशेषकर भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के विकास को—अच्छी तरह समझने के लिए पूर्व मध्यकाल में दिये गये अनुदानों के कानूनी आधार का अध्ययन करना आवश्यक है ।

## पूर्व मध्यकाल में भूमि विषयक अधिकार

(लगभग ५०० से १२०० ईस्वी तक)

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में भूमि सम्बन्धी अधिकारों के खाल पर अंग्रेजों द्वारा हुकूमत के समय में साम्राज्यवादी और राष्ट्रवादी इतिहासकारों के बीच बड़ा तीव्र विवाद चलता रहा जिसके कारण इस विषय का सही मही निरूपण कर सकना कठिन हो गया है। अंग्रेजों के अन्तर्गत भूमि सम्बन्धी कानूनों का अन्वेषण ठहराने के लिए कुछ प्रशासक इतिहासवेत्ताओं ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि प्राचीन भारत में सारी भूमि राजा की सम्पत्ति होती थी।<sup>१</sup> इस सिद्धांत का समर्थन मेन ने तो किया ही साथ ही बुहलर<sup>२</sup> हापकिंस, मकडॉनल, कीथ तथा विंसेंट स्मिथ —जसे प्राच्य विद्या विगारदा ने भी किया। १९०४ में विंसेंट स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पाठ्य-पुस्तक में लिखा कि 'भारत के देशी कानून में खेती की जमीन को सदा से राजा की सम्पत्ति माना जाता रहा है।'<sup>३</sup> इस नितांत एकांगी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया पी० एन०

१ काने के शब्दों में, भूमि पर राज्य के स्वामित्व का सिद्धांत अंग्रेजी सरकार के लिए अग्रिक सुविधाजनक और लाभदायक था। अतः अपनी भूमि-विषयक नीति और कानूनों के सम्बन्ध में उसने इसी सिद्धांत का अपनाया। हि० घ० गा०, २ २६६।

२ सं० बु० ई० २५ २५६ ६०, मनु-स्मृति पर लिखी टिप्पणी ८, ३६।

३ अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (ग्रॉक्सफोर्ड, १९०४), पृष्ठ १२३, 'ग्रॉक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया पृष्ठ ६०।

४ अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (ग्रॉक्सफोर्ड १९०४) पृष्ठ १२३।

बनती तथा वासीप्रसाज जायसवाल<sup>१</sup> जैसे राष्ट्रवादी इतिहासकारों के विचारों में हुई। इन्होंने साम्राज्यवादी अन्वेषणों का खण्डन किया और भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व सिद्ध करने का प्रयाग किया।<sup>२</sup> उनीसवीं सदी में तथा बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटिशों ने जो बड़े बड़े जमींदारों के अधिकारों पर प्रहार किया उसका प्रतिरोध ऐसे विचारों से ही हो सकता था। घोषानन जायसवाल के राष्ट्रवादी सिद्धांत पर आपत्ति थी, लेकिन वे जायसवाल द्वारा अपनी मायता का सिद्ध करने के लिए दिये गए व्यक्तिगत उद्धरणों की व्याख्या करके ही रह गये।<sup>३</sup> हाल में कुछ और विद्वानों ने भी इस विषय पर लिखा है<sup>४</sup> किन्तु मुख्यतः सिद्धांत के धरातल पर ही। यद्यपि इन अनुशीलनों का परिणाम स्वरूप भूस्वामित्व से सम्बन्धित अधिकांश कानूनी सूत्र और साहित्य प्रकाशित हो गये हैं किन्तु जिस काल की वे उल्लेख हैं उस काल की राजनीतिक एवं आर्थिक प्रवृत्तियों का परिप्रक्ष्य में रखकर उनका विश्लेषण नहीं किया गया है और न तद्विषय से ही इन साक्ष्यों की व्याख्या की गई है। यह भी नहीं सोचा गया कि भूमि विषयक अधिकारों से सम्बन्धित मायताओं में समय-समय पर कौन-कौनसे परिवर्तन होते रहे हैं। इसके सम्बन्ध में प्राचीनकाल और मध्यकाल (जिसका प्रारम्भ हम गुप्तकाल की समाप्ति से मानते हैं) के बीच कोई सीमा-रेखा भी नहीं खींची गयी है। आधुनिक विद्वान इस विषय पर विचार करते हुए कभी भी अपने समय की भूमि व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं और इसलिए उनका प्रयास बराबर भूमि पर एक या दूसरे पक्ष के अल्पसंख्यक अधिकारों को ही सिद्ध करने का रहा। उन्होंने इस सम्भावना की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया कि एक ही भूमि के टुकड़ों पर विभिन्न पक्षों के अलग-अलग अधिकार भी हो सकते हैं और इन अधिकारों का आधार सुप्रतिष्ठित कानून नहीं बल्कि रीति परम्पराएँ भी हो सकती है।

अभी तक इस विषय के विवेचन में पूर्व मध्यकालीन प्रमाणा और साक्ष्यों पर अलग से विचार नहीं किया है, इसलिए हम अपने अध्ययन को मुख्यतः

१ पब्लिश ऐडमिनिस्ट्रेशन इन एग्रीकल्चर इ इंडिया पृष्ठ १७६।

२ हिंदू पॉलिटो द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३४३-४१।

३ द विमिनिंग ऑफ इंडियन हिस्टोरोग्राफी एंड अदर एसेज निबन्ध ६, पृष्ठ १५८-६६।

४ एस० के० मती इकनॉमिक लाइफ ऑफ नॉर्दन इंडिया इन गुप्त पीरियड पृष्ठ ११-२३ एस० गापाल ज० इ० सो० हि० ओ०, ४ २४६-६३।

इसी काल तक सीमित रखेंगे। यदि हम सामुदायिक, राजकीय तथा व्यक्तिगत, सभी प्रकार के भूमि विषयक अधिकारों पर एक एक करके विचार करें तो इससे हमें वस्तु स्थिति का सही बोध हो सकता है।

वदिक काल से लेकर गुप्त-काल तक के भारतीय साहित्य से भूमि पर सामूहिक अधिकार होने का आभास मिलता है। उत्तर वदिक-कालीन ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि जब विश्वकर्मन्भोवन ने पुरोहितों को यनाथ भूमि दान की तो पशुओं ने इसका विरोध किया।<sup>१</sup> ऐसा लगता है कि उस काल में गोत्र की सहमति के बिना भूमि दान नहीं की जा सकती थी।<sup>२</sup> और विश्वकर्मन्भोवन के उदाहरण को छोड़कर वदिक काल में गोत्र की सहमति से भी भूमि दान करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। वेदोत्तर काल के घमनास्त्रकार गौतम ने यह विधान किया है कि योगक्षेम अर्थात् जीविका के साधन रूप सम्पत्ति का विभाजन नहीं हो सकता।<sup>३</sup> स्पष्ट ही इस सम्पत्ति में भूमि शामिल है और इस नियम के अनुसार परिवार के सदस्यों के बीच यह विभाजित नहीं की जा सकती। गौतम घमसूत्र के उसी अनुच्छेद में योगक्षेत्र शब्द का अर्थ घमार्थ और यनाथ सम्पत्ति लगाया गया है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यह उस शब्द की बाद में की गयी व्याख्या है।<sup>४</sup>

वेदोत्तर काल में भूमि पर गोत्रीय अधिकार के साथ साथ गोत्र से बाहर के लोगों के अधिकारों का भी विकास हुआ। जब विभिन्न गोत्रों और घण्टों के लोग न मिलकर गाँव बसाय तब भूमि पर ग्रामीण समुदाय को कुछ अधिकार प्राप्त हुए। भूमि पर व्यक्ति का स्वामित्व किसी न किसी प्रकार के सामूहिक नियन्त्रण के अधीन था। यह पुरातन भावना कि भूमि सम्पूर्ण समुदाय की सम्पत्ति है और उसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता शायद प्राइमोय-काल में भी मौजूद थी।<sup>५</sup>

जमिनी के सीमांसा सूत्र में भूमि पर सामुदायिक अधिकार के सिद्धांत की पुष्टि होती है। इस ग्रन्थ को हम चौथी से तीसरी सदी ई० पू० के बीच की कृति मान सकते हैं। इसमें कहा गया है कि विश्वजित यज्ञ में, जिसमें यजमान को

१ ८ २१।

२ ४० हि० ६० १, ११८।

३ २८ ४६।

४ सं० बु० ६०, २, सूत्र २८ पर पा० टि० ४६, ४६।

५ ४० हि० ६०, १, १७८।



संवदित रखा गया। धर्मशास्त्रकार देवणभट्ट जिसका समय १२वीं सदी के आसपास माना जा सकता है मिताक्षरा की व्याख्या से सहमत जान पड़ता है। इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद की व्याख्या करते हुए वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि भूमि का विभाजन ही सक्ता है, किन्तु साथ ही उमने गत जम्ह लगा दी कि विभाजन समस्त कुटुम्बिया की अनुमति से ही हो सकता है (अखिल दायादानुमते)।<sup>१</sup> इस प्रकार जो बात मिताक्षरा में प्रकृतांतर से कही गयी है वह देवणभट्ट की स्मृतिचन्द्रिका में विलकुल स्पष्ट शब्दों में कह दी गयी है। तापय यह कि ११वीं से लेकर १३वीं शताब्दी तक के धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण परिवारों की भूमि सम्पत्ति के विभाजन की स्पष्ट व्यवस्था की गयी है और जो नियम ब्राह्मण परिवारों के लिए बना था सम्भवतः वही अन्य जातियों के परिवारों पर भी लागू रहा हो।

सीमा विधान के निम्न और भूमि के अन्य विनय में ग्रामीण समुदाय का कुछ अधिकार दिये गए हैं। धर्मशास्त्रों में व्यवस्था है कि सीमा विवाद में कुटुम्ब (जाति) तथा पडासी (सामन्त) मध्यस्थता करें किन्तु साथ ही किसानों को शिल्पियों और यहाँ तक कि श्राविकों के साक्षियों को भी मायता दी गयी है। उनमें अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने गाँव जाति और दायादा की सहमति से ही अपनी जमीन बेच सकता है।<sup>२</sup> जमीन बेचने में कुछ खास तरह के खरीदारों को प्राथमिकता दी पड़ती थी। पहले निकट सम्बन्धियों से पूछा जाता था फिर पडोसियों से और तब धनिकों<sup>३</sup> और इनके बाद अपने सामान्य कुटुम्बियों (सकुल्यों) से। जब इनमें से कोई खरीदने को तयार न हो तभी उसे दूसरी जातियों के लोगों के हाथ बेचने की इजाजत दी गयी है।<sup>४</sup>

बहस्पति स्मृति का विधान है कि जब राजा भूमि दान कर (धर्मार्थ अथवा धर्मोत्तर प्रयोजना से यह स्पष्ट नहीं है) तब उसे चारा बंदा के नाताओं, व्यापारियों, महत्तरों, तमाम ग्रामवासियों, उस भूमि के स्वामियों तथा राज्याधिकारियों को सूचित कर दना चाहिए।<sup>५</sup> इस निर्देश का पालन साधारणतया

१ धर्मशास्त्र, १, १२३२।

२ धर्मशास्त्र, १, ६०१ (स्वग्रामजातिसामन्तदायादानुमतेन च)।

३ धर्मशास्त्र, १, ६०० में उद्धृत भारद्वाज स्मृति।

४ वही।

५ राजा क्षेत्र पदवा चातुर्वर्ण्यवर्णियभारिक सर्वग्रामीणतामहत्तरस्वामीपुण्या-

सभी अनुदान पत्रों में किया गया है और इससे यह संकेत मिलता है कि भूमि पर ग्रामवासियों का भी कुछ हक होता था। गुप्त काल में एक ऐसा उदाहरण मिलता है कि धार्मिक प्रयोजना से भूमि के हस्तांतरण में ग्राम सभा की सहमति लनी पड़ी थी। इसी प्रकार ६वीं शताब्दी में ग्वालियर के निकट एक नगर में एक मन्दिर को दान में कुछ ऐसी भूमि दी जिस पर सभी नगरवासियों का संयुक्त अधिकार था। सामुदायिक अधिकारों के प्रयोग के ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं। किंतु, इसमें संदेह नहीं कि औपचारिक रूप में इसका निर्वाह शक्तिशाली राजाओं ने भी किया। अनुदान की सूचना के केवल अपने राज्याधिकारियों और सामन्तों को ही नहीं बल्कि सामान्य जनता को भी देते हैं जिनमें चाण्डाल भेद और अश्रम तक शामिल हैं। बंगाल और उड़ीसा में कुछ अनुदानपत्रों में भूमिदान के लिए सभी की सहमति मांगी गयी है और कुछ अन्य अनुदानपत्रों में सभी वर्गों के ग्रामवासियों का दान की सूचना भर दे दी गयी है। इस प्रथा में उस समय के सामुदायिक अधिकारों का अवशेष मिलता है जब भूमि गोत्र की संयुक्त सम्पत्ति होती थी लेकिन जब गोत्रों ने बिखर कर जातियों का रूप ले लिया और एक साथ विभिन्न गोत्रों के लोगों से आबाद गांव बस गये तब भी इस पुरानी रीति का निर्वाह होता रहा।

पुरोहित और मन्दिर भूमि का उपभोग समुदाय के नाम पर करते थे। धार्मिक प्रयोजना से जमीन बेचने की छूट इसलिए भी दी गयी थी कि मन्दिर समुदाय के कल्याण के लिए ही काम करते हैं। मन्दिरों को भूमि बलि और सत्र के लिए दान की जाती थी और बलि तथा सत्र के रूप में देवताओं को जो कुछ भेंट किया जाता था उसके सामीप्य केवल पुरोहित ही नहीं, बल्कि जिनका पैसा पुरोहिताई नहीं थी, ऐसे भक्तजन भी होते थे। आज भी देवताओं का चलाया गया पान प्रसाद दैनिक पूजा प्रचना तथा समय समय पर आयोजित विधेय पूजा प्रचनाओं के अवसरों पर मन्दिरों में एकत्र ग्रामवासियों में बांट दिया जाता है। सम्भव है कि प्राचीनकाल में पढावे का एक बड़ा हिस्सा भक्तजनों के बीच बांट दिया जाता हो। कालांतर से पुरोहित लोग उसका अधिकार अपने उपयोग के लिए रखने लगे, तथा सामान्य जन, जिनके नाम पर भूमि अनुदान दिया जाता था, अनुदत्त भूमि की उपज के एक बहुत ही छोटे हिस्से का सामीप्य रह गये।

जहाँ तक गोचर भूमि का सम्बन्ध है, प्राट गुप्त-काल के दो स्मृतिकार, मनु तथा विष्णु, स्पष्ट ऋदा में कहते हैं कि गोचर भूमि का विभाजन नहीं हो

सकता। जलाशयो आदि पर सामुदायिक अधिकारों का संकेत इस व्यवस्था से मिलता है कि उदक का विभाजन नहीं हो सकता।<sup>१</sup> अभिलेखा से भी प्रकारांतर से यह प्रकट होता है कि जनता को कुछ ऐसे सामूहिक अधिकार प्राप्त थे, कि तु बाद में जैसे विधान बने और जिन शर्तों पर अनुदान दिये गये उनके कारण इन अधिकारों का क्षय होता चला गया।

भूमि सम्बन्धी सामुदायिक अधिकारों पर पहले पहल राजाघ्रा ने प्रकुश लगाया। उपर हम विद्वक्मनभोवन से सम्बन्धित जिस अनुच्छेद का हवाला दे चुके हैं, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इस प्रक्रिया का प्रारम्भ वैदिक युग की समाप्ति से पूर्व ही हो गया था। यद्यपि इस अनुच्छेद से पता चलता है कि राजा द्वारा अधिकाधिक भूमि विपयक अधिकारों का स्वायत्त करते जाना समाज को सह्य नहीं था, किन्तु धीरे धीरे राजा को समाज के प्रतिनिधि की हैसियत से व सामाजिक अधिकार प्राप्त हो गये। लेकिन तब भी उसे जमीन पर अखण्ड और निरकुश अधिकार प्राप्त नहीं हो सका। जो भी हा, पूर्व मध्यकाल तक भूमि पर जितना कुछ गोत्रीय या सामुदायिक अधिकार शेष रह गया, उसकी जड़ें राजकीय तथा व्यक्तिगत अधिकारों के विकास के कारण खोखली पड़ गयी।

राजकीय तथा व्यक्तिगत अधिकारों के विकास की प्रक्रिया की साक्षी इस काल के धर्मशास्त्र और भूमि अनुदान पत्र दोनों भरते हैं। जो लोग प्राचीन भारत में भूमि पर राजकीय स्वामित्व का अस्तित्व सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, वे अपनी स्थापना के पक्ष में दिये गये प्रमाणों को प्राचीन काल और मध्य काल दोनों पर लागू कर देते हैं। इस बात की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता कि जिन ग्रन्थों में भूमि के सम्बन्ध में राजकीय अधिकारों पर बल दिया गया है, उनमें से अधिकांश पूर्व-मध्यकाल की कृतियाँ हैं। कौटिल्य कृपि पर राजकीय नियमों को अपेक्षित मानता है,<sup>२</sup> किन्तु वह कहीं भी भूमि पर राजा के स्वामित्व के सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं करता। ऐसा लगता है कि सबसे पहले मनु ने पृथ्वी पर राजा के सर्वोच्च अधिकार की बात मोटे तौर पर कही, लेकिन इस सर्वोच्च अधिकार का मतलब जल्द ही तौर पर भू स्वामित्व ही रहा हो ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दिखायी देता। उसके अनुसार, खाना से निवृत्त होने के बाद मनु के आगे हिस्से पर राजा का अधिकार था, क्योंकि वह

१ धर्मशास्त्र, १२०४, १२०६, १२०६।

२ अध्याय, २२४।



पृथ्वी का अधिपति था और उसको रखा करता था।<sup>१</sup> पूर्ववर्ती शास्त्रकारों के अनुसार राजा का कर लगाने का अधिकार केवल इस कारण था कि वह लागा कर रखा करता था। राजकीय स्वामित्व का सिद्धांत स्पष्ट शास्त्रों में सबसे पहले उत्तर गुप्त काल के स्मृतिकार कात्यायान ने प्रतिपादित किया। उसके अनुसार राजा भू स्वामी है और इसलिए उपज की एक चौथाई का अधिकारी है।<sup>२</sup> फिर भी वह स्वीकार करता है कि चूकि मनुष्य भूमि पर रहत है इस लिए उह (सामान्य भाषा में) उसका स्वामी कहा जाता है।<sup>३</sup> इस प्रकार उसने भूमि के राजकीय स्वामित्व के अपने सिद्धांत में सामान्य जनता के स्वामित्व के लिए भी गुंजाइश छोड़ दी है। कुछ ऐसी ही बात नारद भी कहता है। वह राजा का किसानों को जमीन और मकान से बंधित करने का अधिकार तो देता है किंतु साथ ही राजा को ऐसी सख्त कारवाइ करने से मना करता है क्योंकि जमीन और मकान गृहस्थों के जीवन यापन के साधन हैं।<sup>४</sup> नारद के इस दूसरे निर्देश की व्याख्या करते हुए असहाय कहता है कि किसानों को बीज आदि देकर राजा को अपना स्वत्व प्राप्त करना चाहिए।<sup>५</sup> इसका मतलब यह हुआ कि यदि राजा किसानों को राहत और सहायता दे तो उपज का अपना हिस्सा वह किसानों से प्राप्त कर सकता है। किसानों के पक्ष से किये गये ये दावे तरसिंह पुराण के भाष्य में बिलकुल नहीं मिलते। उसका कहना है कि भूमि किसानों की नहीं राजा की है।<sup>६</sup> १२वीं शताब्दी के एक भाष्यकार भट्टस्वामी ने बौद्धिक के अर्थशास्त्र पर लिखे अपने भाष्य में एक बहुत ही महत्वपूर्ण

१ ८ ३६।

२ कात्यायन स्मृति दलोक १६।

३ श्लोक १७।

४ ११ २७ ४२।

५ नारद स्मृति १४ ४२ की टीका धर्मशास्त्र १ ६४६ में उद्धृत।

६ एम० ए० बक कृत इन्फॉर्मिज लाइफ इन एग्जिस्टेंसिज २ पृष्ठ २४ में उद्धृत (लॉन लंड पेड लबर ऑफ इण्डिया पृष्ठ १११ ४ में उद्धृत)। सन कृत रिपब्लिकन प्रिन्सिपल्स पृष्ठ ५२ भी। मानविक्य स्मृति १ ३१८, मिताक्षरा की टीका से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इसके अनुसार भूमि दान करने या निबन्ध का अधिकार किसी राजा के अधीनस्थ प्रान्तीय शासक या जिलाधीश को नहीं था, यह विशेषाधिकार सिर्फ राजा को ही था।

अनुच्छेद उद्धृत किया है। इसके अनुसार, शास्त्रविद लोग यह स्वीकार करते हैं कि राजा भूमि और जल दोनों का स्वामी है और सामान्य जन इन दोनों के अतिरिक्त किसी भी वस्तु के स्वामी हो सकते हैं।<sup>१</sup> यह अनुच्छेद भरसिंह पुराण के भाष्यकार के विचारा से बहुत मिलता जुलता है और इसमें राजा और प्रजा के अधिकारों का अंतर स्पष्ट शब्दों में बताया गया है।<sup>२</sup> इसमें यह नहीं बतलाया गया है कि प्रजा के भूमि विषयक अधिकार राजा के अधीन हैं बल्कि यह कहा गया है कि प्रजा को भूमि विषयक अधिकार बिलकुल नहीं हैं। यह अनुच्छेद मिर्चाई करों के मद्देन में उद्धृत किया गया है जिससे स्पष्ट है कि भट्टस्वामी न इसका प्रयोग भू स्वामित्व के आधार पर कर लगाने का अधिकार सिद्ध करने के लिए किया है।

यद्यपि पावकी गनाद्वी से सामान्य जन अपनी जमीन काश्तकारों को पट्टे पर दे सकते थे, फिर भी राजा भूमि पर अपने सर्वोच्च अधिकार का प्रयोग कर सकता था। याज्ञवल्क्य (२, १५८)<sup>३</sup> ने विधान किया है कि यदि काश्तकार कोई जमीन कृषि के लिए लेकर उस पर कृषि नहीं करता तो जमीन का मानिक उसे अपना हिस्सा देने को मजबूर कर सकता है। इसमें राज्य के हिस्से के जाने में कुछ नहीं कहा गया है। किंतु वहस्पति<sup>४</sup> और यासक<sup>५</sup> के अनुसार ऐसी स्थिति में काश्तकार को न केवल भू स्वामी को उसका हिस्सा देना पड़ेगा बल्कि उसे उतना ही पण्ड राजा को भी देना पड़ेगा। कृषि की उपक्षा से राजस्व की हानि अवश्य होती होगी, लेकिन इसके लिए राजा भू स्वामी के घजाय काश्तकारों को उत्तरदायी मानना है और इस प्रकार उनके साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है। इससे प्रकट होता है कि राजा को उनकी जमीन पर सामान्य सत्ता प्राप्त थी। जिस भूमि का उपयोग कोई परिवार लगातार तीन पीढ़ियों तक कर चुका हो, उस भूमि पर नारद सामान्यतया उस परिवार

१ अथशास्त्र (चतुर्थ सम्करण) अनु० पृष्ठ १४४।

२ घोपाल कृत सिन्धुप्राणी पेट अद्वैत पत्र पृष्ठ १६०। मानसम्लानस, १ (ग० आ० सि० २८) परिच्छेद ३, श्लोक ३६१ से भूमि के राजकीय स्वामित्व के सिद्धांत की पुष्टि होती है। इसमें राजा का समस्त सम्पत्ति का, और विशेषकर भूगर्भ सम्पदा का स्वामी (ईश्वर) कहा गया है।

३ धर्मशास्त्र, १, ६४३।

४ घटी, १, ६२८।

५ मही, ६६१।

के कानूनी अधिकार को स्वीकार करता है। मरिच वहाँ भी राजकीय अधिकार व्यक्तित्वगत अधिकारों का प्रतिफलन करता है क्योंकि राजदूतों में (राजप्रधानों) ऐसी जमीन किमी दूसरे का दी जा सकती है। इस प्रकार एक घोर तो राजा को किसी भी व्यक्ति को अपनी भूमि तथा मजान से वंचित करने का अधिकार दिया गया है (मले ही वह भूमि घोर मजान उतके करत में गाठ बरों में ही क्या न रहा है), घोर दूसरी घोर उमे वह भूमि किसी घोर को भी प्रदान करने की शक्ती दी गयी है। ऐसी व्यवस्था का अन्तगत राजा एक भोगी म जमीन सवर दूसरे को द सकता था।

गुप्त-काल घोर गुप्तोत्तर-काल में भीमी यात्री काहिवान घोर ह्येसांग म अपन अपन विवरणा में लिखा है कि भूमि राजा की थी। सम्भव है कि विभिन्न राजाघरा के अधीन वास्तविक स्थिति में अन्तर पडता रहा हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूव मध्यकाल में भूमि पर राजकीय स्वामित्व का सङ्घातिक रूप प्रबल था। वागी प्रमा जायसवाल प्राचीन भारत में भूमि पर राजकीय स्वामित्व के सिद्धान्त को सामन्तवादी विधान का अंग मानते हैं<sup>१</sup> किन्तु गुप्त-कालीन तथा गुप्तोत्तर काल की स्मृतियाँ घोर भाष्या में भूमि का राजकीय स्वामित्व के रूप में जो प्रमाण मिलते हैं, उनकी उपयोग नहीं की जा सकती। केवल जमिनी विचारधारा के समयक सवर में, जिसका समय तीसरी स घेची गताब्दी के बीच पडता है इस पर भावति की है।

यह कहा जा सकता है कि राजा को भूमि का अन्त भोगाधिकार प्राप्त था जो अनुदानभोगिया को हस्तान्तरित कर लिया जाता था घोर प्रारम्भिक अनुदानों में राजस्व के कुछ साधन ग्रहीताओं को हस्तान्तरित भी किये गये। किन्तु गुप्तोत्तर काल के अनुदान-पत्रा में जल योविया उपजाऊ ऊमर घोर खाई खड्डा वाली जमीन वन गोचर आदि सबकुछ के भाग साथ गाँव शान किये जाते थे। मराठा अनुदान पत्रा का सम्बन्ध में आधुनिक भारतीय अदालत ने इसका मतलब ग्रहीता के नाम भूमि के सम्पूर्ण स्वामित्व का हस्तान्तरण लगाया है।<sup>२</sup> दूसरी घोर, जहाँ अनुदान पत्रा में इन तमाम चीजों का स्पष्ट उल्लेख

१ हिन्दू पॉलिटी (द्वितीय संस्करण), ३४६। उ होने विल्स (हिस्ट्री ऑफ मैसूर १८६६) को उद्धृत करते हुए कहा है कि विल्स के अनुसार भूमि पर राजा के स्वामित्व के सामन्तवादी सिद्धान्त को हिन्दू कानून का अङ्ग मानने का कोई आधार दिखाई नहीं देता।

२ हि० अ० शा०, २, ८६५ ६।

महोँ किया गया है, वहाँ इसका मतलब यह लगाया जाता है कि राजा ने सिर्फ राजस्व के साधना का हस्तान्तरण किया।<sup>१</sup> यही धारणा पूर्व मध्यकालीन अनुदानों पर भी लागू होनी चाहिए। यदि राजा को भूमि का स्वामित्व प्राप्त नहीं था तो फिर वह दूसरा को उसका स्वामित्व कैसे प्रदान कर सकता था ?

हो सकता है कि समाज के प्रतिनिधि के नाते राजा को भूमि सम्बन्धी अधिकार प्राप्त रहे हों किन्तु पूर्व मध्यकाल में उसे इन अधिकारों का कोई स्पष्ट भान नहीं था। इस मामले में राजा का स्वामित्व और राज्य का स्वामित्व दाना को एक ही वस्तु नहीं माना जा सकता है। राजा जब भूमि अनुदान देने से तब से अपने लिए और अपने माता पिताओं के लिए धर्म अर्जित करने के लिए दत्त थे। अनुदान के समय उह समाज और राज्य के आध्यात्मिक बल्यण की चिन्ता नहीं रहती थी। तत्पय यह कि वे सामान्य भू स्वामियों के रूप में व्यक्तिगत हैसियत से भूमि अनुदान देते थे।

वदिक तथा वेदोत्तर मौर्य तथा मौर्योत्तर काल के साहित्य में सामान्य-जनता द्वारा कृषि योग्य भूमि के स्वायत्त करन का सकेत मिलता है। इसे हम भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार का प्रमाण मान सकते हैं। लेकिन प्रारम्भिक ऐतिहासिक सामग्री में धार्मिक प्रयोजना के अतिरिक्त अथ किसी उद्देश्य से व्यक्ति को अपनी जमीन दूसरा को देने का अधिकार नहीं दिया गया है। खेती की जमीन का बचने रहन रखने विभाजित करने आदि के अधिकार वास्तकार को प्राप्त नहीं थे। स्वामित्व की इन विशेषताओं का उल्लेख गौतम<sup>२</sup> तथा मनु<sup>३</sup> आदि प्राङ्गुप्त कालीन धर्मशास्त्रकारों ने किया है लेकिन न तो इन्होंने और न आपस्तम्ब, बौधायन वसिष्ठ तथा विष्णु आदि धर्मशास्त्रकारों ने ही व्यक्ति को दान बिक्री रेहन तथा विभाजन आदि के द्वारा अपनी भूमि किसी को देने या नूमरे की भूमि लने की अनुमति दी है। हाँ, गुप्त-काल और गुप्तोत्तर काल के धर्मशास्त्रों में भूमि का विभाजन करन, उसे बचने और रेहन रखने, उसके अथ अजे और उसे पट्टे पर देने के बारे में विधान किये गये हैं।

यद्यपि प्राङ्गुप्त कालीन स्मृतियाँ में विभाजन सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था विस्तार से की गयी है, किन्तु विभाज्य वस्तुओं में भूमि का उल्लेख नहीं हुआ

१ मामलों के सन्दर्भ के लिए देखिए वही, ३ पा० टि० २०३१।

२ १० २६१।

३ १० ११५।

है। पहले यह उत्तर गुप्त कालीन स्मृतिकार ब्रह्मर्षि ने स्पष्ट किया है कि विभाजन में उच्चतर जातिवाले गुप्त कालीन भूमि नहीं ले सकते। इसी व्यवस्था को दक्षिण में भी स्मृति में जो छोटी-मोटी धाराएँ बनीं, वे भी उसी समय लिखी गईं। स्मृतिकार का मत है कि ब्रह्मर्षि का मतानुसार समकालीन या बहुराज्यीय, मरान्तकालीन या बहुराज्यीय हो तो ज्येष्ठ पुत्र का दक्षिणी या पश्चिमी हिस्सा प्राप्त पाएगा। सामंजस्य जिसकी स्मृति का मसला ६०० से १००० ई.पू. के बीच लिखी समय किया गया, बताया है कि यदि कोई धर्म के अंत में बल पर कोई धर्म जमीन फिर प्राप्त कर लेता है तो उस एक बोधोद घटित मिश्री घटित और नेप का सभी हिस्सेदारों में बराबर बराबर बाँट देना चाहिए। इस नियम को देखते हुए यह साफ है कि गुप्त-काल से पारिवारिक भूमि का विभाजन शुरू हो गया था।

यहाँ तक कि गोचर भूमि को भी जित मनु<sup>१</sup> तथा विल्पी<sup>२</sup> ने अविभाज्य बना दिया था ब्रह्मर्षि<sup>३</sup> विभाज्य घोषित करता है। गोचर भूमि का विभाजन ही यह बड़े महत्व की बात है। अब उन विस्तृत भूसन्धों को जिन पर कई-कई परिवारों का सम्मिलित कृषि रहता था व्यक्तिगत सम्पत्ति बनाया जा सकता था। इस प्रकार गुप्त काल में व्यक्ति भूमि को प्राप्त में बाँट सकते थे और अपने हिस्से की भूमि को निजी सम्पत्ति बना सकते थे।

बिक्री सम्बन्धी कानून से भी भूमि पर व्यक्ति के अधिकारों का विकास का पता चलता है। कौटिल्य ने वास भूमि और अवास के विषय (वास्तु विषय) के सम्बन्ध में नियम बनाये हैं<sup>४</sup> किन्तु उसने जमीन की बिक्री का कोई उल्लेख

१ धर्मशास्त्र, १ १२५१।

२ वही, १२५२।

३ वही, १२०१।

४ वही १२०७ स्मृति चन्द्रिका के माध्य के साथ।

५ ६, २१६। मेघातिथि के अनुसार गोचर भूमि के लिए प्रयुक्त शब्द 'प्रचार' है।

६ १८ ४४।

७ धर्मशास्त्र १ २ १२२३। अपराक प्रचार शब्द की व्याख्या प्रवेश निगमभू<sup>५</sup> करता है (वही)।

८ ३ ६।

नहा किया है। सम्भवतः मौर्य काल में जमीन बचने का चलन नहीं था। इसी प्रकार प्राइ गुप्त कालीन स्मृतियाँ मन्व्य विजय के सम्बन्ध में जो विस्तृत नियम बनाये गये हैं उनमें खरीद-बिक्री की वस्तु के रूप में भूमि का नाम कहीं नहीं लिया गया है। यहाँ तक कि याज्ञवल्क्य तथा नारद जैसे गुप्त कालीन स्मृतिरारों ने भी जमीन की बिक्री की कोई चर्चा नहीं की है। इन दोनों ने खरीदी हुई वस्तुओं की जाच के लिए अलग-अलग अधिधियाँ निर्धारित की हैं। ऐसी वस्तुओं में इन्होंने लोहा, वस्त्र, दुधार पशुओं, मारवाही पशुओं, जवाहरात, सभी तरह के अना, दास तथा दासियाँ आदि का उल्लेख किया है, किन्तु भूमि का वार में कुछ नहीं कहा है।<sup>१</sup> भूमि के विक्रय सम्बन्धी नियमों की रचना करने वाला प्रथम व्यक्ति बृहस्पति ही जान पड़ता है।<sup>२</sup> उसके बाद कात्यायन तथा दूसरे लोग ने इस विषय में नियम बनाये। कात्यायन यह विधान करता है कि यदि कोई किसी को जमीन देता है, या उसके हाथ बेचता अथवा गिरवी रखता है और वह जमीन बाद में बर्बाद हो जाती है, तो उसे उस व्यक्ति को फिर उतनी ही जमीन देनी चाहिए।<sup>३</sup> यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसे उस व्यक्ति को अन्य प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिए।<sup>४</sup> वह श्रागे कहता है कि जिस जमाने की खरीदना हो, उसकी ठीक से जाच कर लेनी चाहिए।<sup>५</sup> यह नियम बाद की स्मृतियों में भी मिलता है।<sup>६</sup> कात्यायन यह व्यवस्था करता है कि जिस भूमि पर कर लगता है उसे कर चुकाने के लिए बेचना चाहिए।<sup>७</sup> इसका मतलब यह हुआ कि किसान को कर की बकाया रकम चुकाने के लिए अपनी जमीन का एक हिस्सा बचन को बाध्य किया जा सकता था।

बृहस्पति<sup>८</sup> भरद्वाज<sup>९</sup> तथा अपराक<sup>१०</sup> के कुछ अन्य विधान भी इस बात की

१ याज्ञवल्क्य स्मृति, २, १७७, नारद स्मृति, १२५६।

२ धर्मशास्त्र, १, ८६६।

३ वही, ७६७।

४ वही।

५ वही, ८६६।

६ वही, ८६६।

७ वही १, ८६८।

८ वही, ८६५।

९ ७२७। भरद्वाज की इन व्यवस्थाओं का सम्बन्ध भूमि के अनधिकृत विक्रय से है।

१० वही, ७६१।

साक्षी भरते हैं कि पूर्व मध्य काल में जमीन बेची जा सकती थी। वहस्पति ने अनुसार जमीन बेचते समय उसमें मौजूद कुम्भों, पेड़ों जल स्रोतों तथा पक्की फसला खाने के फलों तालाबों चू गी घास आदि का उल्लेख करना चाहिए।<sup>१</sup> इसमें जिन चीजों के नाम गिनाये गये हैं उनमें मन में सहज ही यह सवाल उठता है कि यहाँ वहस्पति वही पूरे गाँव के विक्रय की बात तो नहीं कह रहा है।

बारहवीं शताब्दी में लक्ष्मीधर की कृति में ग्राम विक्रय का स्पष्ट विधान मिलता है। उसने गाँव खेत आदि स्यावर सम्पत्ति की विक्री का वर्णन किया है।<sup>२</sup> इसी सदी के पण्डित देवणभट्ट ने इस आशय का श्लोक उद्धृत किया है कि जब सीमा जल और वीथियाँ के साथ साथ कोई गाँव बेचा जाये तो वहाँ के पुरोहित वगैरे ग्राम देवता को नष्ट नहीं करना चाहिए।<sup>३</sup> तेरहवीं शताब्दी तक जब वरदराज के 'यवहार' नियम का सर्वतन हुआ, जमीन की विक्री का चलन पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित और स्वीकृत हो गया क्योंकि इस कृति में जमीन मकान आदि को पण्य वस्तु (विक्री की वस्तु) कहा गया है।<sup>४</sup> ध्यान देने की बात है कि इससे पहले भूमि के लिए इस विनियम का प्रयोग शायद ही कहीं किया गया हो। भूमि विक्रय सम्बन्धी विधानों में धर्मोत्तर प्रयोजना के लिए भी भूमि बेचने का कोई निषेध नहीं किया गया है। गुप्तोत्तर काल में ही धार्मिक प्रयोजनों के लिए भी जमीन बेचने के उदाहरण नहीं मिलते जिसका कारण शायद मुद्रा का अभाव रहा हो। किन्तु १२वीं और १३वीं शताब्दियों में हम जमीन की विक्री के सम्बन्ध में अधिकाधिक निषेधों की रचना होते देखते हैं जिसका सम्बन्ध इस काल में मुद्रा और व्यापार की पुनः प्रतिष्ठा से जोड़ना असंभव न होगा। पूरे गाँव के विक्रय सम्बन्धी विधानों से पता चलता है कि यूरोप के बड़े बड़े भूमिधर लाडों की तरह यहाँ भी गाँव पूरे के पूरे गाँव का मालिक हुआ करते थे।

गौतम मनु याज्ञवल्क्य और नारद ने वही भी सत्ता के व्यवस्था का उल्लेख नहीं किया है।<sup>५</sup> इसका उल्लेख सबसे पहले वहस्पति ने किया है। यद्यपि इसके

- १ धर्मकोश ८६६।
- २ अनटारकल्पना धर्मकोश ८८६ में उद्धृत।
- ३ स्मृति चन्द्रिका २३ धर्मकोश १ ६७७ में उद्धृत।
- ४ हि० ध० शा०, ३ ४६५ पा० टि० ८७८।
- ५ १ १२५।

मकान के उपयोग या बाधक रखे खेत की उपज को वह भोग लाभ की सजा देता है।<sup>१</sup> बहुस्पति और कार्यायन की श्रुतियाँ में खेत के उपभोग से कई नियमों का सम्बन्ध है। कार्यायन कहता है कि जिस मकान या जमीन को बाधक रखना हो उसकी सीमाओं का धोर जिस प्रदेश या गाँव में वह मकान या जमीन हो उस प्रदेश अथवा गाँव की सीमाओं का वर्णन साफ साफ कर देना चाहिए।<sup>२</sup> धार्मिक अनुदानों और गायद घर्मंतर अनुदानों में भी दिये गये गाँवों के सम्बन्ध में इस निर्णय का पालन किया जाता था। बहुस्पति कहता है कि जब श्रृणदाता बाधक में प्राप्त किसी खेत अथवा अन्य अचल सम्पत्ति का पचास उपभोग कर लेता है और उससे वास्तव में अपना पूरा मूल धन और ब्याज वसूल कर लेता है तब वह खेत या अन्य अचल सम्पत्ति श्रृणी को वापस मिल जाती है।<sup>३</sup> इससे प्रकट होता है कि बजदार मूल धन और ब्याज दोनों की प्रदायगी के लिए श्रृणदाता के पास अपनी जमीन बाधक रखता था। कार्यायन का आदेश है कि यदि किसी व्यक्ति ने अपना खेत आदि महाजन को ब्याज के बदले दे रखा हो तो बज की रकम चुका कर वह अपनी जमीन वापस ले सकता है।<sup>४</sup>

गुप्तोत्तर काल की कई श्रुतियों में ब्याज के बन्ले भूमि बाधक रखने की व्यवस्था है। नारद द्वारा उल्लिखित (१, १२५) दो प्रकार की प्रतिभूतियाँ की टीका करते हुए असहाय (७००-७५०) ने खेत और मकान को ऐसे बाधकों की कोटि में रखा है जिनका उपभोग महाजन कर सकता है।<sup>५</sup> इसी प्रकार मनुस्मृति (८-१४३) की टीका करते हुए मेघातिथि कहता है कि महाजन को आधि के रूप में गाय दूध का उपभोग करने के लिए तथा खेत या बागीचा उसकी उपज का उपभोग करने के लिए दिया जाता है अतएव महाजन किसी प्रकार की वृद्धि या कुसीद का हनदार नहीं है।<sup>६</sup> मेघातिथि के समकालीन व्यास ने भी आधि की व्याख्या इसी तरह की है।<sup>७</sup> जब कोई व्यक्ति किसी से

१ ११, ७८।

२ श्लोक ५२२।

३ ११-२३।

४ श्लोक ५१६।

५ सं० सु० ई०, ३३, ७३१।

६ धर्मशास्त्र, १, ६५८।

७ वही, ७३१।



निश्चय याज पर द्रव्य लेता है ऋणदाता को याज के बदले अपनी जमीन देता है और उस जमीन से याज के अनिश्चित जो लाभ हो उसे मूल धन में मिनटा करते जाने या निवेदन करता है तब इसे 'माधि' या सप्रत्यायभोग्याधि कहते हैं और इस तरह जब मूल धन की दुगुनी राशि बढ़ा हो जाती है तो कर्जदार को माधि वापस मिल जाती है।<sup>१</sup> यदि जमीन बंधक न रखी गयी हो तो भी कर्ज बढ़ा करण के लिए उस बचा जा सकता है। भरद्वाज के अनुसार यदि कर्जदार कर्ज चुकाने में असमर्थ है तो उसकी सम्पत्ति कर्ज के भुगतान के लिए बिक्री जाय और उस सम्पत्ति में भूमि, जेत, बागीचा और घर सभी शामिल है।<sup>२</sup>

यह बात भी कर्ज चुकाने के लिए जमीन बंधक रखने के चलन का आभास देती है। इस चलन से स्वभावतः ऋणदाताओं की भूसम्पत्ति में वृद्धि हुई होगी। कहा तो यहाँ तक गया है कि बंधक जमीन का उपयोग सौ साल तक किया जा सकता है। किंतु जमीन के बंधक के नियम के कारण होने के लिए सिवरे के चलन का बदला आवश्यक था। यह स्थिति ११-१२वीं सदी में पैदा हुई, और मध्य भारत में १३वीं सदी के आरम्भ में इस भाग्य का एक अभिलेख मिलता है।

किसी सम्पत्ति के बंध स्वामी के कर्ज में न रहने से उस पर से उसके स्वामित्व की समाप्ति के सम्बंध में धर्मशास्त्रों में अनेक नियम हैं, जिनमें भूमि पर व्यक्तिगत अधिकारों का संकलन मिलता है। गौतम<sup>३</sup> और मनु<sup>४</sup> का विधान है कि यदि कोई सम्पत्ति १० वर्षों तक किसी धनज्ञान व्यक्ति के कर्ज में रही हो तो उसका स्वामी उस पर अपने बंध अधिकार से बर्चित हो जाता है। याज्ञवल्क्य ने इस अवधि को बढ़ा कर २० वर्ष कर दिया है<sup>५</sup> लेकिन इनमें से कोई भी स्मृतिकार इस सन्दर्भ में भूमि का उल्लेख नहीं करता।

१ धर्मशास्त्र १, ६५८।

२ यही, ७३१।

३ हि० ध० शा० ३, ३२० पा० शि० ४५६।

४ य० १४७-८ नागदस्मि ४ ७६८० में भी दण्ड शास्त्र के नियम का उल्लेख है और इसी प्रकार संन हि० ध० शा०, ३ ३२० में भी।

५ २ २८।

विष्णु<sup>१</sup> नारद<sup>२</sup> बृहस्पति<sup>३</sup> तथा कार्तवीर्यन<sup>४</sup> की स्मृतियाँ में हम हमें सम्भव में महत्तरूप परित्यक्त देवत हैं। इन्होंने इस अधि को बना कर तीन पीढ़ियों या लगभग साठ सात कर दिया है और इस नियम का जमीन पर स्पष्ट रूप से लागू कर दिया है। आग चन कर ११वीं सदी में 'मिताक्षरा' में यह अधि सौ साल हो गयी है<sup>५</sup> और १३वीं सदी की एक कृति 'स्मृतिचन्द्रिका' में इसे बढ़ा कर १०५<sup>६</sup> वर्ष कर दिया गया है। स्पष्ट है कि इन नियमों का कारण गुप्त-काल से भूमिस्वामियों की सुरक्षा बढ़ती गयी और पूर्व मध्य काल का अतः हानि हानि भूमि पर व्यक्ति के स्वामित्व के सिद्धांत की जड़ें पूरी तरह जम गयीं। इन नियमों से तो लगता है कि भले ही किसी व्यक्ति की या राजा की जमाने की कानूनकार या कानूनगाली पढोम की जोत में सौ साल तक रही हो, कि तु उसके मूल स्वामी को अपने अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता था।

अध्यायी कानूनकारों पर इस तरह के नियमों का बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा होगा। दीर्घतर अधि सम्भवतः इस उद्देश्य से निर्धारित की गयी थी कि राजनीतिक अयवस्था के समय में कानूनकार भूमि का स्वामित्व न प्राप्त कर पायें। इस नियम के बल पर धर्मतर और धार्मिक अनुदान भागी दोनों ही कानूनकारी या दखल में थोड़ा सा अंतराल पड़ते ही पुराने कानूनकारों को भी देखल कर सकते थे। याददाश्त के आधार पर थोड़े समय का दखल तो साबित किया जा सकता है, लेकिन कोई भी स्मृति के आधार पर यह साबित नहीं कर सकता कि अमुक क्षेत्र ५० या ६० साल से अमुक व्यक्ति के दखल में रहा है। जहाँ सौ साल की बात हो वहाँ तो यह साबित करना असम्भव ही हो जाना है। इस दृष्टि से इन नियमों से मौजूदा भूमिस्वामियों को लाभ था, किंतु कानूनकारों के स्वत्व के विकास में इन से बाधा पड़ची।

किसानों के पट्टे पर जमीन देने के जो नियम बने थे उनमें भी भूमि पर

१ ५ १८७।

२ १ २१।

३ ६, ७७ ३०। यहाँ बृहस्पति ने खास तौर से भूमि का नहीं बल्कि स्थावर सम्पत्ति का उल्लेख किया है।

४ श्लोक ३२७।

५ याज्ञवल्क्य २ २७ की टीका।

६ हि० घ० शा० ३, ३२१, पा० टि० ४५६।

व्यक्ति के अधिकार सिद्ध होते हैं। भूस्वामि या का सम्बन्ध मतिहर मजदूरों और बगामन्तों के साथ होता है। इसका नियम प्रारम्भ के समयान्ता में किया गया है। मतिहर मजदूरों को पीटा जा सकता था, और भूस्वामी बगामन्तों को बराबर बल्ल सकता था। प्रारम्भ में भूस्वामी तथा पन्थेन्तों के सम्बन्ध का नियमन करा जाता कोई विषय नहीं बताया गया। पन्थेन्तों के सम्बन्ध में एक स्थल पर इस तरह का उल्लेख मिलता है, पर वह भी स्पष्ट नहीं है और उसका दूसरा अर्थ भी है। तन्त्रु गुप्त-वामीन और परपत्नी स्मृतियाँ में स्वामी का धनक या कपक के साथ क्या सम्बन्ध है इसका सम्बन्ध में नियम बताया है। गद्या और सुतोत्तर-नाम के अधिकांश स्मातन्तारों में जोर दिया है कि पन्थेन्तों को पट्ट पर भी हुई जमीन मटीक से मती करनी चाहिए और उद्दान यह विषय किया है कि यदि वे मती की उद्गा करें तो भी उन्हें स्वामी को उसका निश्चय हिस्सा जम्बर देना चाहिए।<sup>१</sup> कई स्मृतियाँ में यह भी ध्यान दिया गया है कि मती की उपजा करने वाले कान्तकार राजा को जुर्माना दें।<sup>२</sup> मित्ता राय में व्यवस्था है कि मती की उपेक्षा करने वाले कान्तकार से जमीन छीन कर दूसर को दी जाय।<sup>३</sup> इस प्रकार भूस्वामी को पट्टदार बल्लन का अधिकार था। भूस्वामी का हिस्सा जिसे कृष्णत या सद कहा जाता था वितता हो यह बात जमीन की प्रकार भूस्वामी को पट्टदार बल्लन का अधिकार था। भूस्वामी का हिस्सा विन्म पर निर्भर करती थी। जो जमीन बहुत जिन से परती रती हो उस पर वह उपज के दसवें हिस्से का हकदार था जिम पर सेती होती रही हो, उसकी उपज का आठवाँ हिस्सा उसका था और जिस पर बहुत अच्छी तरह खेती होती रही हो उसकी उपज का छठा हिस्सा उसका होता था।<sup>४</sup> स्पष्ट इस नियम का सम्बन्ध ऐसे वास्तवकारों से था जो सेता में अपनी पूंजी अपने उपकरण बीज धर्म आदि लगाते थे। यदायन्तों के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। उहें तो मती के खच का एक हिस्सा भूस्वामी से ही मिलता था और इसके बदले भूस्वामी उपज का अधिकांश भाग स्वयं ले सकता था। किन्तु परती जमीन को पहल-पहल प्राबाद कराने में भूस्वामी को सारा खच

१ धर्मकोष, १, ८४२।  
 २ वही ६४३ ६५४ ६६१।  
 ३ वही ६५४ ६६१।  
 ४ वही ६४३।  
 ५ वही ६५४।

उठान को कहा गया है। यदि वह वंसा नहीं करता तो कास्तकार से आठ साल तक उस उपज का केवल आठवाँ हिस्सा मिलेगा, और इस अवधि के बाद वह जमीन भूस्वामी के पास लौट कर चली आयेगी।

ये तमाम नियम भूमि पर बढ़ते हुए व्यक्तिगत अधिकारों का पर्याप्त संकेत देते हैं। किन्तु बाँधक, बेदगली तथा वित्री सम्बन्धी नियम साधारण कानूनकार-भूस्वामियों के बजाय बड़े बड़े भूमिधरो के हक में जान पड़ते हैं। जो भी हो, सामन्तवादी राज्यव्यवस्था तथा अत्यन्त भूमि के असमान विभाजन पर आधारित था, और पूर्व मध्यकाल में व्यतिरिक्त भूस्वामित्व के सिद्धान्त के विकास से इसको अधिक बल मिला।

ईस्वी सन की प्रारम्भिक सदियाँ से लेकर बारहवीं शताब्दी तक भूमि-स्वत्व पर प्रकाश डालनेवाले धर्मशास्त्रों में जो सामग्री मिलती है उसमें सामुदायिक अधिकारों का हल्का सा आभास मात्र है। किन्तु राजकीय और वैयक्तिक अधिकारों को उभरते-उत्तरोत्तर अधिकधिक समयन दिया गया है यद्यपि ये दोनों प्रकार के अधिकार परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। मध्यकालीन भाष्यकार और आधुनिक इतिहासकार अभी तक इन दो तरह के विरोधी स्वत्वों में सगति नहीं बठा सके हैं, लेकिन पूर्वमध्यकाल में भूमि वितरण की प्रथा पर विचार करने से इस अन्तर्विरोध की व्याख्या हो सकती है। व्यक्तिगत भूस्वामित्व के सिद्धान्त के कारण अनुदानभोगी किसानों के हाथ पट्टे पर अपनी जमीन लगा सके, और राजकीय भूस्वामित्व के सिद्धान्त के कारण राजा लोग पुराहिता और मंदिरों सामन्तों और राज्याधिकारियों की सेवा के बदले अनुदान में भूमि दे सके। अथवा, हम एक ही खेत पर तरह-तरह के लोगों के अधिकारों का कारण क्या बतला सकते हैं? अभिलेखा से प्रकट होता है कि भूमि केवल धार्मिक अनुदानों के उद्देश्य से ही बेची जा सकती थी, और मध्यकाल में मुद्रा के प्रभाव के कारण कम से कम १००० ईस्वी तक बड़े पमाने पर जमीन की खरीद वित्री नहीं हो सकती थी। फिर, भूमि पर राजकीय स्वामित्व के सिद्धान्त के कारण मध्यकालीन नरेशों को किसानों पर तरह-तरह के कर लगाने का बधानिक आधार मिल गया। दोनों सिद्धान्तों ने सामुदायिक भूस्वत्वों को पगु बना दिया और ऐसी स्थिति पैदा कर दी जिसमें अनुदानभोगी तथा बड़े-बड़े भूमिपति विस्तृत गोचर भूमि तथा उसी प्रकार की अन्य सामुदायिक भूमि को आसानी से अपनी निजी सम्पत्ति बना सकते थे। फलतः साधारण किसान या तो कृषिदासों की अवस्था में पहुँच गये या नये भूमिपतियों के असहाय निरुपाय श्रावित बनकर रह गये। इस प्रकार ये दोनों



जो किन्ही परिस्थितियां म उससे जमीन वापस भी ले सकता है, फिर स्वामी का स्वामी, भ्रादि, और अन्त म वरिष्ठतम सामन्त—कितने सारे लोग हैं जो जमीन के एक ही टुकड़े के बारे मे कह सकते हैं और सभी समान औचित्य के साथ कह सकते हैं कि 'यह जमीन मेरो है ।' ' पूव मध्य कालीन भारत मे जमीन पर अधिकार रखनेवाले पक्ष भले ही उतन अधिक न रहे हा जितने कि यूरोप मे थे, लेकिन इसम सन्देह नहीं कि भूमि मे निहित उनके स्वार्थों को कानूनी भाव्यता प्राप्त थी और इस दृष्टि से ये भी स्थिति वसी ही थी जैसी कि सामन्तवादी यूरोप मे थी ।

लेकिन, मुसलमान काल के भारत म भूमि विषयक अधिकार निश्चय ही विचाराधीनकाल के भूमि विषयक अधिकारों से भिन्न थे । प्रथम तो भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व से भिन्न, ताज की जमीन (गालिश) का मिद्दात मुसलमाना से पहले के काल म यहा प्रचलित नहीं था । यह सच है कि परमार और चाहमान नरेशों द्वारा अपने अपने स्वभागो मे से दान की गयी भूमि को किसी हद तक ताज की जमीन माना जा सकता है और इसे उस भूमि से भिन्न कोटि म रखा जा सकता है जो राज्य के सामान्य नियन्त्रण मे या स्वतन्त्र शासकवारों की जोत म थी । किन्तु उनके समकालीन नरेशा तथा पाल, प्रतीहार एवं राष्ट्रकूट राजाभा द्वारा दिये गये अनुदाना म इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि राजा के पास कोई राज भूमि भी थी । इसके विपरीत उनस यही प्रकट हाता है कि राजा अपने राज्य के किसी भी हिस्से म अनुदान दे सकता था ।

दूसरे मुगल वारशाहो द्वारा दी गयी जागीर या मदद ए मन्नाश के साथ वैसे पुष्ट और विस्तृत अधिकार नहीं जुड़े रहत थे जैस कि हिन्दू राजाभा द्वारा दिये गय धार्मिक और कभी-कभी धर्मतर अनुदाना के साथ भी जुड़े रहते थे । मुगल जागीरदारों को हिन्दू शासन काल के अनुदानमागिया की तरह भूमि का स्वामित्व नहीं प्रदान किया जाता था उह केवल उसके उपयोग उपभोग का ही अधिकार मिलता था । कारण यह था कि मुगल काल म केन्द्रीय सत्ता मुसलमाना से पहले के काल की अपणा बहुत सबल और प्रभावकारी थी ।

और अन्त म मुद्रा पर आधारित आर्थिक जीवन तथा ग्रामीण क्षेत्रा मे व्यापार के विकास के कारण मुसलमान शासन-काल म भूमि पर किसाना या व्यक्तियों के अधिकार अधिक सबल हो गये । यद्यपि गुप्त-काल के तथा बाद के

विधि प्रथा में जमीन की खरीद बिना तथा उसे बंधक रखने की अनुमति दी गयी है किन्तु इस सबका सिलसिला ११वीं १२वीं शताब्दियों में मुद्रा की पुनः प्रतिष्ठा के साथ ही शुरू हो सका। बाद की पाँच सदियों में व्यक्तिगत अधि-कारों के प्रयोग के लिए परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल हो गयी, क्योंकि अब किसान लगान या राजस्व जितने में अदा नहीं करते थे, बल्कि मुह्यत नकद चुकाते थे।

कुल मिलाकर पूर्व मध्य काल की भूस्वामित्व प्रणाली की विशेषताएँ सबल और विकेंद्रीकृत सामन्तवादी व्यवस्था का आभास देती हैं। मुद्रा पर आधारित अर्थ-व्यवस्था की पुनः प्रतिष्ठा और केंद्रीय नियंत्रण के विकास के परिणाम-स्वरूप मुगल काल में यह व्यवस्था कमजोर पड़ गयी।

## परिच्छेद-५

# राजनीतिक सामन्तवाद का उत्कर्ष-काल

(लगभग १०००—१२०० ईस्वी)

दमवी शक्तियों के उत्तरार्ध में गुप्त प्रभुत्व पर साम्राज्य के पतन के बाद उत्तरी भारत की राजनीतिक एकता छिन छिन हो गयी। मौखिक साम्राज्य के टूटने के बाद और फिर गुप्त साम्राज्य के अस्तित्व के बाद भी यह क्षेत्र अनेक छोटे छोटे राज्यों में बंट गया था लेकिन तब स्थिति उतनी बुरा नहीं हुई थी जितनी अग्रे हो चली थी। तुर्कों के आक्रमण से पूरे राजनीतिक सत्ता का विभाजन अतीत चरम सीमा पर पहुँच चुका था। १०७५ के आसपास जब कवच विद्रोह हुआ उस समय पूरा बंगाल और बिहार बाद दस छोटे छोटे राज्यों में बंट चुका था। ये राज्य अपने-पाल प्रभु की अधीनता नाम मात्र का ही स्वीकार करते थे। पाला का स्थान सत्ता न लिया, किन्तु उनका सत्ता का मिथिला के कणाटा और गण्डक दक्षिण-पूर्व बंगाल में ईश्वरघोष के कक्षत्रा न चुनीती थी। उसके प्रतिरिक्त कई और सामन्त राजवंश भी सत्ता को परेगान करते रहे। बिहार में दानव राजवंश का उदय हुआ—पठौ के सन ग्रीक जयनगर (दक्षिण मुंगेर) के गुप्त। इनके सिवा जपला में खपरवाला का राजवंश अस्तित्व करता था जो गार्डवाला के सामन्त थे।

गाहटवाला का राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश में बहुत बड़े हिस्से पर था किन्तु गोरखपुर के कलचुरि उनका प्रबल प्रतिद्वन्दी थे। मध्य भारत का पूर्वी हिस्सा भी प्रमुख राजवंशों के अधीन था। इनमें एक था डाहल का कलचुरि राजवंश जिसकी राजधानी त्रिपुरी में थी और दूसरा था नजासभुषि का चन्द राजवंश। आगे चल कर कलचुरिलाय भी तीन गणराज्यों में विभक्त हो गया। पश्चिमी गणराज्य की राजधानी त्रिपुरी थी, पूर्वी की रत्नपुर, और उत्तरी की गोरखपुर।



राजस्थान गुजरात और मालवा की अवस्था तो और भी बुरी थी। चाहमान पांच गावामो म बँटे हुए थे और भ्रूच जावालपुर (१२वीं शताब्दी के मध्य में स्थापित) शाहमरि नडडुल और रणयमनोर में अलग अलग राज्य करते थे। भ्रूच तथा रणयमनोर के चाहमान १२वीं सदी के पारम्भ में प्रसिद्ध हुए किन्तु इनका अस्तित्व पत्र में ही था। १ वां गता नी व उत्तराय में गुहिना ने जावालपुर के चाहमाना को अपने यहाँ में लाकर फरा गोर व लगभग बतत्र हो गए। फिर १२०७ से लेकर १२२७ के बीच किसी समय उन्होंने अपने को पूर्ण रूप से स्वतंत्र घोषित कर लिया और परिणामतः मवाड और आघाट कुछ समय के लिए चालुक्या के प्रभुत्व में चला गया।<sup>१</sup> मवाड के आसपास का इलाका उनके अधीन था जैसिन १३वीं शताब्दी के प्रथम दशक में यह क्षेत्र भी स्वतंत्र हो गया। इसी प्रकार सिन्धी और अजमेर ताम्गा के अधीन था और राजस्थान के कुछ हिस्सों पर कच्छप्यान्त राजवंश का भी प्रभुत्व था।

मालवा और उसके आसपास के इलाका पर शासन करने वाले परमार चार गावामो में विभक्त हो गए। एक का केन्द्र मालवा था दूसरे का भाव तीसर का भिनमल और चौथे का किराड। ये सभी शासक बारहवीं शताब्दी में शासन करती थीं। आबू भाम चौतुम्य के समय में स्वतंत्र हो गया। किन्तु उसने १०६२ में आबू के परमारों को पराजित करके उन पर फिर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। अस्त्रवाद से १२वीं शताब्दी तक आबू चौतुम्य राज्य का हिस्सा बना रहा यद्यपि परमार सामन्त के रूप में तब भी यहाँ शासन करते रहे।<sup>२</sup> सिन्धी भिनमल भीम के समय में स्वतंत्र हो गया।<sup>३</sup> किराड का प्रसिद्ध प्रविष्टा दिवाने का अन्त परमार राज सामन्त के रूप में था। उमन कुमार पाण की कृपा से अपने राज्य को सभ्य तरह से संशुद्ध और सुविकसित बना लिया। ११५६ के आसपास उमन जजक नामक एक सरदार का हारा कर उमक १७०० घोर छीन लिया और अन्त में अपने प्रभु कुमारपाल की सहायता की।<sup>४</sup> चौतुम्य शासन के कारण गुजरात जा अन्त में उत्तर और दक्षिण दो भागों में विभक्त था अन्त एक हो गया। किन्तु बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण

१ ग० व० मजूमदार चरुचान प्राक गुजरात, पृष्ठ १५६।

२ वहा पृष्ठ ८६५०।

३ वहा।

४ वहा १११।

मे उनके सामन्त बघला न गुजरात में अपना स्वतंत्र शासन स्थापित कर लिया ।

पजाब और हिमाचलीय राज्या के विषय में हम पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं है । पजाब और ओहि न पर शासन करने वाले शाही राजवंश को १००१ में महमूद गजनवी ने समाप्त कर लिया । हिमाचलीय राज्य क्षम्बा वही के एक स्वतंत्र राजवंश के अधीन में ।

इस प्रकार करोलिंग साम्राज्य के पतन के बाद जो स्थिति पश्चिमी यूरोप की हो गयी थी, गुजर प्रतीहार साम्राज्य के पतन के बाद पश्चिमी और उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति भी कुछ वसी ही हो गयी । अतः सिर्फ इतना था कि भारत में स्वतंत्र शासक वंशों की संख्या अधिक थी । इसका पता इससे चलता है कि वे अपनी मर्जी से सिक्कें जारी करने में और भूमि अनुदान करते थे ।

य तमाम छोटे छोटे राज्य बराबर आपस में जूझते रहे और १००० से १३०० तक प्रभुसत्ता के लिए घोर संघर्ष चलता रहा । पाला न केवल कवर्तों से ही लड़ाई नहीं की बल्कि विहार के पश्चिमी हिस्से पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए कलचुरिया और गाहड़वाला से भी लोहा लिया । उधर कलचुरि उड़ीसा के राजाओं ने चंदना और गाहड़वाला से जूझते रहे । गाहड़वाल लोग चंदना और चाहमानों के साथ जोरआजमाई करते रहे और चाहमान राजा पथ्वीराज ने चंदना के एक प्रमुख के द्रुमहीना पर कब्जा कर लिया । इसी प्रकार परमारों ने चंदना परमर्दाने का गहरी गिरफ्तारी दी । वास्तव में बारहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए चंदना गाहड़वाला और चाहमानों का तितरफा संघर्ष खूब जम कर चला । उधर मालवा गुजरात और राजस्थान में परमार चौलुक्य और चाहमान भी आपस में बराबर लड़ते ही रहे । परमारों ने यदा-कदा हूणों से भी लड़ाई ली जिन्होंने मालवा और राजस्थान के कुछ क्षेत्र थे । मानो इतना काफी नहीं था कि दक्षिण से चाल और विजयनगर चालुक्य लोग भी कभी कभी उत्तर भारत पर चढ़ आते थे । उधर बंगाल के सेन और तिरहुत के कर्णट जिन्होंने चालुक्यों के साथ आकर उत्तर बिहार में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था आपस में जूझते रहे । पश्चिम में पजाब के ब्राह्मण शाही वंश और गुजरात के चौलुक्यों ने महमूद गजनवी से डट कर लड़ाई ली और चौलुक्यों चाहमानों तथा गाहड़वालों ने मुहम्मद गौरी का मुकाबला किया ।

इन छोटे छोटे राज्यों के बीच बराबर जो छीना-छपटी और लड़ाइयाँ

चलती रहनी था उनके प्रशासनिक एवं धार्मिक परिणामों का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। मुलिस यावपानिका और राजस्य विभाग क बिना कोई राय नही चल सकना था और फिर प्रयत्न राज्य क प्रपन चलग सामन्त, पुरोहित तथा मन्त्रि भी होन हाग। स्पष्ट है कि किसानों पर इस मयस बहुत अधिक दबाव पडा हागा और इसी व्यवस्था को कायम रखने म उत्तरी कोई रचि नही रही होगी।

इन छोटे छोटे राज्यों का उन्मय कत हुआ ? स्पष्ट ही ज्ञानम से कुछ तो राजकुमारों क बीच पतन सम्पत्ति क बँटने क कारण पदा हुए सकिन सेग राज्य नाम ता और राज्याधिकारियों को अनुदान-स्वरूप छोटे बड़े क्षत्र दन के कारण कायम हुए। अनुदान क्षत्र क स्वामी धीरे धीरे अपना दबन्धा बग लेते थे और ज्ञान म स्वतन्त्र राजा बन बैठते थे। गुप्त काल और गुप्तोत्तर-यान के अभिलेखा म इस प्रकार का कोई विगप प्रमाण नही मिलता है। पर तु ७१० से १००० के बीच ऐसे कुछ उदाहरण अवश्य मिलते हैं और १००० से लेकर १२०० के बीच तो काफी मिलते हैं। एत अनुदानों क पुरालक्षीय प्रमाण नवी क्षत्राणी से मिलने शुरू हो जाते हैं। और ११वीं सदी क प्रारम्भ म तो इनकी सन्ध्या अच्छी खासी हो जाती है। सामन्तों और राज्याधिकारियों का दिया गए अनुदानों के दस्तावेज प्रारम्भ म आजपत्र या कपड पर तयार किये जाते थे जो सम्भवतः नष्ट हो गये। १२वीं और १३वीं सदियों म गुजरात म सामन्तों का विभिन्न प्रकार के अनुदान दन क लिए भोजपत्र का प्रयोग किया जाता था<sup>१</sup> और सम्भवतः पहले भी इसका उपयोग किया जाता हो। गुप्त काल के धनगाहना म अनुदानों क दस्तावेज आजपत्रा व्यवस्था कपड पर तयार करने की व्यवस्था है।<sup>२</sup> चूँकि राज्याधिकारियों और सामन्तों का नियम गण अनुदान पुण्य अर्जित करने या सदा के लिए नहीं दिये जाते थे इसलिए उनके दस्तावेज कपड पर तयार किये जाते थे कि तु १०वीं सदा क समाप्त होते होते राज्याधिकारियों और सामन्तों की शक्ति पतनी दग गयी और सुरक्षा का इतना प्रमान हा गया कि अब व अनुदान क्षत्र पर अपना अधिकार स्थायी बनाने के लिए किसी टिकाऊ चीज पर अनुदान लिखवाना अधिक पसंद करने लगे।

ज्ञान की मवा क य ल रिय गये अधिकार अनुदान उत्तीसा से मिलते हैं। य जगना उन बाधे दजन सामन्तों का भी मिलते हैं जिनका उदय गुजर

<sup>१</sup> ल० प० पृष्ठ ७।

<sup>२</sup> इतिहास पृष्ठ २५७ म उद्धृते था ० १, ३१८ २० आर हस्पति।

प्रतीहार साम्राज्य के घबराव पर पर हुआ। ध्यान देने की बात है कि प्रतीहार और बंगाल में पाल राजाओं के अन्तिम राजाओं में भी इस एक अनुमान बहुत कम मिलते हैं। तृतीय विद्रोहवाले के समय के त (१०११-०) में एक उच्चाधिकारी को भूमि अनुदान के त्व का पत्र। प्रमाण मिलता है। चन्द्रगुप्त नामक एक आदेश राज्याधिकारी के त्रि राजा का सहाय (विधय) रहा गया है विद्रोहवाले की अनुमति में अपने निजा भू-सम्पत्ति (हवन) में। कुछ भूमि अनुदान में भी। सम्भव है कि यह भू-सम्पत्ति भी राजा राजा के त्व के अन्तर्गत मिलता था। पालों के राज्य में एक और अतिरिक्त का भाग एका अधिपति राजा का - कता है। यह है कामरूप के चन्द्रगुप्त द्वारा शासन पर किया गया अनुदान। चन्द्रगुप्त के परिवार वाला त्रि विद्रोहवाले रामपाल और कुमारपाल एक के बाद एक इन तीन राजाओं का त्व मन्त्रियों के रूप में १०१५ में लेकर ११२१ तक की थी। चन्द्रगुप्त का कुमारपाल का मन्त्रियों का पाल साम्राज्य के अन्तिम राजा में लगभग स्वतंत्र था गया और उसने प्रायः पालिपुत्र में अपने प्रभु की अधिचारिक शक्ति के त्रि राजा की शक्ति अनुदान में लिया। पहले इन राजाओं का भोक्ता गंगाधर भद्र था जिसने स्पष्टतः कहा या तो पाल राजा या उसका कामरूप निवासी मन्त्रियों से प्राप्त किया हागा। जाति है कि पाल राजाओं में एक के बाद एक अनुदान मिलने के फलस्वरूप इस मन्त्रि परिवार ने अपनी भू-सम्पत्ति खूब बढ़ा ली थी और अन्त में यह पाला के निराकरण के निवृत्त गया था। पर साधारणतया कर्णों को त्रि गणकुण्ड मणि अनुदानों का छान कर पाला के अधिपति राज्याधिकारियों और सामन्तों को त्रि भू-अनुदानों का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। सम्भवतः पाला के साम्राज्य में कामरूप की अधिपति श्रेणियाँ नहीं थी और के द्वीय मत्ता काफी सुन्दर और सुस्थित थी क्योंकि एक त्रि राजवत् लगातार चार भी वर्षों तक राज्य करता रहा। इसका अलावा पाल साम्राज्य के राज्याधिकारियों की मर्यादों की मध्यकालीन राज्य के अधिपति मन्त्रियों में अधिक थी। परिणामतः कुछ थोड़े मन्त्रियों की इतनी शक्ति नहीं हा पायी कि वे अनुदानों का शासन पर नियंत्रण का आग्रह कर सकत।

दक्षिण पूर्व बंगाल में जहाँ पाला के सामन्त वमन लोग राज कर रहे,

१ ए० ई०, ७६ न० ८ पवित्रया ४६ ५१।  
 २ ए० ई०, न० २८ पत्र २ की पवित्र १५।  
 ३ यही।

स्वयं इससे भिन्न जान पड़ती है। अपने एक अभिलेख में भवदेव जिसका पितामह बगल किसी राजा का मंत्री था और जो स्वयं हरिवर्धन देव का मंत्री था (लगभग १२०० ईस्वी में), यह दावा करता है कि उसने सनिक पराक्रम से अपनी भूमि और बौद्धिक पराक्रम से अपनी विद्या की वृद्धि की।<sup>१</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि उसने स्वामी ने सनिक सफलताप्राप्ति के लिए उसे अनुदान स्वरूप भूमि दी थी। उसका पूवज को भी गौड के राजा ने पुरस्कारस्वरूप जमीन दी थी।<sup>२</sup> सन राजवर्ग के किसी राजा द्वारा किसी को राज्य की सेवा करने के लक्ष्य में दिया गया अनुदान का कोई प्रमाण हम उपलब्ध नहीं है। हम निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कह सकते कि सन राजाओं के कोई प्रत्यक्ष सामन्त भी थे। किन्तु विवरण सन के एक अनुदानपत्र से जो गायकतेरहवीं सदी के प्रारम्भ का है ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इससे पता होता है कि पुण्ड्रवधनभूति में हलामुध नामक एक ब्राह्मण ने कि दो व्यक्तियों से कुछ जमीन खरीनी।<sup>३</sup> तब कुमार गूयसन ने अपने जन्म निवास पर उस वह जमीन दान में दे दी।<sup>४</sup> यह धर्मोत्तर प्रयोजना में जमीन की खरीद बिना का उदाहरण है। सम्भवतः यह जमीन कुमार गूयसन की जागीर में पत्नी थी और जिना उसकी मर्जी के तहत खरीनी जा सकता था और अनुदान में देना जा सकता था। एक दूसरी धारा के द्वारा कुमार पुरदातमसन ने दो अन्य भूतण्ड जिसे हलामुध ने खरीना था और जिमरा भोक्ता स्वयं कुमार था, प्रायः खरीद कर विवरणपत्र के गायकतेरहवीं सदी के १४वें वर्ष में फिर उसी ब्राह्मण हलामुध को दे दिया।<sup>५</sup> स्पष्ट है कि सन राजा सन कुमार का राजा ने जिना जागीर के रूप में कुछ भूमि दे रखी थी और उस जमात पर उनका अधिकार था। तब से वर्तमान तक। पृथक् मपाना देना भी कि उनका रम्य उनही अनुमति के बिना जमीन की खरीद बिना नहीं कर सकते थे और दूसरी बात कि रम्यता द्वारा न्यून गय धार्मिक अनुदान सभी बंधन थे जो राजा, जो राज परिवार का प्रधान था,

१ पृ. १ नं. ६ पृ. २।

२ पृ. ३, पृ. १६।

३ पृ. ३ पृ. १।

४ पृ. ३ पृ. ६७।

५ पृ. ५० नं. १५ पृ. ५२।

६ पृ. ३।

७ पृ. ५ पृ. १६०।

एक आम सनद में उनकी घोषणा करता था। महासाधिविग्रहिक नाणोविह भी गायद जागीर के रूप में भिन्न अपन क्षेत्र में ऐसे ही अधिचारों का उपभोग करता था। क्याकि हम देखते हैं कि उसने भी उसी हलायुध को जमीन के दो टुकड़े जिनमें से एक वेना के लिए और दूसरा आवास के लिए था और जिन्हें हलायुध ने भी व्यक्तिया में खरीदा था, दात कर लिया।<sup>१</sup> इस प्रकार इस अनुदान-पत्र में प्रकट होता है कि सन राजा परिवार के सदस्यों और राज्याधिकारियों का भूमि अनुदान लिया करते थे। ग्रामों में मध्यकालीन अनुदान-पत्रों में विभिन्न प्रकार के सामना का उल्लेख हुआ है पर राज्याधिकारियों का सभ्या नगण्य प्रमाण होता है और इनमें से किसी को भी भूमि अनुदान देने का पुरा तालीय प्रमाण नहीं मिलता है।

मध्यकाल में उत्तमा अपनी मौगोविर स्थिति के कारण अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। ये अनुदान प्रथा के कारण और भी कमजोर बन गये। अनेक राजाओं में राज्य का सवा के अर्ध में जितने भूमि अनुदान दिये गये उतने जितने वगाए और असम तीना का मिला र भी नही दिये गये। यहाँ मतिवत् जगतिविया राणरा (उच्चतर श्रेणी के सामंत) और नामन्तो (निम्न श्रेणी करनेवाले सामंत) सन्तो को शुभ अवसर पर साम अनुदान दिया जाता था—स्पष्टतः उनकी सवाओं के अर्ध में सामवणी राजा द्वितीय महाभंगुप्त (१००१५) ने आदमती मण्डल से आकर अपनी राज्य में बसने वाले मद्र ब्राह्मण के शीघ्र राणक र छो का एक गाँव अनुदान में दिया।<sup>२</sup> इस राजा के सामना के बीच राणको का स्थान बल ऊँचा था। क्योंकि अनुदान-पत्र में उनका नाम रानी के साथ रखा गया है (गनीराणक राजवल्लभ मित)।<sup>३</sup> अनुदान पत्र में श्रेणी का व माग अधिकार दिया गया है जो मध्यकाल में अनुदानों में आमगौर पर ब्राह्मणों का दिया जाता था। यद्यपि अनुदान मृगप्रदण के अवसर पर धर्म के नाम पर दिया गया था किन्तु श्रेणी के नाम के साथ राणक उपाधि जुड़ी होना ग सकेत मिलता है कि यह पुस्कार उग प्रतामनिक एक भक्ति-सेवाओं के बदल दिया गया था। इस अनुदान पत्र से यह भी पता चलता है कि राणक की उपाधि जहाँ प्रारम्भ में बने राज-परिवार के सदस्यों का मिलनी थी वहाँ ब्राह्मण सामना को भी मिलने लगी।

१ २० व ३ न० १८ पत्तियाँ ५४ ५६।

२ ए० ६०, न० ४७ प्लेट 'एफ', पत्तियाँ २८ ४२।

३ वही पत्तियाँ ३३ ८।

गिजनि (भूतपूर्व गौड़ राज्य में स्थित) का भूज राजा यशभजत्व का एक  
 तादृशपत्र में एसा उल्लेख है कि उसने जगधर नामक एक ज्वातिपी का  
 उन समस्त अधिकारों के साथ एक गांव दान में दिया<sup>१</sup> ता अनुदान में सामान्य  
 तथा लिये जाते थे और उससे छोटे भाई यशभज ने भी उस एक गांव दिया।<sup>२</sup>  
 ये दोनों अनुदान बागहवी गता-नी में स्थित थे। गहड़वालियों और सना का  
 अनुदानपत्रों में सामान्य और रायाधिरारिया की पक्ति में ज्वातिपिया का  
 स्थान बहुत ऊँचा जान पड़ता है। गिजनि का भूजा का राज्य में भी गायद  
 उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था और उनका जो धार्मिक अनुदान लिये जाते थे व  
 उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था और उनका जो धार्मिक अनुदान लिये जाते थे व  
 वास्तव में जरी बनाने और मन्त्रपूर्ण सरकारों का प्रारम्भ करने के लिए  
 गुप्त मुक्त बनाने के बल दिए जाते थे। सिद्धि का भूजा का राज्य में एक दो  
 मज राजाओं ने महासामन्त बट्ट नामक एक सैनिक सामंत को अनुदान में  
 गांव दिए। इनमें से पहला राजा रणभा ने उसे राज्य के सेवक के रूप में  
 (विधेयी देवा) उगव आचरण के पुरस्कारस्वरूप उसे चारों सीमाओं महित  
 चार गांव दान किये। इन गाँवों में पाटा और भटा का प्रथम वर्जित कर दिया  
 गया और इनमें पायी जानेवाली समस्त सैनिक सभ्यता बट्ट को सौंप दी गयी।  
 इस अनुदानपत्र में उस महासामंत मुडिमुत कहा गया है जिसका पना चलता  
 है कि उसका पिता भी महासामंत था। दूसरे अनुदानपत्र में उस स्पष्ट ग  
 में सामंत मुडि का पुत्र महासामन्त बट्ट कहा गया है।<sup>३</sup> वहाँ भी राज्य की  
 सन्तापप्रसू सवा करने के बल ही उसे गामीर दी गयी जा मुत्तत ग्राहणा स  
 प्रावाद (ब्राह्मणवसति) थी।<sup>४</sup> अनुदान गांव से राजा काद कर नफा न मकता  
 था और न उस पर कोई प्रशासनिक प्रतिकूल लगा सजता था।<sup>५</sup> सामंतों और  
 महासामन्तों को लिये गए अनुदानों के कोई और अमिलगीय प्रमाण हम उपलब्ध  
 नहीं हैं किन्तु इस प्रथा के कारण उड़ीसा में भूमिधर वगैरे का रूप में सामंतों  
 का राज्य प्रचलित हुआ।

बहुरंग गंगा का राज्य में जिसमें उडिया भाषा और तलुगु भाषी दाना

- १ ए० ए० १८ न० २६ पक्तियाँ १६ २६।
- २ वही १६, ४३ और पा० टि० १।
- ३ ए० ए० सो० य० १० न० ३ पृष्ठ १६६।
- ४ वही पृष्ठ १६८।
- ५ वही।
- ६ परम्परा के सत्यवादी विचित्रताएँ। वही पृष्ठ १६८।

क्षेत्र गामिन थे, अधिकांशियों को दिये गये अनुदानों के कई पुराने शीघ्र उदाहरण हैं। गण गण बज्रहस्त (१०३८-७०) के अधीन शारपराज नामक एक पक्ष विरवाधिर (पौर विना के गामिन) ने अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर वर का जा राजपुत्र का पौत्र पर पुत्र गौर अनुदान में दिया।<sup>१</sup> सम्भवतः शारपराज तो गण गणपति ने ही बना जन्म हुआ था। राज परिवार से शारपराज का कोई सम्बन्ध नहीं था। क्योंकि वह चाल-वामादिराज का पुत्र था<sup>२</sup> पर तब भी उसने प्रिया विधो से पूछे अनुदान लिया। प्रत्येक अनुदान का प्रमाण हम अनेक अनेक 'रोडगम के गामिन काल (१०७१-११२८) में मिलता है। जिनमें अनेक और अपने माता पिता के धर्म और धर्मिता की अभिवृद्धि के लिए अपने विरह्य अभिकता (आप्तप्रियाय) 'रोडगम को कर्त्तव्य में एक पुरखे के साथ साथ एक गाँव अनुदान में दिया।<sup>३</sup> वैसे तो इस अनुदानपत्र में भी उन्हीं के गाँवों का प्रयोग हुआ है जो सामान्यतः धार्मिक अनुदानपत्रों में प्रयुक्त होती थीं किन्तु इसका मतलब यह नहीं लगाना चाहिए कि चारुगम को दिया गया अनुदान धार्मिक अनुदान था। यह उस राजा की सवादा के चर्च में मिला था।

गण राजाओं ने विनये कर नायक कह जानवाने सनिक अधिकांशियों को राजसवा के चर्च में अनुदान दिया। तमोय बज्रहस्त के शासन काल में गणपति नायक नामक एक व्यक्ति को आठ प्रदण में एक गाँव अनुदान में दिया गया।<sup>४</sup> प्रहीना के गौर और प्रवर का उल्लेख नहीं है और आठ हम जिस अनुदान की चर्चा कर रहे हैं उसमें और इस अनुदान में जो सादृश्य है इससे प्रतीत होता है कि गणपति नायक कोई गण्य माय के यथा। दूसरा अनुदान पत्र अनेक अनेक के पुत्र मधुकामाण्य के अर्थात् गण सवत के ४२५<sup>५</sup> वर्ष में जारी किया गया था।<sup>६</sup> इसके अनुसार तीन गाँवों का एक वक्ष्य अग्रहार उत्पन्न वक्ष्य जातीय मंत्रि नायक के पुत्र परप नायक का अनुदानस्वरूप दत्तिया गया।<sup>७</sup>

१ ए० इ० २६, न० ७ पत्तियाँ २६-३३।

२ वही २, न० ३१ पत्तियाँ ८-११।

३ वही।

४ वही पृष्ठ १७४ पत्तियाँ ३०-३४।

५ मद्रास रिपोर्ट ऑन एरिस्ट्री, १६१८-१६ परिशिष्ट 'ए', न० ३।

६ वही, न० १।

७ वही।



मद्रास एपिग्रॉफिया रिपोर्ट में अनुदानपत्रों का यह मूल्य उल्लेख हुआ है, उसमें इनके बारे में इससे ज्यादा बार्ड जानकारी नहीं मिलती, तबिन स्पष्ट है कि यहाँ अग्रहार गण का प्रयोग किसी पहलू पर न बर भाव में कर मुक्त गाँव के लिए किया गया है। इसमें पहलू में अनुदानपत्रों में गण गण का प्रयोग साधारणतया कोई मूल्य सत्यापन के लिए किया गया अनुदान के लिए किया जाता था किन्तु किसी नायब का (मजिस्ट्रेट का) गण प्रयाजन से अनुदान क्या दिया जाता? सम्भावना यह है कि नायब का गण अनुदान राय के सेवक एक निश्चित सत्यापन करना गण के लिए किया गया। अनन्तमन चौडगग के एक अभिलेख में भी एक नायब को अनुदान गण का कुछ प्रमाण मिलता है। उसमें अग्रहण पालावजीवी मायब का एक कर मुक्त गाँव सत्यापन के लिए अनुदान में दे दिया।<sup>१</sup> केवल पालावजीवी विपणन से प्रहाता व सरकारों ओहरे का कोई सबूत नहीं मिलता। तबिन उक्त पितामह वामुन्व का नायब की उपार्थी दी गयी है जिससे प्रतीत होता है कि उसका परिवार गणा की किसी न किसी प्रकार को सन्निव सवा करता था। अग्रहण मायब या ता गणा का सामन्त था या कोई राधाधरारी कर्षाणि पात्र भूमि अनुदानपत्रों में इस गण का प्रयोग दोनों के लिए हुआ है।

१३वीं सदी तक गण प्रशासन पूरी तरह से सामन्तवादी ढाँचे में ढल गया क्योंकि १२९५ में कोणाक मन्दिर निर्माता द्वितीय नरसिंहदेव ने अपने मन्त्री कुमार महापात्र भीमदेव गर्मा को मृग ग्रहण के अग्रहण पर दो गाँव अनुदान में दिए।<sup>२</sup> इसी अनुदान के अग्रहण में मन्त्री का अग्रहण अग्रहण गाँवों में एक श्रेष्ठ एक ताम्बूली (तमोली) एक ताम्बूली और एक काम्यकार भी दिया गया।<sup>३</sup> इन गाँवों के अलावा अनुदान अग्रहण में गिल्पी और वारोणर की सेनाएँ सुलभ हो गयीं। सम्भव है कि उसने इन लोगों के भरण-पोषण के लिए भी थोड़ी थोड़ी जमीन दे दी हो क्योंकि उसी अनुदानपत्र में द्वितीय नरसिंहदेव ने नाडि नामक एक ताम्बूली को आधी आठिका जमीन दी है। ऊपर जो उल्लेख किया गया है उनकी सत्यापन कुछ ज्यादा तो नहीं है किन्तु जब तक कोई प्रतिकूल

१ इ० ए० १८, १७१ ७२ पवित्रिया १०९ १३।

२ वही पवित्रिया १०९।

३ ज० ए० सा० व० ६५ भाग १ पृष्ठ २५४ ६ पवित्रिया १२१।

४ वही पवित्रिया १९ २१।

५ वही पवित्रिया १८ १९।

निष्पन्न देनेवाला प्रमाण सामन नहीं आता तब तब एमा मानना सवथा उचित होगा कि उड़ीसा के य मध्य कालीन राजवण— भज, मोमवणी और बहत्तर गग—अपन सामन्ता और राज्याधिकारिया का वेतन और पुरस्कार के रूप म भूमि अनुदान ही दिया करत थे ।

बुदलखण्ड के चन्दल राज्य म अधिकारिया को दिय भूमि अनुदानो के अधिक उदाहरण मिलत हैं । मउसे पहले चन्देन अनुदान हम धग के शासन काल (८०२ १००२) मे मिलता है । इसके अनुमार राजा न ब्राह्मण भद्र यगोधर को उन सार अधिकारा न साथ एग गाँव दान म दिया जा अनुदानो म सामान्यतया दिय जाते थ ।<sup>१</sup> एक दूसरे अभिनम स गत हाना है कि श्रीता महापुरोहित और ययाधोग के पद पर आसन या निससे अनुमान लगाया जा सकता है कि दान का सम्बन्ध यगोधर की राज सेवा स था । च दला के प्रशासन म कायस्थ नामक अधिकारिया का अनक अनुदान मिले । कीर्तिवमन (१०७३ ११०) के एक अभिलेख मे वास्त य कायस्थ राज्याधिकारी जाजूक को दरगण नामक एक समूह गाँव राजकीय अनुदानके रूप म देने का उल्लेख है ।<sup>२</sup> और भोजवमन के अजयगड गिनामिलख स गत होता है कि गग के उत्तराधिकारी ने जाजूक को सरकार क सभी विभागा की दायभान के तिए ठक्कुर के पद पर नियुक्त किया ।<sup>३</sup> जाजूक के उत्तराधिकारी महद्वर न पीताद्रिम (स्पष्टन किसी युद्ध म) राजा कीर्तिवमन के सकट म पड जान पर उमकी जो बहुमूल्य सेवा की थी उसके महत्त्व को स्वीकारते हुए राजा न पुरस्कार-स्वल्प उसे एक गाँव अनुदान म दिया और माय ही काल पर के तौवारिक के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया ।<sup>४</sup> उपर भोजवमन के जिस अभिलेख का हवाला दिया गया है उसम इन दोनो अनुदाना का उल्लेख है । उमम ब्रलोचय-वमन के शासन काल म दिय एक तीसर अनुदान का भी उल्लेख है ।<sup>५</sup> उसने इसी कायस्थ परिवार के एक सदस्य वामेक को जयपुर (वर्तमान अजयगण)

१ इ० ए० १६ २०४ पविनया ६ ११ ।

२ वही ३० न० १७ श्लोक ६ ।

३ ठक्कुर धर्मायुक्त सन्वाधिकरणसु सग नियुक्त । वही १ न० ३८ २, श्लोक ६ ।

४ ग० इ० ३० न० १७ श्लोक ८ ।

५ इस अनुदान से सम्बन्धित कोई भी ताग्रपट अब तक प्रकाश म नहीं आया है ।

दुग के विधिपत्र पर नियुक्त किया और साथ ही अनुदानस्वरूप एक गाँव भी दिया।<sup>१</sup> स्पष्ट ही यह गाँव उस उसकी सनिक सवाभो के प्रतिदान स्वरूप दिया गया था क्योंकि उसने भोजक नामर एक विद्रोही को पराजित करके उसका राज्य के कुछ हिस्स को जीता था च तैल राज्य में शांति स्थापित की थी और उस विद्रोही का शत्रुपणा के भय से मुक्त किया था।<sup>२</sup> इस परिवार के सम्बन्ध च तैल राजा मन्त्र से लेकर माजवमन के शासन काल तक शर्यात २८० वर्षों तक विभिन्न मह वपूण मन्त्रारी पदा का उपभाग करते रहे।<sup>३</sup> लेकिन वे सामन्तों पर राज्य सन्निधि धरिणी ही पदा परा ध क्यारि इस परिवार का नियम तीन अनुदानों में दो सनिक सवाभो के लिए दिये गए।

च तैल द्वारा ब्राह्मणों तथा अथ लागों का दिये गए कतिपय अनुदानों में सनिक पदा उक्त प्रधान थे। ११८० में परमन्त्रिन न सनापति कल्हण के पुत्र ब्राह्मण मन्त्र पति कायप न का मन्त्र पत्र भूमि अनुदान में दी।<sup>४</sup> फिर उसने एक पत्र जमीन उसका गडन पत्र नाम राजका और एक पद भूमि महाराज और बलराज नामर उसका पत्र उक्त जा गडन नहीं बन पाय थे अनुदान में दी। सनापति और उसका गडन पत्र का दी गयी जमीन उनके मरण पीछे के लिए पत्र पत्र न थी। तन्त्रिन एक अथ अनुदानपत्र से पात हाता है कि ११७१ में उसने सनापति मन्त्रपाल गर्मा का एक पूरा गाँव अनुदान में दे दिया।<sup>५</sup> मन्त्र पत्र गर्मा के पिता पितामह तथा परिजितामह ठरकुर की उपाधि से विभूषित थे और यह सम्पत्तीय है कि यह उपाधि मध्य काल में उत्तर भारत के ब्राह्मण क्षत्रिय और कायस्थ मन्त्रा राज्यादि राज्या के लिए प्रयुक्त होती थी। इस सनापति को यह गाँव—इसा कि हम माना यत सभी च तैल अनुदानपत्रों में समान है—सम्पन्न विगत यतमान और गाँवों का से मुक्त करके दिया गया था।<sup>६</sup> लेकिन ब्राह्मण मन्त्रि अधिकारियों का दिये उपयुक्त तीन अनुदान

- १ १००० ० न० १० नवम्बर १५१०।
- २ वा नवम्बर ६२०।
- ३ यज्ञ।
- ४ यज्ञ नवम्बर १६२०।
- ५ १००० ६ न० २० फरवरी १८।
- ६ वही फरवरी १५१०।
- ७ १००० ४ २०१ और उक्त धारा फरवरी १६१८।
- ८ यज्ञ नवम्बर १११।

सनिक सेवाओं के लिए नहा, बल्कि पुण्य अर्जित करने के उद्देश्य से दिये गये थे। किन्तु अलोक्यवमन द्वारा १२०८ में दिये गए अनुदान में स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। उसने सामंत नामक राउत व उत्तराधिकारियों को मृत्युवन्तों (अर्थात् मृत व्यक्तियों के परिवारों के भरण पोषण के साधन) के रूप में एक गाँव दिया क्योंकि मृत राउत जिसके पिता और पितामह भी राउत थे तुरुष्का के विरुद्ध लड़ते हुए मरे थे।<sup>१</sup> इसी राजा ने इस राउत परिवार का फिर १२०५ में भी एक अनुदान दिया।<sup>२</sup> ग्रहीता के गोत्र का उल्लेख तो नहीं है,<sup>३</sup> किन्तु जाति का नहीं। शायद वह क्षत्रिय था। एक महत्त्वपूर्ण सनिक अधिकारी था नायक कुलशमा जिसका पिता नायक पितामह राउत और परपितामह राणक था। १२०८ में अलोक्यवमन ने उस समय के अधिकारी और उन्नीस शतों पर एक गाँव अनुदान में दिया जिनका उल्लेख हम चंदेल अनुदान पत्रों में प्रायः देखते हैं।<sup>४</sup> यद्यपि ग्रहीता ब्राह्मण था फिर भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि यह अनुदान किसी धार्मिक उद्देश्य से अथवा किसी धार्मिक प्रसंग पर दिया गया हो। इसलिए हम यहाँ मानना होगा कि यह एक वंशानुगत ब्राह्मण सनिक अधिकारी को धर्मोत्तर प्रयोजना से ताम्रपत्र पर अर्जित करके दी गयी जमीन की सनद थी। अलोक्यवमन के पुत्र और उत्तराधिकारी वीरवमन ने एक राउत को जिसके पिता पितामह और परपितामह सभी राउत थे युद्ध भूमि में पराक्रम दिखाने के लिए १२१४ में एक गाँव दिया।<sup>५</sup> यद्यपि इस अनुदान का उद्देश्य दाता के माना पिता के पुण्य में अभिवृद्धि बताया गया है<sup>६</sup> किन्तु ग्रहीता के गोत्र के उल्लेख से<sup>७</sup> एना नहीं जान पड़ता कि वह निश्चित रूप से ब्राह्मण ही था। अतः हम इसी वीरवमन द्वारा दिए गए दूसरे अनुदान का उल्लेख कर सकते हैं। उसने १२८८ में बलमद्र मल्लय नामक एक परम पराक्रमी सनिक अधिकारी को जिसने छ राजाओं, तुर्कों और कश्मीर के कई

१ ए० इ०, १६, न० २० १ पत्रिका ७ ११।

२ वहा २, पत्रिका ७ १०।

३ वहा १ पत्रिका १०।

४ वहा १ न० ११ पत्रिका १२ १८।

५ वही २ न० १४ सा पत्रिका ४।

६ वही।

७ वही।

राजाघा का पराजित किया था एक गाँव अनुदानस्वरूप दिया ।<sup>१</sup> अनुदान का उद्देश्य तो राजा और माता पिता के पुण्य में अभिवृद्धि ही बताया गया है<sup>२</sup> लेकिन हममें से नही कि घटीता पर ब्राह्मण था और उस मह गाँव उसकी महान मतिक उपलब्धि था व पुरस्वारस्वरूप लिया गया था ।

य राजा द्वारा राज्य की सेवा के एवज में दिये गए अनुदानों की संख्या काफी है और उनमें यह स्पष्ट हो जाता है कि महापुरोहिता यायाधीशा दुर्गन्धामिया मनापतिषा नायका और राजता को उनकी सेवाओं के लिए चन्दन राजा भूमि अनुदान दिया करता था । प्राप्त प्रमाणा के आधार पर निम्नवत्पूजक यह नहीं क्या था सतना कि राजता से ऐसी कोई भ्रम था की जाती था कि व राजा की सेवा के लिए एक निम्नवत् सत्त्या में छोड़ भ्रमवा सतिन रग । तन्नि भ्रमिवा अनुदान सतिन सेवा के लिए लिये गए जा पडते हैं । यह व त म राजा के राज्य में सतिन तत्त्वा का प्रमगता का सूचक है और इससे स्पष्ट है चन्दन स्थापना के उ तय से जाती है ।

प्रतीपयमन के नामा-नाम में मने १०१२ में हमें ब धन के रूप में गाँव देने का भी प्रमाण मिलता है । राजगुरु के पुत्र । व कि एक गाँव-गिय न एक राज्य का नाम एक बरत बरी रागि (जिमका उतग तटा है) के वरत विन ब धन म एक गाँव दिया ।<sup>३</sup> यदि यह राणक ध्यावार त्ता करता रहा है—और उमर उतार करने का सम्भावना त्ता भी है—ता उमर पास धाय का एकमात्र साधन गाँव त्ता राजाघा द्वारा अनुदान भूमि का राजस्व ही हो सकता था । यह राज्य का नामा अनुदान मरतार था क्योंकि उमरि उमकी सेवा में एक टरतुर् भी था जिसे उमने धपनी और म उम विन उधरूप गाँव का दान करने का काम मीसा ।<sup>४</sup> चन्दन राज्य की म्ग व धन भूमि की सुलना १०२० में श्रीगुरु म उराग विद र्ग एक म्ग त्ता त्ता शर म की जा सकती है । त्ताम एक राज्य न त्ता धय राजाघा का २५० म्ग व म्गन के वरत धन म्ग विन दत्त के रूप में लिये है ।<sup>५</sup> इन राजाघा का म्गगति गाँव

१ ए० इतिपम सा० मा० रि ३५ ३४ ।  
 २ इति ।  
 ३ ए० ए० । न० १ परिपदा १० १६ ।  
 ४ व परिपदा ० १ म्ग १ ।  
 ५ ए० ए० मा० ब० १६ (१=२०) ६४ २६ म्गगता का विन परिपदा ० का म्ग - इति है ।

जीनपुर के तत्कालीन शासक गाहड़वाल राजा से मिली थी। ध्यान देने की बात है कि उपयुक्त दोना उदाहरणों में हम राणका को लगानी करके अपनी भू-सम्पत्ति में वृद्धि करते देखते हैं। ऐसे वित्त-व्यय में रहते रखी जमीन पर रहने-रखने के अधिकार भीमिन ही होते थे। जब तक कज अदा न हो जाय तभी तक वह उस जमीन का कर उगाह सक्ता था<sup>१</sup> या उसकी उपज का उपभोग कर सक्ता था। लेकिन अगर कजदार कज नहीं चुका पाय तब तो वह जमीन निश्चय ही रहने-रखने की ही हो जायेगी।

वित्त-व्यय का इन दो उदाहरणों से, और विशेषकर चन्देला के राज्यवाले उदाहरण से, यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थानीय शासक अपनी जमीन जो गायद उन्हें अपने प्रभुओं से मिलती थी अनुदानस्वरूप पुनः दूसरा को दिया करते थे। उत्तर मध्य कालीन (अर्थात् १०वीं सदी से) प्रायः और जमीनी में ऐसे व्यय का जागीर कहा जाता था और कजदार प्रभु होता था तथा कज दान वाला सामन्त।<sup>२</sup> किन्तु, मध्य कालीन भारत में ऋषी और ऋणाना का सम्बन्ध एक नहीं होना था।

उत्तर प्रदेश में राज्याधिकारी को भूमि अनुदान देने का सबसे पहला अभिलेखीय प्रमाण १०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोरखपुर जिले में मिलता है। सामन्त और मन्त्री वृत्तनीति के पत्र सचिव मदोलि द्वारा दिये एक धार्मिक अनुदान में बताया गया है कि उसने जो गाव दुगा दबी को अनुदान में दिया वह उस राजा जयप्रिय (गायद गुजर प्रतीहारा के किसी सामन्त) की वृत्त से प्राप्त हुआ था।<sup>३</sup> किन्तु हमें राज्य की सेवा के एवज में प्रतीहारा द्वारा दिये गए अनुदान का कोई प्रमाण यंग पात के समय से पूर्व नहीं मिलता। यंग पाल गायद गुजर प्रतीहार राजवंश का अन्तिम राजा था। १०३६ ईस्वी में जब वह इलाहाबाद के निकट करा के स्वर्गावार में था उसने कौसाम्बी मण्डल में पमोस निवासी माथुर विकट को अनुदानस्वरूप एक गाँव दिया।<sup>४</sup> निश्चय ही यह एक गर ब्राह्मण व्यक्ति को दिया गया धर्मोत्तर अनुदान था। ब्रह्मिणी गायद कायस्थ था जिसके पूर्वज मथुरावासी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि माथुर कायस्थ कई राजवंशों की सेवा किया करते थे। चाहमान राजा हम्मीर का

१ ए० इ० २१ न० १, प० १६।

२ गंगोप फ्यूडलिज्म पृष्ठ ११०।

३ ग्रामोराजप्रसादगंगाप्रसाद । ए० इ० २१, १७० ७१, पृष्ठ ७१०।

४ ज० रा० ए० सा० व० १६२७, पृष्ठ ६६४।

मन्त्री मथुरा के कटरिया कायस्थ परिवार का था। इस परिवार का वंशवृक्ष १७८८ के एक अभिलेख में दिया गया है।<sup>१</sup> गौहड़वाला द्वारा जो प्रतीहारों के पत्रों के बावें उत्तर प्रदेश के अधिकांश भाग के स्वामी बन बैठे थे कायस्थ अधिधारियों को अनुदान देने का काइ उदाहरण अभी तक नहीं मिला है लेकिन अपने समय सामंती और क्षत्रियता के बंधन के बड़े पैमाने पर अनुदान दिया करते थे।

जैसे-जैसे विपरीत गौहड़वाला राजा ग्राम तोर पर सर सैनिक अधिधारियों को ग्राम अनुदान दिया करते थे। ये ग्रहीता मुख्यतः ब्राह्मण हुंदा करते थे और ब्राह्मणों में भी समय-समय पर अनुदान महापुरोहित जागुक या जागु नाम तथा उत्तक पुत्र प्रह्लाद शर्मा को प्राप्त हुए। जागु शर्मा मन्तवाल और उत्तक अधिधारी गणितज्ञ के पास कात्र में भी महापुराट्टी के पद पर बना रहा। राज्य में इसका तासा रचना था, क्योंकि अनुदानपत्रों में जिन राज्याधिधारियों का उल्लेख हुआ है उनमें महापुराट्टी का स्थान सबसे ऊपर है। इसका नियम इस अनुदान बनता है कि हमें हमें गांव गौहड़वाला राज्य के लगभग दस-अलग-अलग पत्तला (राजस्य विषयक पत्राणा) में प्राप्त हुए।<sup>२</sup> १११४ से लेकर ११२३ तक तो इस प्रायः हर साल एक गाँव मिलता रहा। इसका बावें कोई दस वर्ष तक इस बाँटें गाँव नहीं मिली। किन्तु फिर ११३८ में हमें एक गाँव प्राप्त हुआ।<sup>३</sup> इन अनुदानों का उद्देश्य पुण्याजनों बनाना था है।<sup>४</sup> लेकिन जान पड़ता है कि इन बाँटों का उद्देश्य एक पुरानी रीति के निराकरण के लिए दिया जाता था। ऐसा लगता है कि वास्तव में अनुदान महापुराट्टी के गौहड़वाला राजाओं को जो उनके प्रतिनिधित्व के लिए बलि के रूप में उभर आते थे। उनका दिव्य भोग गाँव दस-अलग-अलग पत्तला में विभिन्न रूप में प्राप्त थे। इनका गति और मात्रा घासानों से मुक्त नहीं कर सकता था लेकिन हमें इनका उद्देश्य जानना है कि गौहड़वाला राज्य के एक-एक अनुदान पर उनका प्रभाव था। राजा गाँव के पुत्र दत्त, या प्रह्लाद नाम के समय में इन परिवार

१ १००० ८ न० १३१३  
 २ १११४ २१ २६ और २७।  
 ३ १००० ८ न० १११३ १२८-०।  
 ४ १००० ११ १३१३ ०-७ ३। १२ १८ ० गी० १३१३ १८ ३१३।

की शक्ति प्रतिष्ठा में और भी वृद्धि हुई। उसे आठ गांव अनुदान में दिये गए, और साथ ही राउत का महत्त्वपूर्ण सामंती अथवा सैनिक दजा प्रदान करके वह अपने पिता के स्थान पर महापुरोहित के पद पर प्रतिष्ठित किया गया।<sup>१</sup> इस प्रकार इस ब्राह्मण परिवार को राज्य के कुल साठ पत्तला में से अठारह पत्तला में भू सम्पत्ति प्राप्त थी।<sup>२</sup> इन अनुदानों में ग्रहीता को वही अधिकार और सुविधाएँ प्रदान की गयी थी जो सामान्यतः ब्राह्मणों को जिन अनुदानों में दी जाती थी, और जागु शर्मा तथा उसके पुत्र प्रह्लाद शर्मा का अनुदत्त क्षेत्रों में व सारं नियत और अनियत कर और शुल्क वसूल करने में हक दे दिये गए थे जो अनुदान देने से पूर्व गाहड़वाल राजा को हासिल थे।<sup>३</sup>

गाहड़वालों ने कुछ अन्य ब्राह्मण राज्याधिकारियों को भी ग्राम अनुदान दिये। यह अधिकारी वशानुगत राउतों के रूप में राज्य की सेवा किया करते थे। ११३३ में गोविन्दचंद्र ने ब्राह्मण राउत जटेश शर्मा को, जिसका पिता राउत और पितामह ठक्कुर था, एक गांव दिया।<sup>४</sup> फिर, ११६८ में युवराज जयचंद्र ने दो वशानुगत ब्राह्मण राउतों को, जिनका पिता राउत और पितामह ठक्कुर था, एक गांव दिया। यह गांव पुण्यान्न के उद्देश्य में समस्त अधिकारों के साथ सदा के लिए दान किया गया था।<sup>५</sup> ११६८ में जयचंद्र ने दत्ती उद्देश्य से राउत अनग को जिसका पिता और पितामह दोनों राउत थे एक गांव दिया। यद्यपि अनग के मात्र और प्रवरा का उल्लेख हुआ है फिर भी हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि वह ब्राह्मण था या नहीं।<sup>६</sup> क्षत्रिय राउत को भूमि अनुदान दिये जाने का हमें केवल एक ही स्पष्ट उदाहरण मिलता है। राजा बन जाने के बाद ११७७ में जयचंद्र ने क्षत्रिय राउत राज्यधरवमन को, जो महामहत्तक ठक्कुर श्री विद्याधर का पुत्र और महामहत्तक ठक्कुर श्री जगद्धर का पौत्र था, एक गांव अनुदान में दिया।<sup>७</sup> विचित्र बात यह है कि इस ग्रहीता के गोत्र और

१ नियागा म० प्र० पु० परिसिष्ट बी, न० ५०, ५२-५६ ५८।

२ वही १३८।

३ समस्तनियतानियतादायन।—ए० इ० ४, न० २, पृ० ११।

४ वही जे २ १६ २१।

५ इ० ए०, १५, ७८, पंक्तियाँ १६ २२। उसके पितामह का भाई भी राउत था। ऐसा जान पड़ता है कि राउत का दर्जा ठक्कुर से ऊपर था।

६ ए० ए० १५, ११ १२ पंक्तियाँ २० २६।

७ इ० ए०, १८ पृष्ठ १३४ और आगे पंक्तियाँ २० २४ २७ ३५।



प्रवर दोना का उल्लेख हुआ है<sup>१</sup> और यदि अनुदानपत्र में स्पष्ट न बताया गया होता कि यह शत्रिय था<sup>२</sup> तो सहज ही उसका ग्राह्य होने का भ्रम उत्पन्न होता। क्योंकि इस अनुदान में तमाम धार्मिक और वारिकताओं का निर्वाह किया गया है और यह दिया भी गया है मूल चन्द्र के अस्तित्व पर्यन्त के लिए।<sup>३</sup> स्पष्ट है कि राज्यधरवमन एक गणितगाली राज्याधिकारी था। क्योंकि उस समय अनिश्चित पत्र और अनुदान भी लिये गए हैं।<sup>४</sup> इस अधिकारी को दिग्गज इन छद्म अनुदानों (११७७-८०) में एक ही गणितगाली का प्रयोग हुआ है, जो अन्तर है वह मिक गाँवा और राजा द्वारा लिये पाटवा के नाम का ही। अनुदानपत्रों में कभी भी ग्रहीता में दाता न कोई सेवा करने की माँग नहीं की है। इनका उद्देश्य था तथा उनका मानः पिता का पुष्पाञ्जन बतलाया गया है। परन्तु और परमाथ की भावना से प्रेरित होकर अनुदान लिये गए हैं। ऐसा स्पष्ट नहीं जा सकता कि ग्रहीता शत्रिय था। उसका राजा का अनुदान दान के लिए वाध्य किया हो, दण्ड भी कुछ स्पष्ट सबूत नहीं मिलता। तत्रिन् शूरि उन तीन अनुदान ११७७ में और फिर अगले तीन ११८० में लिये गए हैं। उनका नाम जान पड़ता है कि बीच के दाता क्योंकि वे वह अनुदान अधिक शत्रियगाली हो गया था। परन्तु दाता अथवा दान अनुदानों का भावना हान के दाता राज्यधरवमन उनका प्रभावगाली नहीं था। या जितना जातु गर्मा और उसका पुत्र था। पिता पुत्र दाना का पट्टाग्रह अनुदानों का

उल्लेख तो करता ही है साथ ही अपने प्रत्यक्ष प्रभु राणक के राज्य का भी उल्लेख करता है।<sup>१</sup> ११३४ में सिगर वत्सराज नामक एक गाहड़वाल सामन्त को भी रापडि विषय में उही शर्तों पर एक अनुदान देते देखते हैं जिन शर्तों पर उनका गाहड़वाल प्रभु दत्ता था,<sup>२</sup> यद्यपि सम्भावना ऐसी है कि उसे अपने प्रभु से भूमि अनुदान प्राप्त न हुआ हो बल्कि प्रभु न उसके छीने हुए प्रदेश उसे फिर वापस कर दिया है।

च देलो के विपरीत गाहड़वाल ताम्रपट्टा में कहीं भी राजतो को ग्राम अनुदान देन का कारण उनकी सनिव सेवा और शौर्यपूर्ण काम नहीं बताया गया है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अनुदान सामान्य रूप से नभी तरह की सेवाओं के लिए दिय जाते थे। लेकिन गाहड़वाल अनुदानपत्रों में रापडि अधिकारियों की सूची में राजता और राणका का उल्लेख नहीं हुआ है। इससे प्रकट होता है कि ये सीधे राज्य के नियन्त्रण में काम करने वाले सरकारी अमले न ही कर गाहड़वालों के सामन्त थे। च देला की अपेक्षा गाहड़वालों के राज्य में राजता की सख्या बहुत अधिक थी।

इस बात के कुछ प्रमाण मिलते हैं कि पुरोहिता के अतिरिक्त अन्य नियमित राज्याधिकारियों को भी ग्राम अनुदान दिये जाते थे। १०६२-६३ के गाहड़वाल ताम्रपट्टों में विकरग्रामा (करमुक्त गाँव) शब्द के उल्लेख से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इन अनुदानपत्रों के अनुसार चन्द्रदेव ने ५०० ब्राह्मणों को एक पूरा पत्तल दान कर दिया।<sup>३</sup> अनुदत्त क्षेत्र में इस पत्तल के ४ गाँव शामिल नहीं थे जो ब्राह्मणों और मन्दिरों के अधिकार में थे और जो करमुक्त थे।<sup>४</sup> इस अनुदानपत्र में २५ गाँवों को मन्दिरों के अधीन, २ को ब्राह्मणों के अधीन और ६ को करमुक्त बताया गया है।<sup>५</sup> दयाराम साहनी ने इन गाँवों को करहीन<sup>६</sup> (जिनके हाथ न हों, ऐसे) लोगों के अधीन माना है, किन्तु ऐसा मानने का कोई औचित्य नहीं दिखाई देता। विकरग्राम का अर्थ तो, करमुक्त

१ ज० ए० सा० व०, यू० सि०, ७, ७६<sup>२</sup>, पक्तियाँ १६।

२ ए० इ०, ४, न० १२।

३ ए० इ०, १४ न० १५, पक्तियाँ २३-३०।

४ वही।

५ वही, पक्तियाँ २७-३०।

६ वही १६६।

ही हो सकता है। और एसा जा पड़ा है कि ये गाँव राज्याधिकारियों का अनुदान में मिल गए थे। एसा करमुक्त गाँव राज्य के अन्तर्गत नहीं आता है। हाँ ता कोई आदर्श नहीं लेकिन उतना उतना कर्त्तव्य जगतिर तर्ही हुआ है कि पूरा पत्तल दात किया जात का कोई अन्तर्गत सामने नहीं आता।

एक साहज्यास अभिलेख में ८८ गाँवों की राजस्व दरवाँ का उल्लेख हुआ है, लेकिन साहज्यास और परमारों के राज्यास में ऐसी कर्त्तव्यता की शर्त है। सामने एसी दरवाँ दातक-युक्त के राज्यास के बीच में पुरुष राज्य बन ग बनी थी। यद्यपि साहज्यास अभिलेख में कुटुम्बिया और परिव्रता की अनुदान न्यि जाने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, तथापि भूमि अनुदान में जिन राज पुण्यास और राज्याधिकारियों की अनुदान की श्रुति दी गयी है, उनमें सामने राजिया तथा मुबराजा के स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। लेकिन साहज्यास के कई अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि सामने राज्यास के परिव्रता के बीच भूमि बाँट दी जाती थी। इसका सबसे पहला प्रमाण भूतपूष जयपुर राज्य में प्राप्त ६७३ का एक सिताभिलेख है। यह अभिलेख साहज्यास की सामनेरी शाखा का है।<sup>१</sup> इसके अनुसार राजा सिहराज उसके दो भाई परमार राज और विग्रहराज का पुत्र गणराज और गोविन्दराज तथा दूर के एक रिश्तेदार जयनराज में स प्रत्येक न एक सिव मन्दिर को अर्पण अर्पण स्वभोग में म गाँव और पुरवे अनुदान स्वरूप दिये। स्पष्ट है कि इन स प्रत्येक को अर्पण अर्पण और राजसवा के अनुसार अर्पण अर्पण निर्वाह के लिए जागीर मिली हुई थी। इस अभिलेख से प्रकट होता है कि राजा ही नहीं बल्कि सामने-युक्त के अन्तर्गत सदस्य भी अपनी निजी जमीन में स चाह जिसको जितना भी दे सकते थे।

ऐसे अनुदान से तनिक भिन्न उल्लेखण हम वारहवीं शताब्दी में मिलते हैं। ११४३ के एक अभिलेख से पता होता है कि धीतिहणक नाम की एक

१ ए० इ०, १४, १६६ पा० टि० १। विकर का उल्लेख एक प्रकार के युद्ध के रूप में भी हुआ है। यदि हम इस अर्थ को स्वीकार करके चलें तो मानना होगा कि ये गाँव राजा को जो सन्निह देते थे उसका पुरस्कारस्वरूप कर से मुक्त कर दिये गए होंगे। साहज्यास में विकरपद शब्द का प्रयोग घुटकर खर्चों के अर्थ में हुआ है। (पृष्ठ ६६, १०१)।

२ ए० इ० ४ न० ११ ए पकितियाँ १५ १६।

३ ए० इ० २ न० ८।

४ वही श्लोक ४८ ६।

चाहमान रानी को गिरास (मोजन और वस्त्र प्राप्त करने के साधन) के रूप में एक गांव मिला था।<sup>१</sup> इस रानी का जन्म उस परिवार के गोत्र में नहीं हुआ था जिस परिवार में उसका विवाह हुआ था, बल्कि उसे उसके दर्जे के मुताबिक एक निजी जागीर दी गयी थी। राजकुल के सदस्य द्वारा अनुदान दिये जाने का एक स्पष्ट उदाहरण ११६१ के नडोल ताम्रशामन में मिलता है। इसके अनुसार राजकुल अल्हणदेव और कुमार केल्हण देव ने सम्यक् रूप में राजपुत्र कीर्तिपाल को वारह गांव समस्त अधिकारों के साथ दे दिये।<sup>२</sup> कीर्तिपाल का यह जागीर सदा के लिए दे दी गयी थी क्योंकि हम देखते हैं कि जब वह एक जन मन्दिर का इन वारहा गावा में से प्रत्येक से होनेवाला ग्रामदत्तो में से दो दो सौ द्रुम्मा का वार्षिक अनुदान देता है तब अपने उत्तराधिकारियों से कहता है कि वे सब भी उसके इस अनुदान की शर्तों का पालन करें।<sup>३</sup> दमवी सदी के एक चाहमान अभिलेख में वारह गावा की एक इकाई का उल्लेख मिलता है।<sup>४</sup> लेकिन यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह इकाई व्यक्तिगत जागीर के रूप में किसी को दी गयी थी या नहीं। नामक गोत्र के सदस्यों की भूमि अनुदान देने का प्रचलन कीर्तिपाल के उत्तराधिकारियों के समय में भी जारी रहा। ११७६ के एक अनुदानपत्र के अनुसार उसके दो पुत्र राजपुत्र लखणपाल और राजपुत्र अमयपाल सिनाणक गाव के भोक्त थे।<sup>५</sup> एक और गाव पर भी जिसका उपभोग वे रानी के साथ करते थे, इन गाना भाइयों का अधिकार था क्योंकि इन तीनों ने उस गांव के अरघट (यत्र कूप) से लाभ उठाने वाले से प्राप्त अपने हिस्से का जो सम्यक् रूप से दान कर दिया।<sup>६</sup> यह बात महाराजाधिराज केल्हण के शासन काल की है।<sup>७</sup> स्पष्ट है कि राजपुत्र कीर्तिपाल के पिता अल्हण के बाद यह केल्हण ही चाहमान मिहान पर बैठा था।

रानिया और राजपुत्रों को निश्चय ही धर्म के नाम पर अनुदान नहीं दिये

१ ए० इ०, ११, न० ४, ५ पक्ति २।

२ वही, ६ न० ६, बी पक्ति १७-२६।

३ वही, पक्ति १७-३०।

४ वही ७, न० ८ श्लोक ४६।

५ वही ११, न० ४ १५ पक्ति १-५।

६ वही।

७ वही।

गए व पर सभी धनुषा का सम्बन्ध राज गवा म भी नहीं था । हो गया है कि रानी प्रजाता म भाग नहीं मी हो । हाँ यि कोई रानी किमी राजा के सम्बन्ध होने पर उमरी गरिहा का हैमिपय म राज राज गगता हा तो धान और है । मगर राजपुत्र व धार म लेगा नही गता जा गया । प्रारम्भ म राजपुत्र का राजा पावदान को विमान किमी प्रकार का मूमि धनु ा दिया जाता था । और सम्भव यही है कि गग धनु ा म सामन्त का िया जाना था जिगसे राज्य की कुछ तवा करी का दगता की जाता थी । उगहग के लिए महाराज कीर्तिराम के पुत्र महाराज गगरविग व ागन काम म उसका मामा राजपुत्र जीवन राज्यचिन्तन का काम करता था ।<sup>१</sup> योतना मे सम्बन्धित एव हाल की पुस्तक म ियाया गया है कि शासन का काम गहन परिवार चलाता था ।<sup>२</sup> इतना तो िति पत है ि सामन्त म जो मुख्य राजा व सम्बन्धी कुटुम्बी हुमा करत थ राजा की महायगा करत की धर ता की जाती थी और बल म राजा उह जागीरें िया करता था । यह महायगा विग प्रकार की हुमा करती था यह कह गता मुि रल है । परयनी वाम म ता यह चलन था कि शागव-वग व लाया को उनका सरदार जागीरें दता था और बल म उनका लिए यह लाजिमी होता था कि यद्ध-बाल म व धपने सरदार की सहायता करें और जब काई जागीरदार मर तो उगका उत्तराधिकारी उस जागीर का अधिकार प्राप्त करन स पूव उस कुछ नजराना द ।<sup>३</sup> ये दो वक्तव्य निमाने व चलावा थ धपनी धपनी जागीर म छोड़ छोड़ राजाका की तरह लगमग धक्षुण्ण अधिकार का उपभोग करत थ ।<sup>४</sup> सम्भव है कि पूववर्ती चाहमाना व धधीन इसी स मिलती जुसती स्थिति रही हा । किन इस धनुमान की पुष्टि करने के लिए हमारे पास काइ ठोस प्रमाण नहीं है ।

पर तु यह साचना गलत होगा कि चाहमाना के धधीन पूरा राज काज शासक परिवार के ही हाथा म था । एसा मानने का पयाप्त कारण उपलब्ध है कि राज्य म कुछ ऐसे पदाधिकारी भी थ जिनका राज परिवार से कोई

१ ए० इ० ११ न० ४ १८ पृष्ठ ५३ ।

२ कल्हण के राजत्व काल म राज्य के सीमांत क्षेत्रा का शासन उसका पुत्र और सम्बन्धी चलाते थे । दगरथ शर्मा कृत अली चोहान डाइनेस्टीज पृ० २०२ ।

३ वेडेन पब्लिश कृत द इंडियन सिंगेज कांभ्युनिटी पृ० १६६ २०२ ।

४ वही ।

सम्बन्ध नहीं था। बहुत पहले ही ६७३ में महाराजाधिराज सिंहराज के दुस्साध्य धधुक् न अपना स्वामी की अनुमति से खण्डकूप विषय स्थित अपना एक गाँव अनुदान स्वरूप गिव मन्दिर को द दिया था।<sup>१</sup> धधुक् इस मन्दिर को अनुदान देनेवाले उन सात दाताओं में एक था, जिनमें एक तो स्वयं राजा था और नौ पाँच राज-परिवार के सदस्य। यही कारण है कि इन छोटे दाताओं को अनुदान देने के लिए किसी की अनुमति नहीं लेनी पड़ी।<sup>२</sup> स्पष्ट है कि इस पुलिस अधिकारी को और भी गाँव मिल हुए थे। लेकिन इन पर उसे सीमित अधिकार ही प्राप्त थे क्योंकि हम देखते हैं कि वह दाता की अनुमति लिये बिना धार्मिक अनुदान भी नहीं द सकता था। मारवाड़ में प्राप्त १११० के एक अभिलेख से पता होता है कि अश्वराज के शासन काल में अश्वशालाओं का मुख्य अधिकारी उप्पलराज न अरघट कर के रूप में प्राप्त हानवाला अपने हिस्से का जो एक मन्दिर को अनुदान में द दिया।<sup>३</sup> जाहिर है कि ये गाँव, जिनमें प्राप्त होनेवाले कर का कुछ हिस्सा यह अधिकारी अपनी रूचानुसार किसी को दान दे सकता था, उन्हीं राजा ने सम्पूर्ण अधिकारों का साथ द दिये थे। ऐसा जान पड़ता है कि चाहमान शासन के अन्तिम दिनों में मन्त्रियों को बड़ी-बड़ी जागीरें दी जाती थीं। तृतीय पथ्वीराज के प्रमुख पद्मसदाना का मण्डलद्वार की उपाधि प्राप्त थी, जिससे प्रकट होता है कि या तो उसने वतन के रूप में या उसकी प्रतिष्ठा को ध्यान में रख कर उसे एक सम्पूर्ण मण्डल दे दिया गया था।<sup>४</sup> इन तीन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जो अधिकारी राजकुल में सम्बद्ध नहीं थे, उन्हें भी भूमि अनुदान दिये जाते हैं।

परमार अभिलेखा में नासक कुल के सदस्यों का भूमि अनुदान दिये जाने का उल्लेख शायद ही कहीं मिलता हो। एकमात्र परमार अभिलेख का ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है वह भोज के समय (१०११) का एक भूमि-अनुदानपत्र है।<sup>५</sup> इसमें बत्सराज को, जो सम्भवतः किसी राज परिवार में उत्पन्न हुआ था, भोतारमहाराजपुत्र कहा गया है जो स्पष्टतः भोजमहाराज-

१ ए० ड० २, न० ८ दलाक ८८।

२ वही।

३ ए० ट०, ११ न० ८ ३, पन्निमा १३।

४ दत्तारथ गर्मा सं० प्र० पु० पृ० १८८। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि नासक वह कुछ क्षेत्रों का वंशानुगत नासक था (वही पा० टि० ३५)।

५ ए० ड० २३, न० ३८।

पुनः का घण्टा बजा है।<sup>१</sup> तथा गांधी कहता है कि जब मोक्षदायक नाम की एक जागीर भी मिली हुई थी।<sup>२</sup> जब यह केवलमय गांधी का पुनः गीतक का त्रित्री सम्पत्ति थी।<sup>३</sup> तबिन बागमात अधिभाग की वनत परम्पर अधिभारण म गीतों की इकाइया का उद्देश्य गया।<sup>४</sup> तथा है। कम से-कम गांधी इकाइयों का उल्लेख भी मिलता है।<sup>५</sup> तथा म गांधी बाग बाग या बाग का बागुमन्तर सर्वोपार्थी इकाइयों की धीर मयमे धरी इकाई म ८८ गांधी सम्पत्ति थ।<sup>६</sup> तो इकाइयों मीनत मीनत धयवा मीनत का बागुमन्तर मीनतानी थी।<sup>७</sup> अनुमान है कि ये इकाइयों नामक गांधी का धयवा धयवा मयका का धयवा स्वतंत्र राज्य के समत था। धीर यह पद्धति विज्ञित प्रभा की नामक परिवार के सदस्यों द्वारा धयवा म यौन मन का धयवा धयवा मी।<sup>८</sup> ११वीं मरी के उत्तराध का एक परमार अधिभाग म ८४ करमात गांधी का उद्देश्य म एक अनुमान की कुछ पद्धति मीनी है। धयवा धयवा रात्रपूताता म धीरमी गांधी की जो इकाई देगन को मिलती है उमम प्रकाश गांधी है कि यह नामक परिवार के कितनी सम्पत्ति की जागीर थी। तबिन यह कहना मुश्किल है कि प्रमाण की दृष्टि से सारे प्रमाणों को धयवा का के सम्पत्ति के धीर यौन के पद्धति परमार राज्य के अधिकांश हिस्से म प्रचलित थी धयवा मरी। न यहा मीनत विद्या जा सकता है कि साधन के लोका का जागीरों दी जाती थी ये प्रमाणिक इकाइयों हुआ करती थी धयवा जागीर पानपात्रा की एमी त्रित्री सम्पत्ति

१ वही १६३।

२ वही न० ३८ पंक्तियाँ ५६।

३ वही १६ न० ३६ दान ए, पंक्तियाँ ८१४।

४ डी० सी० गांगुली सिस्टी ऑफ दि परमार इकाइयों पृष्ठ २३६८।  
परमार भोज का १०१६ के एक दापत्र म "भूमिगृहपरिचमद्विरघागवन नाम की क्षेत्रीय इकाई का उल्लेख है। यह ५२ गांधी की इकाई का सकेत देना है किन्तु यह न १२ धीर न १६ म ही विभाज्य है। ए० इ० ३९, न० ४२ पंक्तियाँ ५६।

५ वेडेन-वॉबेल, लैण्ड मिस्त्र ऑफ इटिया १ पृष्ठ, २२१, इटियन मिलक कम्युनिटी, १९६२०२, यू० एन० घोष दि हिन्दू रेव्यू मिस्त्र, पृष्ठ २३९, पृ० टि० २, ६५६।

६ ए० इ०, १६, न० १०, पंक्तियाँ ८१७। धार० डी० बनर्जी ने 'मायकपट्ट' का का धयवा करमुक्त नमाया है।—वही, पृष्ठ ६४।

जा उह बहतर क्षेत्रा के प्रशासन की देख रेख करने के एवज म वेतन के रूप म मिलती थी । गायद दूसरा अनुमान अधिक ठीक है । परमार राजा द्वितीय सीयक के ६४६ के एक अनुदानपत्र म उसकी निजी सम्पत्ति के रूप म एक दूसरे विषय का उल्लेख हुआ है, जिसम से उमन एक गाव अनुदान म दिया ।<sup>१</sup> इससे यह निष्पत्ति निम्नाना जा सकता है कि युवराज क रूप म उस कुछ निजी जागीर प्राप्त हुई थी, यद्यपि अब राजा की हैसियत स वह अपनी निजी जायदाद म भी और राज्य की जमीन म से भी अनुदान द सकता था । जो भी हो, उपलब्ध अभिलेखा से यह स्पष्ट नहीं होना कि चाहमाना के समान परमार राजवंश के सदस्य जागीर लेकर प्रशासन चलात थे ।

हम परमार राज्याधिकारिया क लगभग आधे दजन नर्जोंकी जानकारी है लेकिन उनम से बहुत थोड़े स अधिकारिया का भूमि अनुदान देने की चर्चा है । इनम से एक तो था महासाधनिक श्री महाइक, जिमका काम गायद अपराधिया को दण्डित करता और अपराधा की राक्याम करना था । निश्चय ही इस एक गाव अनुदान म मिला हुआ था, जो ६८० म उसकी पत्नी की प्रार्थना पर धार क वाक्यतिराज ने उज्जैन म भटटद्वरी देवी को पुन दान कर दिया ।<sup>२</sup> ग्यारहवीं सदी मे एसा कोई अनुदान देने का उदाहरण नहीं मिलता । १११० क एक अनुदान पत्र स जिसके अनुसार मण्डलेश्वर राजदेव ने दा और उसकी पत्नी न एक भूमि अनुदान लिया<sup>३</sup> प्रकृत होता है कि जिस गाव म से उन्होंने ये क्षेत्र दान किय उसका भोक्ता वह मण्डलेश्वर ही था,<sup>४</sup> और हो सकता है कि पत्नी का भी निवाह क लिए कुछ जमीन दी गई हा । इस अनुदानपत्र से स्पष्ट है कि मण्डलेश्वर की यह गाव परमार राजा ने दिया था, क्योंकि हम देखत हैं कि मण्डलेश्वर और उसकी पत्नी द्वारा दिये अनुदाना की सूचना सम्बन्धित अधिकारियों, ब्राह्मणों और पटटकिला को राजा ही देता है ।<sup>५</sup> स्पष्ट है कि ग्रहीता मण्डलेश्वर

१ 'स्वभुज्यमानमोहद्वारासकविषयसम्बद्धकुम्भारोटकग्राम', ए० इ० १६, न० ३६ दान ए पक्तियाँ ८ १४ ।

२ इ० ए०, १४, १६०, पक्तियाँ ६ १४ ।

३ ए० इ० २० न० ११ । यहाँ मैं इस दानपत्र के धार० डी० बनर्जी द्वारा लगाये गए अर्थ के यजाय एन० पा० चक्रवर्ती द्वारा लगाये गये अर्थ मानकर चला हूँ ।

४ वही, पक्तियाँ ५ ६ ।

५ वही पक्तियाँ ४ ७ ।



अपने पुराने दाग की अनुमति व बिना धरना जागीर का कोई हिस्सा गामिक अनुमान व रूप में भी किसी का नहीं मरता था। धार चनकर १२६० १ व एत तागपत्त रा नान हाता है कि द्वितीय जयचमरा धरना प्रतीहार (गरदाय) गगन्ध म सीन ब्राह्मणा को एक गाँव अनुमान म लिया था। १ अनुमान की धामिक विधियाँ स्वय गगन्ध व ही मरना की १ जिनका मानव यज्ञ था कि यह अनुमान वास्तव म उगी ने लिया। १ म प्रकृत हाता है कि यह गाँव उमरी निजा जागीर म पड़ता था। यह अनुमान यह धरना स्वामी की अनुमति व बिना नहा द मरता था क्योंकि राजा ने हम पर धरने हुना पर करक हम राज गामन व रूप म जारी किया। १ यदि हम गाँव का स्वामी स्वय राजा हाता तो अनुमान का धामिक अनुमान भी स्वय उगी व सम्पन्न किया होता। इन प्रकार स्पष्ट है कि प्रतीहार को मवा उति के रूप म भूमि अनुमान निय जान थ। शायद परमार व राय म धय गजवाधिवारिया का भी भूमि अनुमान दिये जात थ किन्तु अभी तक हम मन्व थ व और अभिलत तहा मिन है।

परमार अभिलग्या म वनिपय धयीनम्य सरदारा और गामना का भी उन्नय हुआ है। इनम म कुछ का प्रशासन व त्रिए बडे उड धान निय गए थ। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण साम व (तपाकमलध्यान) गराश्रित्य है। यह सामत वनीज व श्रवणम व परिवार का था और इा भाज या उमर विना सि पुराज न सगमोट या मण्डनवर नियुक्त किया था। १ इग राजदृगा के बदले वह धरन प्रभु को सनिव सहायता दता था। १ हा सकता है कि यह धमिलेखा म इस तरह का कोई जिक्र नहीं है। मनिव मवा के बदल गुराश्रित्य तथा उसका पुत्र और उनराधिवारी यगोराज दोना गायद अपने मण्डल की सारी जमीन के सम्पूर्ण स्वामित्व का उपभोग करते थे क्योंकि हम देखने हैं कि भोज के शासन-काल मे सन १०४७ मे यगोराज ने अपने प्रभु की अनुमति लिय बिना एक शव दवता गणेश्वर को एक पूरा गाँव और एक धय गाँव मे

१ ए० इ० ६ न० १३ बी पक्तिमाँ २३ २७।

२ वही पक्तिमाँ २८ ३६।

३ वही पक्तिमाँ ३७ ५३।

४ ए० इ० १६ न० ३६ दान ए', पक्तिमाँ ११ १२।

५ वही।

सी एकड़ भूमि अनुदान म नी 1<sup>१</sup> १०६१ और ११०० के बीच<sup>२</sup> नामिक म यगोवमन नामक एक सामन्त था जिने भोज से आधा सल्लुक नगर प्राप्त हुआ था<sup>३</sup> और जा अपने इमी प्रभु की कृपा से प्राप्त १,५०० गाँवा का भी भोक्ता था।<sup>४</sup> निश्चय ही यगोवमन का इतना बड़ा अनुदान अपने प्रभु की बहुत ही महत्वपूर्ण सेवा करने के बदले मिला होगा। शायद उसने किसी ऐम क्षेत्र को जीवन में परमार राज की महायता की थी जो मालवा का हिस्सा नहीं था।<sup>५</sup> वह सम्पूर्ण श्रीद्वहादि विषय का मण्डनश्वर था शायद इसलिए भोजन उसकी प्रशासनिक सेवाओं के लिए उम उक्त १५०० गाँव दिये थे। यगोवमन के अधीन उपसामन्तीकरण की प्रक्रिया में तजी आयी। उसके विषय में गग परिवार का अ [म्म] राणक नामक एक सामन्त था जिमने एक जन मन्दिर का अलग-अलग रकबों के चार क्षेत्र अनुदान में दिये।<sup>६</sup> इतम से एक टुकड़ा तो उसे कक्कपराज नामक एक कुमार म और दूसरा कतिपय नगरवासियों में प्राप्त हुआ था। कक्कपराज को परमार राजकुमार समझा जा सकता है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि इस सामन्त को अपने प्रत्यक्ष स्वामी यशावमन् से कोई भूमि अनुदान प्राप्त हुआ था अथवा नहीं।

गुजरात के चौलुक्या के राज्य में त्रिलोचनपाल के १०५१ के एक अनुदान-पत्र में नी नी सी और बयालीस बयालीस गाँवा के एवागा का उल्लेख मिलता है।<sup>७</sup> यह उदाहरण भी हमें विजेना परिवार के सदस्यों द्वारा पतक सम्पत्ति

- १ प्रोमिटिग्स ऑफ (लेटर ऑल "टिया) आरिण्टल कार्पेस १, ३२५ ६।
- २ वही।
- ३ श्रीभोजदेव प्रसादावाप्न नगर स[ल्लुकाद]।" वही, न० १०, पक्ति ७।
- ४ 'सदिसहस्रग्रामानाम भोक्तारा। —वही पक्ति ८। डी० सी० नागुली का विचार है कि सल्लुक एक मण्डल था (हिस्ट्री आफ दि परमार डाइनेस्टी, पृष्ठ २३६ पा० टि० १)। लेकिन ए० इ० १६, १० पक्तियों ७ ८ को देखने में यह निष्कर्ष ठीक नहीं जान पड़ता।
- ५ सन ११६७ में गृहिल सरदार पयसिह द्वारा भी सैनिक सेवा के बदले भूमिदान देन का उल्लेख मिलता है। ए० इ० २० न० ३७ श्लोक ३४५।
- ६ ए० इ० १४ न० १० पक्तिया ८ ३१।
- ७ इ० ए०, १२, १६६, श्लोक ३२।

आपस में बाँट ली थी प्रथा का स्मरण करना है। भक्ति तथा लगना है कि चाहमाना और परमारा की ही तरह चौतुपा के घड़ीय भी गामक-रखवार और उसक कुटुम्बिया क व्यक्तिगत निर्वाह क लिए कुछ कुछ खेज प्रसग कर निय जात थ। इस प्रकार १०६१<sup>१</sup> एक अनुदानपत्र म जान होता है कि प्रथम कण भानपुर का भोजता था और भानपुर क साथ ही १०६ गाँव का एक एकाग भी मयुक्त था।<sup>१</sup> इस प्रकार यहाँ हम ६२ क अनुदानपत्रक गाँव क एकाग का परिचय मिलता है। इस पर म ऐसा माना जा सकता है कि किसी समय शायद यह एकाग भी गामक परिवार क किसी सम्पत्त को स्वभाग क रूप म दिया गया होगा।

एक दान म चौतुपा राजका अथ सामन्तीय राजका म मिल था। चौतुपा राजाया न करने साम ता और उच्च पदाधिकारिया का अनुदान-स्वरूप बहुत बड़ बड़ क्षत्र प्रदान किए और धीरे धीरे इन पदाधिकारिया का स्थिति भी सामन्ती की तरह ही हो गयी। इस निर्य का एक आधारा तो १-वी १३वा सदिपों क चौतुपा ताया है और दूसरा है लेखपद्धति नामक एक सफलन। लेखपद्धति का सफलन १५वीं शताब्दी म हुआ था और यह पुस्तक राजकीय दस्तावेजों के नमून प्रस्तुत करती है। जिन प्राचीनतम दस्तावेजों म महामात्या और राणकों द्वारा अनुदान देने का उल्लेख मिलता है उनका काल लेखपद्धति म ७४५ ईस्वी (वि० स० ८०२) बताया गया है। इन दस्तावेजों के अनुसार महामात्या और राणका ने अपने अपने सामन्तों को बड़ी-बड़ी जागिरों दी और बढ़ने म उन सामन्तों ने अपने अपने प्रभुओं को एक निश्चित सख्या मे घोड़े देने और अपनी अपनी जागीरों म गति सुव्यवस्था काम म रखने का दायित्व अपने सिर लिया।<sup>२</sup> लेखपद्धति मे अथ बहुत से अनुदानपत्रों का काल भी ७६५ ईस्वी ही बताया गया है।<sup>३</sup> इस पर से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि ८वीं सदी मे गुजरात म सामन्तवाद की यह प्रवृत्ति तब

१ ए० इ० १ न० ३६ पवित्रा १४। चौतुपा अनुदानपत्रों मे स्वभुज्यमान गण का प्रयोग बार बार हुआ है। इसका मतलब ऐसा क्षेत्र लगामा जा सकता है जो राजा की निजी सम्पत्ति था। मूलराज के ६६५ के एक अभिलेख मे भी इस गण का प्रयोग हुआ है (ए० इ०, १० न० १७ पवित्र ३)।

२ पृष्ठ ७।

३ वही पृष्ठ २, ८, १० १५।

विकसित हो चुकी थी। किंतु इस निष्कर्ष की पुष्टि किसी अन्य प्रमाण से नहीं हो सकती है। दूसरी ओर, ऐसा मानने का आधार मौजूद है कि जिस शासन-पत्र को लेखपद्धति में ७४५ ईस्वी का बताया गया है वह वास्तव में उससे ५०० वर्ष बाद की गली में लिखा गया है। सा इस तरह कि इस शासनपत्र में एक राजा के लिए गजनिवाधिराज (महमूद गजनवी) विजेता विशेषण का प्रयोग हुआ है और इस विशेषण का प्रयोग १००६<sup>३</sup> और १२२३<sup>३</sup> के अभिलेखा में भी हुआ है। फिर भी लेखपद्धति में संकलित सबसे पुराने दस्तावेज का काल १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा सकता है क्योंकि इस दस्तावेज में दा ऐसे शब्द समुच्चय का प्रयोग हुआ है जो इस काल के चौलुक्य अभिलेखा में विशेष रूप से पाये जाते हैं। इनमें से एक तो है 'तनियुक्तमहामात्य श्रीकरणादिसमस्तमुद्रायापारान परिषद्यति सति' और दूसरा है 'नियुक्त दण्डनायक'।<sup>१४</sup> इसलिए इस संकलन में जिन अनेक दस्तावेजों का वि० सं० १२८८ (१२३१ ईस्वी) बताया गया, वे इससे बहुत बाद के नहीं हो सकते। इनमें से एक दस्तावेज स महासामंत लवणप्रसाद के जीवन और कार्यों पर काफी प्रकाश पड़ता है। सामन्त के रूप में इसका उल्लेख सबसे पहले अजयपाल के ११७३ के एक अभिलेख में मिलता है। उस भल्लस्वामी महाद्वादशकमण्डल-स्थित उदयपुर का दण्डनायक नियुक्त किया गया, और वहाँ उसने ६४ गावा के एक पयक एकाश में शिव को एक गाँव दान किया।<sup>१५</sup> लवणप्रसाद के अधिकार में चाहे जितना भी क्षेत्र रहा हो इतना तो स्पष्ट ही है कि वह राजा की अनुमति लिये बिना अपने क्षेत्र में भूमि अनुदान दे सकता था। इससे प्रकट होता है कि उसकी हैसियत सामन्त राजा के समान थी, और राजा के प्रति

१ ए० इ०, पृष्ठ २।

२ इ० ए० ६, १६८ पत्तियाँ १११। यह विशेषण द्वितीय मूलराज के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसका राजत्व काल ११७५-८ है।

३ वही, पृष्ठ १६७ पत्तियाँ १८१५।

४ इ० ए०, १८, ३८५, पत्तियाँ ५६। अभिलेख के धारक के कुछ अंगर मिट गये हैं।

५ वही, ३४७, पंक्ति ६।

६ इ० ए० १८, ३६७ पत्तियाँ १११। इस अभिलेख में प्रयुक्त 'लूण-पसाक' शब्द संस्कृत के लवणप्रसाद का ही जा लेखपद्धति के पाँचवें पृष्ठ पर माना है प्राकृत रूप है।

अपने दायित्वों का निवाह करत हुए वह अपने राज्य में घात जा कर सक्ता था। लेखपद्धति में संकलित १२३१ के एक मन्तव्य में पात जाना है कि भीम के शासन काल में वह महामण्डलाधिपति राणक या घोर उम अपने प्रभु में जागीर (प्रसादपत्तना) के रूप में शटकाधार का पथक मिला हुआ था।<sup>१</sup> निम्न यह, इस जागीर के मिन जाने से उसकी गति घोर प्रभाव में गूब बढ़ि हुई क्योंकि जहाँ ११७३ के उपयुक्त अभिलेख में अनुमार वह मन्तव्य द्वारा नियुक्त मात्र एक दण्डनायक (तनियुक्त दण्डनायक) था<sup>२</sup> वहाँ अब उमने शटकाधार में गुरु मन्तव्य दण्डनायक नियुक्त किया (तनियुक्त दण्डनायक श्री माधव)।<sup>३</sup> मन्तव्य काल में ११७१ में हम एक मन्तव्य दायित्वों का सामन्त का भी उल्लेख मिलता है। यह था चाहमान मन्तव्य नवर वज्रलक्ष्मण राजा की कथा में नमदा-नट के प्रयोग का मन्तव्य का उपयोग कर रखा था (मन्तव्यपालद्वयप्रसादीकृत्ये)।<sup>४</sup> इसने मन्तव्य मन्तव्य मन्तव्य प्रभु की मन्तव्य नियुक्ति बिना एक गाँव दान किया।<sup>५</sup> मन्तव्य प्रयोग होना है कि वज्रलक्ष्मण को मन्तव्य उपसामन्त बनाने का अधिकार प्राप्त था। यह स्पष्ट नहीं है कि उमने जिस पथक में यह अनुदान दिया वह उसे मन्तव्यपाल ने किसी पत्तला (लेखपद्धति के अनुसार पत्तला दाद का अर्थ है वह मन्तव्यपाल जिममें राजा कतिपय निर्धारित सेवाओं के बदले किसी को कोई जागीर दे) के रूप में दिया था अथवा नहीं। गुजरात में पत्तला का सबसे पुराना अभिलेखीय उदाहरण १२०६ में महामन्तव्य प्रतीहार सोमराजदेव के नाम जारी किया गया वह मन्तव्यपाल है। जिसके अनुमार उमने भीमदेव ने गायक समस्त सौराष्ट्र मण्डल जागीर के रूप में प्राप्त हुआ।<sup>६</sup> बहुत आगे चलकर १२६० में एक पत्तला का उल्लेख मिलता

१ प्रभो प्रसाद-महामण्डलाधिपतिराणकश्रीलावण्यप्रसादन प्रसादपत्तलायाम भुज्यमानशटकाधारपथक तनियुक्तदण्डनायक श्रीमाधवप्रभूतिपचकुल प्रतिपत्तौ ताम्रशामनम लिख्यते यथा । न० ५०, पृष्ठ ५ ।

२ इ० ए० १८, ३४७, पत्तियाँ १११ ।

३ लेखपद्धति, पृष्ठ ५ ।

४ इ० ए० १८, ८४ ८५ पत्तियाँ ७८ ।

५ वही पत्तियाँ ६२१ ।

६ मन्तव्यप्रभा प्रसादावापनपत्तलायाम् उममानघोसौराष्ट्रमण्डल—' इ० ए०, १८, ११३ पत्तियाँ १६२३ । लेखपद्धति के पवित्र पृष्ठ पर १२३१ के एक ताम्रशासन के नमूने में ठीक इन्हीं शब्दों का प्रयोग हुआ है।

है। इस पत्रला में किमी महामण्डलेश्वर राणक को जागीर के रूप में शायद एक पयक दिया गया।<sup>१</sup>

ऊपर न्यि गए उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरी भारत विंग कर उत्तर प्रदेश मध्य भारत राजस्थान और गुजरात के प्राय सभी राजवंशों के शासक अपने अपने सानता और राज्याधिकारियों की सवाभ्रा के बदल उह अनुदानस्वरूप गाँव दिया करते थे। बहुत से अनुदान पत्थरा या ताम्रपटा पर अंकित करवाय गए थे जिससे भूमि अनुदान दान के बदले हुए चलन का मकेत मिलता है और साथ ही राज्य के घमेंतर अधिकारियों का बढता हुआ महत्त्व दिखनाई पडता है, अब य लोग शायद राजा से स्थायी स्वामित्वपत्र प्राप्त करने का आग्रह करते थे।

११वीं और १२वीं सदियों में राज्याधिकारियों को वेतन देन का एक खास तरीका यह था कि नियमित करों का कुछ अंश अथवा कोई विंग कर उनके लिए अलग कर दिया जाता था। बघलखण्ड के कलचुरियों के अधीन छोट छोटे ग्रामला को—जस पटटकिलों (कर वसूल करने के लिए जिम्मेदार ग्राम प्रधानों) और दुष्टसाध्यों (अपराधियों का पकडने और दण्डित करने वाले पुलिस अधिकारियों) को—वेतन देने के लिए यही व्यवस्था थी। जयसिंह (११६३-८८) द्वारा एक ब्राह्मण को दिये गए अनुदान से ऐसा निष्कप निकाला जा सकता है, क्योंकि उसे जिन विभिन्न अधिकारों के साथ एक गाँव दान किया गया उनमें पटटकिला और दुष्टसाध्यों के लिए निर्धारित आदाय (कर) वसूल करने का अधिकार भी शामिल था।<sup>२</sup> पटटकिल अपने राजकीय कर वसूल करने के अलावा अपने घतन के लिए निश्चित कर वसूल करते थे। इस स्थिति में कमजोर शासकों के अधीन वे गाँव की जमीन पर किसी हद तक अपना नियंत्रण रखत हा तो इसमें आश्चर्य नहीं। किंतु दुष्टसाध्यों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनका सरोकार तो केवल उतन ही कर से रहता था जिनका उनके वेतन के लिए निर्धारित था। इन दो प्रकार के अधिकारियों के अतिरिक्त विशेषीणों, बपयिकों और भ्रमपुरुषारिकों को भी करा के रूप में ही वेतन दिया जाता था।<sup>३</sup> वसे इन तीनों प्रकार के अधिकारियों के कल्प क्या क्या थे यह हम नात नहीं है। गाँव की जमीन से

१ ए० इ०, १८ २१० पक्तियाँ ८ १०।

२ कों० इ० इ०, ४, न० ६३, पक्तियाँ १६ २५, परिशिष्ट ८।

३ वही।

१६२

इन अधिकारियों के चाह जो सम्बन्ध रहें हैं। इसमें कोई गड़बड़ नहीं कि उनके वेतन के रूप में उनके लिए कुछ धर अलग कर दिया जाना था। और ऐसा भी नहीं है कि वेतन देने की यह पद्धति केवल बनबुरिया व ही राज्य में प्रचलित रही हो। चंदेला व अधीन छोटे छोटे प्रमला और गाहड़वाला के अधीन तो बड़े बड़े अधिकारियों के भी निर्वाह के लिए कुछ विनिष्ट धर प्रसंग कर दिया जाते थे।

चंदेला व राज्य में सरकारी प्रमला को गोवा में कुछ अधिकार दिए जाते थे। यह चलन बारहवीं सदी व उत्तरार्ध में परमदिन व समय से शुरू हुआ। उसके ११७२ और ११७८ के अनुदानपत्रों में सामन्ता राज्याधिकारियों व अधिकारियों को मटो आदि को अनुदान में दिया गया व दस्तूर भत्ते के लिए एक वरानुगत ग्राहण राजत को एक अनुदान दिया जिसमें सामन्ता और सामाधिकारियों को उचित अधिकारों का त्याग करने का आदेश दिया गया है।<sup>१</sup> १२०८ में प्रलात्तयवमन यह स्पष्ट नहीं है कि राजकीय अधिकारियों को ये दस्तूर भत्ते लेने का अधिकार (नकद अथवा भूमि अनुदानों के रूप में मिलने वाला) नियमित वेतन के साथ प्राप्त था या उनके वेतन के साधन केवल यही थे। किन्तु इसके परिणाम स्वरूप एक ऐसे बीच के वर्ग का उदय होना अनिवाय था जिसके वास्तविक अधिकारों की जमीन में कुछ निहित स्वायत्त कर्म हो जाते थे। हम यह भी जान नहीं है कि जिन अधिकारियों से ये हक छिन जाते थे उनकी क्षतिपूर्ति अथवा प्रसार से की जाती थी या नहीं। फिर भी राजा द्वारा बीच-बीच में अधिकार वापस लेने से जमीन पर इन सरकारी प्रमला व अधिकारियों व मजदूरों का हक होगा। इसमें अतिरिक्त वास्तविकता की उपज में बहुत से और लोगों का हक-हिस्सा होता था जिससे सरकारी प्रमला का प्रभेदा प्रभाव नहीं जम सकता था। गाहड़वाला के राज्य में अधिकारीगण राजस्व के कुछ निश्चित साधनों का उपभोग करते थे। ग्रन्थालक (ज्या और राजस्व अधिकारी) उपज के एक हिस्से का हकदार था। उसका हिस्सा 'गाय' प्रति धर एक प्रस्य होता था।

१ राजराजपुराणविक्रमादिनि स्व स्वमामांय परिहृतत्रयम्।—ए० इ १५ न० २, पक्षिका २८ २६ वही २० न० १४ प्लेट बी पक्षिका २१ २३।  
२ का० इ० इ० ३१ न० ११ पक्षिका १०।

इस हिस्से के लिए कहीं अग्रपटनप्रस्थ<sup>१</sup> और कहीं अग्रपटान्नाय<sup>२</sup> शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी तरह प्रतीहार भी ग्रामवामिया की उपज के इतने ही हिस्से का अधिकारी था।<sup>३</sup> इनके अलावा विगतिस्रुप्रस्थ<sup>४</sup> नाम के भी एक कर का उल्लेख मिलता है। अग्रपटलप्रस्थ और प्रतीहारप्रस्थ से इस गण का जो मास्य है उसमें प्रकट होता है कि यह भी किसी अधिकारी को दिये जानेवाले अनाज के तोल का नाम था। मगर गाहटवाल राज्याधिकारिया की जो छोटी सी सूची उपलब्ध है उसमें तो विगतिस्रु जस किसी अधिकारी को दूढ़ पाना मुश्किल ही है। मदनपाल के एक ताम्रपत्र में ८४ गावा के एक एकाग का उल्लेख हुआ है<sup>५</sup> और चूँकि २८ बीरासी का तीसरा हिस्सा है इसलिए यह अधिकारी सम्भवतः २८ गावा के एकाग का राजस्व अधिकारी था। मगर निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस अधिकारी का दर्जा और काम चाह जा रहा हो, यह स्पष्ट नहीं है कि प्रस्थ प्राप्त करनेवाले उक्त तीनों अधिकारियों के वेतन का जरिया बवल यह प्रस्थ ही था या उन्हें कुछ और भी मिलना था। यद्यपि भी न्यूनित वही है जा च देना क राय म थी। चूँकि एक ही किमान को कई अधिकारियों का अपनी उपज में से कुछ कुछ हिस्से देन पड़ता था इसलिए काइ भी उनकी जमीन पर अपना हक नहीं जना सकता था। इसके अतिरिक्त अधिकारियों को वसति के रूप में अनाज का हिस्सा देना का कोई व्यापक चलन भी नहीं था क्योंकि ऊपर जिन तीनों गणों की चर्चा हुई है उनका उन्हेस केवल महाराजपुत्र गोविन्दचंद्र के ताम्रपत्रों में ही हुआ है।<sup>६</sup> अग्रपटलप्रस्थ, प्रतीहारप्रस्थ और विगतिस्रुप्रस्थ इन तीनों गणों का प्रयोग ११०४ के बमाही ताम्रपत्र में हुआ है।<sup>७</sup> अरुला अक्षपटलप्रस्थ ११०६ के कए

१ इ० ए०, १६ १०३ पत्रिन १०।

२ ए० ए० १८, १७ पत्रिन २१।

३ इ० ए० १४ १०३, पत्रिन १२ ए० इ० २ न० २६।

४ इ० ए० १६ १०३ पत्रिन १० मिलाइए ए० इ०, २ न० २६ पत्रिन १५ १६ म।

५ उल्लेख ऑफ मू० पी० हिस्टोरिकल मासाली १६, ६६ और उत्तरवर्ती पृष्ठ पत्रितर्का १० ११। नियोगी ने इसका मुधार कर पना है म० प्र० पु० परिशिष्ट 'बी' न० ८ पृष्ठ २६७।

६ नियोगी, स० प्र० पु० पृष्ठ १६७।

७ ए० ए० १४ १०३ पत्रिन १२।



ताम्रपत्र में आता है और फिर ११०३ व ११०४ ताम्रपत्र में विनिश्चय का प्रयोग हुआ है जो सामन्त विनिश्चयपत्र का ही दूसरा रूप है। ऐसा जान पड़ता है कि १२वां ताम्रपत्र व अंतिम वर्षों में भारतवासी राज्याधिकारियों द्वारा प्रचल हो गये थे कि वही प्रकार के ताम्रपत्रों का प्रयोग सामन्त अधिकारियों के रूप में करते थे।

चाहमाना व अर्धोत्तम भी यह प्रथा बहुत सीमा में ही थी। उदाहरण के लिए, जहाँ ताम्रपत्र के सन्निहित अधिकारों में सीमा पर ताम्रपत्र प्रयोग लगाया। ११६ व ११७ ताम्रपत्र में चौतुल्य राजा कुमारपाल व सामन्त अर्धोत्तम ने एक साथ का बलाधिकारवाच्य एक मन्त्रिणा व अर्धोत्तम मन्त्रियाँ और दूसरे की। इस ताम्रपत्र की तुलना में अथवा मण्डलिका में हानवाना राष्ट्रीय शक्ति का एक हिस्सा माना गया है क्योंकि बलाधिकार मण्डलिका व मन्त्रिणा अधिकारों का। किन्तु इन दोनों उदाहरणों में यह तुल्य सामन्तशक्ति पर ही लगाया गया है इसलिए ऐसा जान पड़ता है कि यह किमानों में ही लिया जानवाला एक कथा और यह अर्धोत्तम और प्रतीहारप्रस्थ की शक्ति का ही था। सन्निहित अधिकारियों में अर्धोत्तम के बाद बलाधिकार का ही दर्जा आता है किन्तु हम कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह तय कर सकें कि इससे अर्धोत्तम का एकमात्र साधन बलाधिकारवाच्य ही था अथवा यह उससे अर्धोत्तम का एक अर्धोत्तम था।

विभिन्न राज्याधिकारियों के निमित्त प्रजा से विनिश्चय कर लेने के चलन का प्रारम्भ और विरासत हमारे विषय के अध्ययन में काफी महत्व रखता है। इस राज की तुल्य अर्धोत्तम राज की प्रारम्भिक शक्तियाँ मण्डलिका, जब कि ग्रामीण क्षत्रियों व अर्धोत्तमों की शक्ति के लिए समय समय पर जानेवाले छाटा और मटा (पुनर्निमित्त अधिकारियों और सन्निहित) व रहने जाने की व्यवस्था सामन्तशक्ति को करनी पड़ती थी। इसी चीज ने कालक्रम से पट्टकिला दुष्ट माध्या अर्धोत्तम प्रतीहारों बलाधिकार तथा अर्धोत्तम राजपुर्या के निमित्त विशेष रूप में समूह किये जानेवाले तुल्य का रूप ले लिया। बाकायदा, पन्धवा

१ वही पृष्ठ १८६ पंक्ति २० व २१।

२ ए० ६० २ न० २६ १, पंक्ति १५ १६।

अर्धोत्तम अर्धोत्तम पृष्ठ १८७ पंक्ति २, पंक्ति ६ ११।

४ वही पंक्ति १३ १४।

५ वही पृष्ठ २६५, पा० टि० ८५।

और कदम्बो के अनुदानपत्रों में पाता होता है कि दौरो पर जानेवाले अधिकारियों के खाने रहने की व्यवस्था करने के लिए ग्रामवासियों को साधन जुटाना पड़ता था।<sup>१</sup> इस उद्देश्य से उन पर बसति दण्ड नामक एक छोटा सा कर भी लगाया जाता था, जो शायद जिन्मा में वसूल किया जाता था।<sup>२</sup> छोटी शान्ति में मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों में राज्याधिकारियों के भोजन की व्यवस्था करने के लिए ग्रामवासियों को जेम्क कर भर नामक एक कर भी देना पड़ता था।<sup>३</sup> लेकिन प्रारम्भिक अनुदानपत्रों में राजपुरुषों के वेतन भत्तों के रूप में किसी नियमित शुल्क का उल्लेख नहीं हुआ है। जिस एकमात्र कर को इस काल में रखा जा सकता है वह है मध्य भारत में प्राप्त कतिपय गुप्तकालीन अनुदानपत्रों में उल्लिखित राजाभाय्य अर्थात् राजपरिवार के मन्स्यों के खर्च के लिए लिया जानेवाला शुल्क।<sup>४</sup> परवर्ती काल में पाला के अधीन राजपरिवार के खाने खर्चों के लिए राजाभाय्य राजबुलीय राजबुलाभाय्य या राजबुल-आण्य नाम का कर वसूल किया जाता था। दसवीं सदी के बाद से ऐसे कर ग्राम तौर पर नहीं ही देखने को मिलते क्योंकि अब तो राजपरिवार के कुमारों, रानियों आदि को अपन अपने निर्वाह के लिए जागीरें दी जाने लगी थीं। किन्तु शायद सभी राजपुरुष इस पद्धति के अतगत नहीं आते थे और उनमें से कुछ के निर्वाह के लिए कुछ विशेष कर अलग कर दिये जाते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो चीज छोटे छोटे सरकारी अमलों को यदा कदा दिये जानेवाले अशदान और राजपरिवार को शायद नियमित रूप से दिये जानेवाले कर के रूप में आरम्भ हुईं उन्हीं में अब कलचूरिया चंदेलों, गाहवाला तथा चाहमाना के अधीन कतिपय अधिकारियों के निर्वाह के लिए निर्धारित नियमित शुल्कों का रूप ले लिया था। महाराष्ट्र के शिलाहारा के राज्य में भी वेतन देने की इस प्रथा का चलन था। वहाँ नागावण्ड नामक एक वशानुगत पद के अधिकारियों को वेतन स्वर्ण के रूप में नहीं दिया जाता था बल्कि उनके काय-काल तक के लिए उनके निमित्त कुछ कर अलग कर दिये जाते थे।<sup>५</sup> तात्पर्य

१ काँ० इ० इ० ४ १५६ पा० टि० २।

२ वही।

३ वही न० १२०, पक्किया १८ २०।

४ काँ० इ० इ० ३ न० २६ पक्कियाँ ११ १२ न० २७, पक्कित १३, न० २८ पक्कित २०।

५ ए० इ० २७ १७६ और पा० टि० १।

यह कि अधिकांशों को पारिश्रमिक देने के लिए राजस्व की कुछ भाग का बालग्य पर इन की प्रथा इंगी बाल की एक विधिगत था थी।

यद्यपि सामन्ताधीन राज्याधिकारियों द्वारा जो उत्तरी सराया का पुरस्कार भूमि अनुदानों के रूप में किया जाता था किन्तु राजा भूखण्ड प्राप्त करके पुरोहित ज्योतियों का नियंत्रित करि प्रशासन महासायनिक महामाल्य प्रादि परभन्त तथा मन्त्रि अधिकारियों का प्रशासन उत्तम नियम निर्धारित कृतव्या के निर्वाह का ध्येय करके स्थित जान था और इन कृतव्या का सम्बन्ध उन अधिकारियों के ध्येय प्रथम पक्ष में दृष्टा करता था। चाहेमान और परमार राजवंशों के सदस्यों को प्रशासन के लिए जो लोग गौण जात के साथ साथ सन्निव कृतव्य भी पूरे करने पड़त थे और इन कृतव्या के करने उह जागीरों की जाती थी जिनमें से प्रथम में कई कई गाँव शामिल हुआ करते थे। इसी प्रकार के मिले जुले कृतव्य धायद बहुत स एसे सामन्तों को भी मिलाने में सामन्तों की अनेक श्रेणियों का उल्लेख हुआ है—जैसे राजा, राजराजन्त, राजक, राजपुत्र ठक्कुर सामन्त महासामन्त, महासामन्ताधिकारि महासामन्त प्रादि लेकिन उपलब्ध अभिलेखों में केवल पाँच ही कोटि के सामन्तों को भूमि अनुदान देने का जिक्र हुआ है। ये हैं—सामन्त महासामन्त, राजक, राजपुत्र और माण्डलिक। यह कहना मुश्किल है कि इनमें से प्रत्येक कोटि के सामन्तों को प्रशासनाय कितना बड़ा क्षेत्र दिया जाता था। शुभनीतिसार में, जिसमें ११वीं १२वीं सदियों के अभिलेखों में प्रयुक्त कतिपय शब्दों का उल्लेख हुआ है सामन्तों की परिभाषा करते हुए ऐसा बताया गया है कि वह १०० गाँवों का शासक होता है और इस पूरे क्षेत्र से प्रति वर्ष १३,००,००० कप राजस्व प्राप्त होता है।<sup>१</sup> उसी सूत्र से यह भी जात होता है कि माण्डलिकों की वाषिक आय ३,००,००० से लेकर १०,००,००० कप तक होती थी।<sup>२</sup> इन बातों

- १ इनमें से कुछ का उल्लेख राधाकृष्ण चौधरी न. ज. ३०. ६०. हि. (३७ ३८६) में लिये एक निबन्ध में किया है।
- २ अनु. बी. के. सरकार १ ३६५ ७ ३८१ २। हाल में एल. गोपाल ने लिखा है कि इसका सफलन १६वीं सदी के पूर्वार्ध में किया गया (बी. एस. प्रो. ए. एस. २५ भाग ३ १६६२)।
- ३ वही १ ३६८ ७४।

से सामन्तता के सुलनात्मक दलों का कुछ अंदाजा तो मिल सकता है, किन्तु इन्हें अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया जा सकता। इन सामन्तों को चाहें जिनके धर्म क्षेत्र न्यून जानें हैं, कुछ राणक और मण्डलेश्वर का जो क्षेत्र सौंपे जानें थे उनका वे प्रायः पूर्ण स्वामी हुआ करते थे। क्याकि हम जानते हैं कि वे अपने अपने प्रभुओं की अनुमति के बिना ही धार्मिक अनुष्ठान न्यून करतें थे। उनके विपरीत राज्याधिकारियों को—यहाँ तक कि प्राचीन सामन्तों को भी—एसे अनुष्ठान देने के लिए अपने प्रभु की अनुमति लेनी पड़ती थी। इसके अलावा बहुत से सामन्तों का अपने प्रभु से रक्त सम्बन्ध हुआ करता था किन्तु राज्याधिकारियों का राजा से सामन्तों की तरह पर ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं होता था और सभी सामन्तों का राजा से ऐसा सम्बन्ध रहता था, सो भी नहीं है। पाला ने कर्णों को भूमि अनुष्ठान न्यून यद्यपि उनमें पाला का कोई रक्त सम्बन्ध नहीं था। इसी प्रकार एसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है जिससे उड़ीसा में सामन्तों का और गुजरात में राणक का राजा से इस तरह का कोई सम्बन्ध सिद्ध हो सके। देण के अर्थ हिस्सा में भूमि अनुदान पानेवाले अधिकारगण सरकारी धर्मने ऐसों के राजा के सम्बन्धी नहीं थे। राजस्थान और गुजरात में राजपूत शासन व्यवस्था का यह एक ग्याम सूत्री थी। अभिनेता से प्रकट होता है कि भारत में भूमि अनुदान प्रारम्भ में पुरोहितों को न्यून जातें थे और आगे चल कर ही ब्राह्मणों काधरणा तथा राजवंश से रक्त सम्बन्ध न रखनेवाले क्षत्रिय राज्याधिकारियों और सामन्तों आदि गहम्य भोक्तृओं को अनुदान न्यून जाने लग। तात्पर्य यह कि अनुष्ठान रक्त सम्बन्ध के कारण ही नहीं न्यून जातें थे। उनका मुख्य कारण यही जाना था कि दाना का ग्रहीता की सवामा की आवश्यकता रहती थी।

इस काल में उत्तरी भारत में सामन्त और प्रभु का सम्बन्ध अगत बसा ही था जमा कि उनका सम्बन्ध फास तथा जमनी में था। इन दोनों देशों में सामन्तों का मुख्य नायित्व अपने प्रभु की मन्त्रिणा सवा करना था।<sup>१</sup> इसी प्रकार भारत के साहित्यिक तथा पुरालखीय नायकों में यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जानी है कि यहाँ के सामन्तों का भी सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य अपने प्रभु की मन्त्रिणा सहायता करना ही था। धनपान कृत तिलकमजरी में अनेक ऐस

१ इंग्लड में उन्ही राज राज में अपने प्रभु का परामश भी देना पड़ता और साथ ही नाय प्रशासन में भी हाथ बटाना पड़ता। भारत में सामन्तों को कोई ऐसा कर्तव्य नहीं निमाना पड़ता था।



सम्राज्यवादी को शहीद मारना या मरवा देना मरवा देना ही राजता का अधिकार था। कथन ही भूमि अनुदान दिए जाते थे। गार्हपत्य नृपति जयचन्द्र के अधीन शक्ति राजत गार्हपत्य का शासन शक्ति सेवा के पुरस्कार स्वरूप ही थे। भूमि अनुदान शिव शिव थे। ऐसा जान पड़ता है कि राजत एत सामन्त थे जिन्होंने मुख्य कर्तव्य राजा के अधिकार करना था, और शेष शक्ति के अनुसार राजतुषा का भी गवग महत्त्वपूर्ण शक्ति यही था। मंत्रि मायना का एक ऐसा ही बग पूर्ण गवा के अधीन ही था। ये नायक बने जाते थे और इनके कुछ कर्तव्य मात्र भी शामिल थे। गग राजाभा ने इन्हें अनन्य भूमि अनुदान शिव। गुजरातीगार में नायक को इन गायों के प्रशासनाय नियुक्त अधिकारी बनाया गया है किन्तु अधिपत्या से ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि उनका अधीन कितना बड़ा क्षेत्र होता था। एक और ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुछ परिवार तो एक के बाद एक तीनों-तीनों पीढ़ियों तक नायक और विधायक राजत के शहीदों का उद्योग करते थे। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे एक यशानुगत मंत्रि बग गग हा गया जिन्होंने जोशिला का शासन उनके सन्तानों का ही गर्द गगरे धी।<sup>१</sup> यह विशेषता जो पूर्ववर्ती काल में दल को नहीं मिलनी श्रुति म यशानुगत मंत्रि परिवारों का स्मरण कराती है।

अभिप्राय का दलने का प्रकट श्राव कि इन काल में सामन्त लोग राजनीति और प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। कनिष्ठ उत्तराधिकार सम्बन्धी विवादा में उत्तरा दूस्त्र रूप निर्णायक गिद्ध शाना था। इससे पहले के काल में हम गगान का सामन्त तो जान ही है। श्राव चतुर उत्तराधिकार का नियम सामन्त शास ही करते गग पढ़ते हैं। यहाँ हम समय में गालम्बम् उठीता म सोमवर्गी गानवा और रागम्बान म चाहमाना के दष्टान्त ले सकते हैं। जब द्वितीय पृथ्वीराज पुत्रविहीन ही चल गया तो उसके मंत्रिया न, जो सामन्त स भिन्न नहीं थे, गुजरात से सामन्त का ला कर अजमेर के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। उसकी मृत्यु के बाद विधवा रानी कपूरदधी को उन्हीने उसका अन्वेषण पुत्र तृतीय पृथ्वीराज की सरनिना के पद प्रतिष्ठित किया।<sup>२</sup> इसी प्रकार कश्मीर में राजा का चुनाव करने के लिए त्रिया और

१ फल श्राव श्राव श्रिगोमिल साम द्गी (७८, ३० ३६) म निगे क्यूडल कम्पाजिगन श्राव दि श्रावो इन श्रलो मन्दिपल डडिया शीपक निबन्ध में डांश्रीमती के० के० गोपाल न दस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है।

२ दगारव गर्मा सं० प्र० पु० पृष्ठ १६६।

एकाग्रता के साथ यत्न कदा सामन्तता को भी आमंत्रित किया जाता था।<sup>१</sup>

१२वीं और १३वीं शताब्दियों में कुछ क्षत्रिय राजाओं की भूमि अनुदान देने की सत्ता उतनी अक्षुण्ण नहीं रह गई थी जिनकी किं पूर्ववर्ती काल में थी। चौलुक्य राज्य में महामात्य का बड़ा दबदबा था। वह एक प्रकार का सामन्ती मंत्री ही था। चौतुर्य राजाओं को अनुदानपत्र जारी करने के लिए इन महामात्यों की सहमति प्राप्त करनी पड़ती थी। यह प्रथा हम पूर्ववर्ती काल में कहा नहीं देखने की मिलती। इस प्रथा के कारण राजकीय दाताओं के हाथ बंध गये हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि तुम्हें भूमि अनुदान के सम्बन्ध में महामात्यों से पूरा परामर्श तो करना ही पड़ता था।

पूर्ववर्ती अनुदानपत्रों में सिर्फ उही अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जो इन अनुदानों का दस्तावेज तैयार करवा कर इन्हें कायम रखते थे। उनमें साध्वि विग्रहिक तथा नूतक विशेष रूप से उल्लेखनायक हैं। ये अधिकारी अनुदानपत्रों का अनुमोदन नहीं करते थे। लेकिन हम जिस काल पर विचार कर रहे हैं उस काल के—विशेष रूप से १२वीं तथा १३वीं सदियों के—कुछ अनुदानपत्रों में उनकी सहमति का भी उल्लेख है। परमार राज द्वितीय जयवर्धन के एक अनुदानपत्र में (१२६०-६१ में) उस राजा द्वारा कुछ ब्राह्मणों को लिये एक ग्राम अनुदान का साध्विविग्रहिक पण्डित मालाधर ने अनुमोदन किया है।<sup>२</sup> भूमि अनुदानों के मामलों में सामन्तों और राज्याधिकारियों के बचने हुए महत्त्व का आभास कतिपय सन अनुदानपत्रों से भी मिलता है। पूर्ववर्ती सन अनुदानपत्रों में केवल दो अनुदानों की पुष्टि किये जाने के दृष्टान्त मिलते हैं। इनमें से एक की पुष्टि स्वयं राजा ने की और दूसरी की साध्विविग्रहिक ने। लेकिन सल्तनत के राजत्व काल के २५वें और २७वें वर्षों के अनुदानपत्रों से उच्च अधिकारियों के बचने हुए प्रभुत्व का संकेत मिलता है। इन अधिकारियों में से अधिकतर सामन्तों के ही और अनुदानों की स्थायित्व प्राप्त करने के लिए इनकी सहमति और अनुमोदन आवश्यक समझा जाता था। एक अनुदानपत्र में तो पांच राजपुत्रों के अनुदानों का उल्लेख है जिनमें से एक गायक स्वयं राजा था।<sup>३</sup>

१ राजतरंगिणी, ५, २५०।

२ ए० इ०, ६, ११६।

३ ज० रा० ए० सा० वि० मृ खला ३, पृ ३४-३५। अनुमोदन करनेवाले ५ राजपुत्र हैं। (१) श्री नि (२) महासम नि (३) श्रीमदराज नि (४) श्री मन्गलकर नि और (५) श्री मन साहममाल नि।

यद्यपि राजनीति और प्रशासन में सामन्तता का बड़ा प्रभाव था, किन्तु वे अभी भी इंग्लैंड के सामन्तता की तरह अपना कोई संगठन या समिति नहीं बना पाये। अभिनेता और साहित्यिक कृत्रिमता में सामन्तत्व का बहुधा प्रयोग हुआ है। पर इन्होंने किसी संगठित मन्त्रालय का मान नहीं होना है। गायद इसका प्रयोग कविचक्र के ममान हाना था।<sup>१</sup> सामन्तता का कल्पित कोई दरबार होता होगा जिसका प्रमुख उन सब का प्रभु था। लेकिन इसे हम विभिन्न विषयों पर विचार करनेवाला एमी कोई मन्त्रा नहीं मान सकते जिसका माध्यम से सामन्त लोग अपना अपना विचार पत्र करते हैं या अपनी अपनी बात कहते हैं। अधिक से अधिक हम मुस्लिम शासन काल के दरबारों की कोटि में ही रखा जा सकता है। यह मध्यकालीन इंग्लैंड की उस सामन्ती सत्ता के समान नहीं था जो पार्लियामेंट की जननी मानित हुई। सम्भव है सामन्तगण अपना अपने क्षेत्रों में या प्रशासन शासन-व्यवस्था और विधि निर्माण का कार्य अलग अलग करते रहें हों लेकिन उन्होंने एक सत्ता के रूप में संयुक्त रूप से ऐसा अभी नहीं किया। फिर भी सामन्तता का एक बगानुगन सामाजिक वर्ग के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। इसका प्रमाण हमें वाक्पतिराज सूरी के लिए प्रमुख सामन्तत्व में विभाजन के रूप में मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि यद्यपि वह जमाने में सामन्त था किन्तु उसने प्रमुख कवियों में सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था।<sup>२</sup>

इस काल में राज्याधिकारियों के सामन्ती स्वभाव जानने की सामान्य प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। अधिकारियों को वेतनस्वरूप भूमि-अनुदान ता दिया जात ही था, साथ ही उन्हें बड़ी बड़ी उपाधियाँ भी दी जाती थी। इन उपाधियों का उनका कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। यह मात्र उनका श्रेष्ठ का बाध बगानवाली होती थी। यह प्रवृत्ति हम सबसे अधिक बंगाल और बिहार में देखते हैं। उदाहरण के लिए पाला का एक साधारण सा सामन्त महामाण्डल ईश्वरधोष अपने एक अनुदानपत्र में चार दर्जन से अधिक अधिकारियों को सम्बोधित करता है और इन अधिकारियों में से १३ के

१ उद्भवसुन्दरिका पृष्ठ २७।

२ सामन्त जमाने के कविवराणाम महत्तमो वाक्पतिराजसूरी। वही, पृष्ठ १५४।



पदनामों के साथ महा उपसग जुड़ा हुआ है।<sup>१</sup> इसी प्रकार दक्षिणी मुगल का एक श्राय महामाण्डलिक सग्रामगुप्त अपने अनुदान की सूचना बन्त स राज्याधिकारिया और राजपुरुषों का दत्ता है और इनमें १८ के पन्नामा के साथ महा उपसग समुचन है।<sup>२</sup>

पाना के तथा बंगाल और बिहार के श्राय राजवर्गा के अनुदानपत्रों का अध्ययन से ज्ञात होता है कि महा उपसग से युक्त पदनामों वाले राज्याधिकारियों की सरया उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। प्रारम्भ में धर्मपाल और दपवाल के अधीन ऐसे चार पाँच अधिकारियों का उल्लेख हुआ है। इसमें आगे चल कर नारायणपाल बल्लानसेन और नरदमणन के अधीन तीनों का उल्लेख हुआ है, फिर ईश्वरधाय के अधीन सत्रह का और अन्त में सग्रामगुप्त के काल में, जब राज्याधिकारियों का सामन्तीकरण चरमसीमा पर पहुँच चुका था। ऐसे अष्टादह अधिकारियों के नाम आये हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिन प्रभुओं का शक्ति जितना कम थी उतना राज्य में महा उपसगधारी राजपुरुषों की सरया उतनी ही अधिक थी और इसी प्रकार जस जस समय बीतता गया वैसे वैसे ऐसे अधिकारियों की संख्या बढ़ती गई।

विचित्र बात यह कि भारत के दूसरे हिस्सों के सामन्तों में बड़ी-बड़ी उपाधियाँ के प्रति ऐसा मान् देखने को नहीं मिलता। इसका एकमात्र भ्रषण कलचरि राज्य है जहाँ चौदह ऐसे अधिकारियों का उल्लेख हुआ है जिनके पदनामों के साथ महा उपसग जुड़ा हुआ है।<sup>३</sup> लेकिन राजक और टाकुर यदा सामन्ती उपाधियाँ उत्तर भारत में खूब प्रचलित हुई और विभिन्न जातिमा तथा धर्मियों के अधिकारियों के लिए इनका अध्याधु अध्याय किया गया है। इसके सत्रस अन्त उदाहरण कायम्य त्रिपिक है, जिहय उपाधियाँ उनके क्तव्या को ध्यान में रख कर नहीं बल्कि सामन्ती और सामाजिक दद को दृष्टि में रख कर दी गई थी। ऐसा लगता है कि अधिकारियों को उनके

१ य अधिकारी थे महासाधिविग्रहिक महाप्रतीहार महाकरणाध्यक्ष महापादमूलिक महाभोगपति महातन्त्राधिकृत महासूहपति महाण्डनायक महाकायस्थ, महाबलकाण्डिक महाबलाधिकर्णिक महासामन्त मन्त्राणिक । १ बी ३ १५६७ पत्तियाँ १०-२१ ।

२ ज० वि० घा० रि० मा० ५ ५६३४ पत्तियाँ ६८ ।

३ १० ६० ६०, ४, न० ४८ पत्तियाँ ३२-३५ । इस सूची में महात्वी और महाराजपुत्र भी शामिल हैं ।

अपने अपने राजनैतिक दर्जे और महत्त्व के अनुसार विभिन्न सामन्ती श्रेणियाँ प्रदान की जाती थी ।

भूमि अनुदान पहले-पहले पुरोहिता और मदिरा को दिया गया और मध्य-काल के प्रारम्भ में अधिकतर अनुदान इन्हीं का मिलन रहे । इसलिए स्वभावतः राज्याधिकारियाँ और सामन्तों का दिया गया अधिकतर अनुदानों में भी धार्मिक विधि विधानों का निर्धारण किया गया है—यहाँ तक कि गाँवों में इन्हीं का भी आहरण किया है । सैनिक व गणसैनिक पदा पर प्रतिष्ठित ब्राह्मणों को अनुदान देने में तो धार्मिक अनुदानों का उपयोग करने में किया जा सकता था क्योंकि अतीत कालों में धार्मिक स्थिति व कारण व अपनी निजी हैमियत से भी दान पान का हकदार थे । लेकिन ब्राह्मण सामन्तों और अधिकारियों का दिया गया अनुदानों में प्रचलित मसौदों का उपयोग इसलिए किया जाता था क्योंकि दूसरे ढंग का मसौदा अभी तक नहीं बन पाया था । धीरे-धीरे धर्मोत्तर अनुदानों के लिए भी एक मसौदा चल पड़ा जिस पर स धार्मिक प्रभाव पड़ता गया । उदाहरण के लिए उड़ीसा में एक कायस्थ मंत्री को ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में प्राप्त किया गया अनुदान में इसकी चर्चा नहीं है कि अनुदान की अवधि सूय चन्द्र व अस्तित्व पर न हो, <sup>१</sup> हानाकि अनुदान से दाता का होने वाले पुण्य लाभ का उल्लेख है । उदेल राजाओं द्वारा राजता को दिया गया अनुदानों में भी हम ऐसा ही देखते हैं । <sup>२</sup> एक बंगाली ब्राह्मण राजत को दिया गया अनुदान में तो स्थायी स्वामित्व प्रदान करने के लिये धारा भी छोड़ दी गई है । <sup>३</sup> किन्तु १११५ व एक गिलाहार अनुदानपत्र में यह धारा बरकरार रखी गई है । इसमें गण्डराज्य में अपने सामन्त नीलम्ब का दाता इस पत्र के साथ अनुदान में दिया कि वह और उसके बगल सूय चन्द्र व अस्तित्व पर उनका उपयोग करें । <sup>४</sup> अलग-अलग इस अनुदान के फल-स्वरूप हानाके किसी पुण्य लाभ का उल्लेख नहीं किया गया है । इस सबके बावजूद वास्तविकता यही है कि अभिलेखा में ऐसा कोई अनुदानपत्र देवत को नहीं मिलता जो पूरा पूरा स धर्मोत्तर अनुदानों का तैयार किया गया हो । विष्णु

१ ए० इ०, २६ न० २६ ।

२ वही १६, न० २०, २० न० १ सी ।

३ ए० इ० ३१, न० ११ । यह एक बंगाली सैनिक परिवार था, जो चार पीढ़ियों तक इस दर्जे का उपयोग करता रहा ।

४ ए० इ०, २६, न० ३२ पंक्तियाँ ३६ ६१ ।

धर्मोत्तर गणपती म तयार किय गये अनुदानपत्रा की सन्धिपत्र चर्चा गुप्त कालीन स्मृतियों म मिलती है । प्राग चलकर लेखपद्धति म एस अनुदानपत्रा क विषय म विस्तार स लिखा गया है । इस पुस्तक म राजाग्रा महामात्या और राणकी द्वारा जारी किय जाने वाले अनुदानपत्रा क नमूना म धार्मिक अनुदानपत्रावाली शंकावली का स्थान नहीं दिया गया है । इस अनुदानपत्रा (पत्तलाग्रा) की कोई पुरालिखीय प्रतिलिपि अब तक नहीं मिली है यद्यपि यह निश्चित है कि चौलुक्य शासक ने ऐस अनुदान दिए । पत्तला गण की व्युत्पत्ति प्रमात है । कि तु यदि इसे ही ही गण पत्तन (गुजराती पातल) का प्रारम्भिक रूप माना जा सके तो इसका मतलब हागा भोजन अथवा भरण पोषण का साधन । १३वीं शताब्दी के चले अनुदानपत्रा म प्रमाणेन प्रस्त शंका का प्रयोग हुआ है ।<sup>१</sup> इन शंका का अर्थ हुआ राजा की कृपा से प्रदान किया हुआ । पश्चिमी भारत म १२वीं और १३वीं शताब्दियों म जारी किय गये अनुदानपत्रा म प्रभुप्रमादावाप्त — अथवा प्रभुकीकृपा से प्राप्त — गण नमूने का प्रयोग हुआ है ।<sup>२</sup> मंत्रियों तथा पुरोहिता कादिय गये अनुदानपत्रा म एसी शंकावली का प्रयोग साधारणतः नहीं हुआ है और इससे यह संकेत मिलता है कि जाननी दृष्टि से लेख तो प्रहीता की अनुदान उसकी सवाग्रा या याग्यता क कारण नहीं बल्कि उमक प्रभु की कृपा से ही मिलता था । विविध बात यह है कि किसी भी धर्मोत्तर अनुदानपत्र म प्रहीता के शायित्व का बणन नहीं किया गया है । इनका बणन बवप लेखपद्धति म ही हुआ है । इसलिए पूरे देश के लिए कोई एक बधानिक प्रतिमान नहीं था जिससे कि दोनों पक्ष कोई विवाद उठन या किसी एक के द्वारा दोनों के बीच हुए करार के तोड़ जान पर उसका सहारा लत ।

नीति उपदेश से सम्बन्धित कृतिया म आम तौर पर न सामंता के शायित्व निर्धारित किय गये है और न उनके प्रभुओं के । वास्तविकता यह है कि उन दिना राजनीतिक अनभवा को सिद्धा तवद्ध किया ही नहीं गया । जिस एकमात्र सत्ताधिकार कृति म सामंता के बन् या का निवारण किया गया प्रतीत होता है वह है अग्नि पुराण । यह शासक १०वीं ११वीं शताब्दी की रचना है । इसमें इस सम्बन्ध म जा कुछ कहा गया है उमका आधार मुख्यतः काम दक नीतिसार है जो शासक आठवीं सती म लिखी गई थी । इस कृति म सामंता को परामश

१ ए० ६० १६ न० २० पक्ति ११ ०० न० १६ सी पक्ति १४ ।

२ वहा १६ न० १० पक्ति १७ । इसका एक दूसरा रूप 'प्रमातीकृत' ६० ए० १८ ८४ ८५ पक्ति ८ म मिलता है ।

गिया गया है कि व जन भावना का गान रखे युद्ध म अथन प्रभुआ की सहायता करें, उनक मित्रा तथा सहायका का प्रभु की सहायता के लिए प्रेरित करें और गनु मित्र म भेद करें। आग चल कर उन्हें जनघाण का सूरशा-दुग बनने का कहा गया है।<sup>१</sup> दूसरी ओर राजा का अथन मामना से सावधान रहने का पराम। दिया गया है। मामती जिहाह का बाहरी गतरा बनाया गया है और राजकुमारा मत्रिया तथा अन्य उच्चाधिकारिया के विद्राह का आन्तरिक खतरा।<sup>२</sup> एमलिए अग्नि पुराण म राजा का गवदफादार मामना का कुचल देने की सलाह दी गई है।<sup>३</sup> किंतु इस काल की किमी अथ नीति उपदस-सम्बन्धी वृत्ति म राजा तथा सामना क पारस्परिक दायित्व गायद ही निर्धारित किये गय है।

लेखपद्धति एमी एकमात्र वधानिक वृत्ति है जिसम अनुदानभोगिया क दायित्व बताये गय है। इस पुस्तक म १२वी १३वी सदिया म गुजरात की स्थिति की भाकी मिलती है पर हो सकता है कि राजस्थान और पंजाब के इलाको म एसी ही अवस्था हो। इस पुस्तक म मानपत्र पर लिखे तीन प्रकार के अनुदान पत्रा का हवाला दिया गया है। एक तो है राजभुजपत्तला जिसके द्वारा राजा किमी राणक को मन्दिरा तथा ब्राह्मणा को दान किय गय क्षेत्रा को छोड कर पूरा-का पूरा देग अनुदान म दे सकता था।<sup>४</sup> यहाँ जिस देग शब्द का प्रयोग हुआ है उसस चौनुक्या के अधीन गायद मण्डन का बोध होता था। दूसरा है महामात्य पत्तला, जो महामात्य द्वारा राणक के नाम जारी किया जाना था। राणक उस पत्तला को स्वीकार करते हुए वफादारी और ईमानदारी के साथ दाता को सभी कर देने का वचन देता था।<sup>५</sup> तीसरा है राणक पत्तला जिसम हमें ऐसी तफसीलें मिलती हैं जो उपयुक्त दोना पत्तलाआ म नहीं मिलती। यहाँ राजपुत्र जागीर के लिए राणक स निश्चन करना है और जब उसे एक गाव दिया जाता है तब उसस न केवल अनुदान क्षेत्र म गाति-नुपवम्या बनाये रखने और पुराना तथा गायसम्मत प्रथा के अनुसार राजस्व वसूल करने का वचन लिया जाता है बल्कि उस पर यह दायित्व भी डाला जाता है कि वह

१ अनु० एम० एन० दत्त, २, ८६२।

२ २२६ ११।

३ २२७ ५३।

४ लखरद्वति, पृष्ठ ७।

५ वी।

राणक की सेवा के लिए उसकी राजधानी में १०० घण्टा तथा २० अश्वाराही लाये।<sup>१</sup> साथ ही उस पर यह प्रतिबंध लगाया जाता है कि वह मंदिरा और वाह्याणा को अनुदान में परती जमीन नहीं दे।<sup>२</sup> अथवा वह गांव में अनुदान स्वरूप केवल आबाद जमीन ही प्रदान कर सकता था। इस प्रकार यह धारा भूमिच्छिद्राय के अनुसार प्रचलित पुरानी प्रथा का उलट देती है। भूमिच्छिद्राय के अनुसार प्रारम्भ में पुरोहिता तथा मंदिरा को केवल परती जमीन ही अनुदान में दी जाती थी ताकि वे उसे जोत में लायें यद्यपि पाँचवीं सदी से इस शब्द का प्रयोग शास्त्रस्वरूप आबाद जमीन देनेवाले अनुदानपत्रों में भी होता रहा।<sup>३</sup> उपयुक्त धारा से प्रकट होता है कि परती जमीन को आबाद कराने में भूमि अनुदानों का जो महत्त्व था वह १२वीं शताब्दी के अंत तक गुजरात में समाप्त हो चुका था।

अभिलेखा से किसी भी अनुबंध के सम्बन्धित पक्षों के दायित्वों की ठीक ठीक जानकारी प्राप्त कर सकना बहुत कठिन है किन्तु लेखपद्धति में दिये गये मसौदा में इनके दायित्व बिल्कुल स्पष्ट बताये गये हैं। प्रथम पक्षना में तो ऐसा नहीं बतया गया है लेकिन दूसरा और शिथिलकर तीसरा पक्षना इस बात की मांगी भरना है कि गुजरात में सामन्तवादी राजपद्धति एवं विकसित हो चुकी थी। इन मसौदों से स्पष्ट हो जाना है कि राजा या उसका महामात्य, जिन दोनों का उल्लेख १२वीं और १३वीं शताब्दियों में सामन्तों को दिये गये चौबुक्क अनुदानों में बराबर साथ साथ हुआ है राणका को जागीरें दिया करते थे और ये राणक अनुदान क्षेत्रों में से अपनी इच्छानुसार राजपुत्रों को जागीरें दिया करते थे। यह उपसामन्तीकरण का स्पष्ट उदाहरण है।

और जमा कि ग्राम पट्टके (गाँवों से राजस्व गन्धन करने के अनुबंधों) के मसौदों में पान होता है राजपुत्र लोग भी अपने गाँव उन व्यापारियों तथा उनके पट्ट मित्रों को पट्टे पर दिया करते थे जो उनसे तदर्थ निवृत्त करते थे।<sup>४</sup> एक उदाहरण में एक पञ्चकुस को जिसका मुखिया कोई व्यापारी या

१ 'ग्रामस्य अस्य आयपत्रम भोगवता (भुजता) पदातिजन १०० घण्टक २० एन घण्टक मानुष राजधा याम श्रीमन्माकम मवाकार्या । वी ।

२ नवनरभूमि शासन कस्यापि दवम्य विप्रम्य वा न शक्य । त० प०, पृष्ठ ३ ।

३ १० प० पृष्ठ ३६ ३८ ।

४ त० प० पृष्ठ ८८ ।

महतक (लखपाल) है इस गन पर राजस्व एकत्र करने का अधिकार दिया गया है कि वह ३००० द्रम्म मुख्य राजस्व के रूमा म २१६ द्रम्म पञ्चकुल के पुरस्कारस्वरूप और चालीस द्रम्म फुन्कर खच के तीर पर अग करे।<sup>१</sup> मुख्य राजस्व की अदायगी तीन किस्मा मे करनी है।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त उम व्यापारी और उसके इष्ट मित्रा की जिम्मेवारी है कि यदि लगान म कोई वद्धि की जाये तो वे उसे भी चुकायें और साथ ही किसी पब्लिक को सम्मानित करने क लिए राज परिवार या सरदार के परिवार म किसी कुमार का जन्म होने पर और एस ही अ य मवसरो पर गाँवा पर लगाये जानवाल करों की अदायगी करें, और धान पर होने वाले खच का भी बोझ उठायें।<sup>३</sup> गाँव म राजस्व एकत्र करनेवाले इन नागा की गाव स हो कर गुजरनेवाली सडका की षेव माल का भाग भी सौंपा गया है। इस अनुव क के सम्बन्ध म एक अ य राजपुत्र की गारटी की भी आवश्यकता बताई गई है। वह इस बात की जिम्मेदारी अपने सिर लता है कि उक्त व्यापारी और उसक इष्ट मित्र सागी राशि विधिवत अग करेंग। जिस दस्तावेज मे ये तमाम विवरण दिये गय हैं उसका काल ७४५ इस्वी बनाया गया है, नेकिन निम्सद्दह इससे १२वी १३वी सदिया की राजस्व व्यवस्था पर ही प्रकाश पडता है। ग्राम पटटक की प्रथा से प्रकट हगता है कि बहत स राजपुत्रा के हाथो मे कई गाव थे, और इन सभी गाँवा म व स्वय राजस्व एकत्र नहीं कर सकत थे। इसलिए नकल राशि मे राजस्व का अनुमान लगा कर वे लगान एकत्र करने का काम व्यापारिया को सौंप देते थे। गुजरात म व्यापारिया का कारोबार बहुत अच्छा चलता था। अत उनके लिए यह दायित्व स्वीकार करना आसान था। वे लगान दकर जमीन की जोत का हक प्राप्त करनेवाले किमान नहीं बल्कि एम एजेंट थे जो अपने प्रभु क साथ हुए इकरार नामे की शर्तों स बंधे हुए थे। गाँव का असली मालिक राजपुत्र था, जान केवल भूमि अनुदान दे सकता था बल्कि करा म वद्धि भी कर सकता था और अपनी जमीन लगान वसूल करने के लिए चाहे जिसे दे सकता था।

ग्रामपटटका की अवधि स्पष्टत एक साल होती थी लेकिन राजाभा

१ ल० प० पृष्ठ ६।

२ वही।

३ चणपकमलमागणमागलीयकचतुरवपलितम दशाचारेण दात यम। ले० प०, पृष्ठ ६।

४ ले० प०, पृष्ठ ६।

महामात्या और राणवा द्वारा जारी किये गये अनुदानपत्रों में समय सीमा का कोई संकेत नहीं दिया गया है। शायद ये अनुदान ग्रहीता का जीवन भर के लिए अथवा जबतक उसका व्यवहार ठीक रहे तबतक के लिए दिये जाते थे, और दो फरीका में से किसी भी एक की मृत्यु होने पर उन्हें नया कराना पड़ता था। यह स्पष्ट नहीं है कि राणवा और उसके राजपुत्र सामन्त के बीच कोई विवाद होने पर राजा बीच बचाव करता था या नहीं। ये अनुबंध भोजपत्र पर तैयार किये जाते थे इसलिए इनमें से एक भी उपलब्ध नहीं है लेकिन इनकी प्रामाणिकता में संदेह करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु और सामन्त के सम्बन्ध मुख्यतः समाज में प्रचलित रीति रिवाजों पर ही आधारित थे और १३वीं सदी के पहलू का उनका लिखित रूप अभी तक नहीं मिला है। पूर्ववर्ती काल में जब राज्य बड़े बड़े हुमा करत थे तब लिखित कानून न होने का लाभ उठा कर प्रभु अपने सामन्त पर परम्परागत कृत्याओं के अलावा और भी कृत्य थोप सकता था लेकिन अभी हम जिस काल पर विचार कर रहे हैं उस काल में प्रभु के वजाय सामन्त द्वारा इस स्थिति का लाभ उठाने की अधिक सम्भावना थी। तुर्कों के आक्रमण से पूर्व उत्तर भारत जिस प्रकार अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था उस स्थिति में सामन्तों के लिए अपने प्रभु पर हावी होना आसान था।

सामन्तों और बड़े बड़े राज्याधिकारियों की भूमि अनुदानों के रूप में वेतन देने की बात १२वीं शताब्दी में सिद्धांततः भी भली भाँति स्वीकार कर ली गई। पूर्ववर्ती साहित्य में धार्मिक उद्देश्यों से ग्राम अनुदान देने की महत्ता का विस्तार से बताया गया है किन्तु धर्मोत्तर प्रयोजना से बड़े पैमाने पर भूमि अनुदान देने की सिफारिश नहीं की गई है। मगर १२वीं सदी में रचित मानसाम्तास में इन अनुदान देने का विधान बहुत स्पष्ट ढंग में किया गया है। इसमें राजा को सलाह दी गई है कि वह अपने प्रमुख सामन्तों (सामन्त मान्यकों) और विभिन्न स्तरों के मंत्रियों (यथा मन्त्रा अमात्य सचिव आदि) को तरह-तरह के भू पुरस्कार दें, जिनमें भूमि अनुदान भी शामिल है।<sup>१</sup> आगे कहा गया है कि मन्त्रों बांधवों तथा राजा को सैनिक सहायता एवं परामर्श देनेवाले अन्य लोगों को भी उस उपहार देना चाहिए।<sup>२</sup> कुल मिलाकर १६ प्रकार के उपहारों का उल्लेख है। इनमें गोवा गहरा और खनिज क्षेत्रों के साथ-

१ २ १००६।

२ ४१ १००७।

साथ छत्र चँवर आदि सम्मान सूचक उपहार तथा वाहन ता गामिल हैं ही, इनके प्रतिरिक्त कुमारी ब्याएँ और वारागणाएँ भी भेंट करन को कहा गया है।<sup>१</sup> इसम जिन भूमि अनुदाना का उल्लेख हुआ है व इस प्रकार है—देश्यम, अर्थात् राष्ट्रा (सगडिबीजनी) का दान, जिन पर राजा शायन कर नहीं लेता था, करजम, जो देश्यम स मिलन जुलत ढग का अनुदान था, किन्तु जिसक तिए ग्रहीता को कर दना पडना था,<sup>२</sup> और तीसरा है ग्रामजम, अर्थात् करयुक्त अथवा कर मुक्त ग्राम अनुदान।<sup>३</sup>

मालवा और गुजरात मे ता भूमि अनुदान लगभग सबत्र दिया जाता था। इसका प्रमाण हम मेरुतु ग इत अथचिन्तामणि म मिलता है जिसम लेखक ने परमार भाज और चौतुक्य भीम के विषय मे लिखा है। मेरुतु ग कहता है कि दशाधीश अनुदान म गाव दता है ग्रामाधीन क्षेत्र और क्षत्राधीन साग सति नया हर सुखी-सम्पन्न व्यक्ति अपनी सम्पत्ति दान करता है।<sup>४</sup> इससे यह ध्वनि निकलती है कि १२०४ तक जब कि मेरुतु ग न मपती यह रचना पूरी की गात्रा पर व्यक्तिता के स्वामित्व का सिद्धान्त मली मांति प्रतिष्ठित हो चुका था। उसने जिन ग्रामाधीन का उल्लेख किया है, उनम शायन जन और ब्राह्मण मदिरो तथा पण्डित पुरोहिता की सख्या काफ़ी रही होगी, लेकिन शेष ग्रामाधीन शायद उसे सामन्त या राज्याधिकारी रहे हामे जिह परमार और चौतुक्य राजाओ ने ग्राम नान लिय थे। अक्सर ऐसा भी होना होगा कि पट्टकिल्ले लोग जिह राजा राजस्व बसूल करन के तिए पट अथान सनद प्रदान किया करता था कालांतर मे ग्रामाधीन बन जात हाग और केन्द्रीय कोष को बसूल किय गये राजस्व का छाटा हिस्सा दत हाग।

या तो पूर्ववर्ती साहित्य म भी सामन्त और उसके पर्यायवाची शब्दा का उल्लेख बार-बार हुआ है लेकिन उसम राजनीतिक सामन्तवाद के लिए कोई सद्धार्तिक आधार नहीं प्रस्तुत किया गया है। इससे प्रकट होता ह कि ११वीं सदी

१ २ १०१० ११

२ वही १०११

३ वही १०१६

४ 'दशाधीनो ग्राममेव ददाति, ग्रामाधीन क्षेत्रमेव ददाति, क्षत्राधीश निम्नका सम्प्रदत्त, सनस्तुष्ट सम्पद स्वा ददाति। अथचिन्तामणि, पृष्ठ ५७।

५ ए० इ० ६, न० १३, पविन १८, इ० ए० ६, ४८।



स पुत्र राजनीतिक साम्राज्य की जड़ मोर्चा के अन्तर्गत व बहुत लम्बी  
 गद्दी जम पाई थी। स्मृतिशा के भाग में भी न्यून नई प्रणालि व प्रवि  
 भाष्यकारों की सन्नतता परिवर्तित नहीं होती। अन्तिम विवाहशा ५ अ म मन्त्र  
 शास्त्र का प्रमाण पढ़ाओ व पत्न्यसतता धर्म में ही निवास करे। विविध बात  
 यह है कि राजनीतिक शासन का मन्त्रालय आधार हम वास्तु धीरे धीरे  
 बना विषयक साहित्य में मिलता है। सामन्ती शक्ति का एक मन्त्रालय विद्वान्  
 मानसार में मिलता है जो १-वीं गरी की कति है। न्यून कृति व ४ व धर्मशास्त्र  
 में ऊपर में तो राजशासकी नी शक्ति का उ उक्त किया गया है। मन्त्र  
 ऊपर है अन्तर्गत और उक्त शास्त्र न्यून मन्त्रालय अथवा अधिकांश मन्त्र  
 नरेन्द्र पाणिपत पट्टपर मन्त्रालय पट्टभाज प्रहारक और अन्तर्गत, १ घा  
 है।<sup>१</sup> इन राजशासकी व महत्ता व अनुसार यह भी विचारित किया गया है कि  
 य विद्वान् घात विद्वान् सन्निह विद्वान् गविराज और विद्वान् सन्निहो न्यून  
 सन्निह है। इन राजशासकी में सन्निह नीच घातशासकी मन्त्रालय १०० घात,  
 १०० हाथी ५०,००० सन्निह ५०० मन्त्री सेविहाण और एक राजी रत्न मन्त्रालय  
 है।<sup>२</sup> जम जस राजा की श्रेणी ऊँची होती जाती है यम यम हा मन्त्रालय में  
 भी वृद्धि हाती जाता है और स्वभाव अन्तर्गत की मन्त्रालय अधिक हाथी घोट,  
 सन्निह, सन्निहाण और सन्निहो रगने का अधिकांश किया गया है।<sup>३</sup> मानसार  
 में विभिन्न श्रणिया व राजशासकी के योग्य नी प्रकार व राजमुद्रा और नी प्रकार  
 व राजसिंहासना का भी वणन किया गया है।<sup>४</sup> हमारे लिए मन्त्रालय महत्त्वपूर्ण  
 बात यह है कि इसमें राजा की स्थिति के अनुसार उक्त राजशासकी घटना  
 बढ़ती दर का भी वणन किया गया है। अन्तर्गत उपज का केवल दमकी हिस्सा  
 लता है जबकि मन्त्रालय छठा हिस्सा नरेन्द्र पौषयी हिस्सा पाणिपत शोवा  
 हिस्सा और पट्टपर केवल एक तिहाई ही लता है।<sup>५</sup> मन्त्रालय पट्टभाज,  
 प्रहारक तथा अन्तर्ग्राही इन चार श्रणियों व राजशासकी व राजशासकी का दरें गहा  
 बताइ गई हैं किन्तु सादर का दमते हुए ऐसा माना जा सकता है कि य उपज  
 का अधिकांश या उससे भी अधिक लेते हाथे। इस वर्गीकरण का महत्त्व क्या है ?

१ पी० के० आचार्य, मानसार सिरीज, ६, १२५।

२ वही।

३ वही।

४ वही, १२६। इनका वणन ४५वें और ४६वें अध्याया में किया गया है।

५ वही।

इस विधान के पीछे यह भावना काम करती दिखाई देती है कि निचली श्रेणी के राजा पर यह जिम्मवारी थी कि वह ऊपर की श्रेणी के राजा को कर दे। राजा की श्रेणी जितनी अवर हो वह प्रजा से उतना ही अधिक राजस्व वसूल करे। इस विधान का तात्पर्य यही प्रतीत होता है कि अवर श्रेणी के राजा को अपने से ऊपर की श्रेणीवाले राजा को सामन्ती कर देना पड़ता था। यदि वह प्रजा से अधिक कर नहीं वसूल करता तो उसका राजराज नहीं चल सकता था।

१२वीं सदी में मल्ल भुवनदेश ने भी अपनी वृत्ति अपराजितपृच्छा से महत्ववत्तम से नौ प्रकार के गासको का वणन किया है। वे इस प्रकार हैं महीपति राजा नराधिव महामण्डलेश्वर माण्डलिक महासामन्त, सामन्त, खनु सामन्त और चतुरशिक।<sup>१</sup> इनमें से प्रत्येक के पास जितना क्षेत्र हो, यह भी बनाया गया है। वहाँ महीपति को सम्पूर्ण घरिनी का स्वामी बनाया गया है वहाँ चतुरशिक को १,००० गाँवा का स्वामी कहा गया है।<sup>२</sup> निम्नतम श्रेणी के गासको के पास जितना बड़ा क्षेत्र हो यह तो वही नहीं बनाया गया है किन्तु स्पष्टतः २० से लेकर १०० गाँवा तक के स्वामी इसी श्रेणी में आते थे।<sup>३</sup> वास्तु-कला सम्बन्धी इन दो वृत्तियाँ मशासना का जो वर्गीकरण किया गया है व्यवहार में उसका पालन भी किया जाता रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता फिर भी यह श्रेणी विद्यास मय राज्य के सामन्तवादी राजनीतिक ढाँचे को देखने हुए सवदा उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि उन राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत हमें इस बात का बहुत ही उदाहरण मिलता है कि शासका की अनेक श्रणियाँ होती थी, और इनमें से निम्नतर श्रेणी का शासक अपने से ऊपर की श्रेणी के शासक के अधीन हुआ करता था तथा वह उसे कर देता था और उसका आवश्यक सेवा-सहायता किया करता था और यही सिलसिला नीचे से ऊपर तक श्रेणी पर श्रेणी चला जाता था।

अपराजितपृच्छा में सामन्ती दरबार के गठन का भी वणन किया गया है। इसके अनुसार सभाट (जिसका किन्द महाराजाधिराज परमेश्वर बताया गया है) के दरबार में ४ मण्डलिक, १२ माण्डलिक १६ महासामन्त, ३२ सामन्त १६०

१ स० पी० ए० मन्ड, गा० अ० सि०, न० ११५, प्रारम्भिक पृष्ठ १०।

२ ८१ २१०।

३ वही।

४ ८१ ११ १२।

लघुसामन्त और ८०० चतुरश्रक होना चाहिए।<sup>१</sup> चतुरश्रक से नीचे के समस्त राजपुत्रों का राजपुत्र कहा गया है।<sup>२</sup> इसमें कुछ एक राजपुत्रों की भाय के धारण भी बनाया गया है। इसका अनुसार लघुसामन्त की भाय ५०००, सामन्त की १०००० और महासामन्त की भाय २०००० होनी चाहिए। इस माजना की पुष्टि वास्तुबला-मन्व या १४वीं शताब्दी की एक कृति राजवत्सलभण्डन से भी होती है।<sup>३</sup> अचरितजितपृच्छा में इन सरदारों द्वारा प्रजा से वसूल किया जानवाला राजस्व की दर का विषय में कुछ नहीं कहा गया है लेकिन इसमें राजनीति तथा आर्थिक सत्ता की दृष्टि से एक श्रेणीबद्ध समाज का चित्र अदृश्य दमन को मिलता है।

प्राग्भिन्न धर्मशास्त्रों और तत्सम्यकी भाय कृतिवाम केवल वर्णों के आधार पर राजनीतिक सत्ता का धारण सम्पन्न आदि में विभिन्नता की बलवत्ता की गढ़ है। लेकिन वास्तुबला पर निर्गो पुत्रों में स्थिति बदल जाती है। इनमें निर्गो का धारण वर्णानुगत वर्ण के आधार पर कोई भुविधा नहीं दी गई है। इसके विपरीत वर्ण पर आधारित दर्जे का सामन्त श्रेणी विन्यास पर आधारित दर्जे का भाय सामन्त्य करने का प्रयत्न किया गया है। यह बात मध्यम और बराहमिहिर वृत्त ब्रह्मसंहिता में वास्तुबला पर निर्गो कुछ एक धर्मशास्त्रों में प्रतिबिम्बित होती है। बराहमिहिर ने विभिन्न श्रेणियों का शासन का उपयुक्त समाधान का धारण किया है और साथ ही धारा वर्णों के उपयुक्त निवासस्थानों का भाय। मध्यम के धर्मशास्त्र में समाज का निवासस्थान स्वारह मजिना का जाना चाहिए, प्राज्ञ (द्विजानि) का नी मजिना का सामान्य राजा (नर) का शासन मजिना का धर्म तथा सामान्य मना-नाम (शोधमन्त्र) का धारण मजिना का और गृह का निवासस्थान एक सत्तान मजिना का तथा मध्यम प्रमुख धर्म का धर्म धर्म मजिना का जाना चाहिए।<sup>४</sup> मध्यम की गृह शासन में विभिन्न श्रेणियों का शासन तथा सामन्त का उपयुक्त शासन का धारण बराहमिहिर का धारण अधिक स्पष्टता से किया गया है। किन्तु अचरितजितपृच्छा में निवासस्थानों का धारण प्रकार निर्धारित करने में वर्णों का

ग्याल नहीं किया गया है। उनमें इमका निधारण केवल सामन्ती तत्त्वा के पारस्परिक दर्जों के आधार पर ही किया गया है। इसमें ती श्रेणिया के सरगारा में से प्रत्येक के आवाग का आकार निर्धारित किया गया है। इन सरगारा में महामण्डलेश्वर माण्डलिक महासामन्त और लघुसामन्त व अनिर्दिक्त कुछ और भी शामिल है, जिनका दर्जा उक्त सरगारा से नीचे है।<sup>१</sup> किन्तु सिद्दहार बनवाने की अनुमति केवल चक्रवर्ती महामण्डलेश्वर महासामन्त और सामन्त का ही दी गई है।<sup>२</sup> मानसार के अनुसार सबसे नीचे की दो श्रेणियों के शासक, अर्थात् प्रहारक तथा अम्नग्राही चारा वर्णों के लोग हो सकते हैं और इनके अधिकार तथा सुविधाएँ इम वान पर निर्भर करती हैं कि किम प्रहारक अथवा अम्नग्राही का दर्जा क्या है। इस प्रकार य वृत्तिया समाज म महत्त्व और स्थान का निधारण केवल वर्णों के आधार पर ही नहीं करती, बल्कि उभरनी हुई सामन्तवाणी सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के लिए, जिसकी उपस्था करना अब असम्भव हो गया था एक नया आधार प्रस्तुत करती हैं।

इस अध्याय के अंत में हम निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं कि इस काल में उत्तर भारत में अनेक छोट छोटे राज्य थे, जो या तो भूमि अनुदान की व्यापक प्रथा अथवा शासक परिवार के सदस्यों द्वारा अपना पतक राज्य आपस में बांट लेने के चलन के परिणाम थे। देशक पुराहितों तथा मन्दिरों को अनुदान लिये जाने के जिनके प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं उतने सैनिक तथा प्रशासनिक सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप लिये जाने के नहीं मिलते। मच तो यह है कि जिन प्रमाणा के आधार पर हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि राज्याधिकारियों तथा सामन्तों का अनुदान लिये गये उनमें भी ज्यादा सरथा इन राजपुत्रों द्वारा दिये गये धार्मिक अनुदानों की ही ह। भारत म हम राज्य और धार्मिक मुखिया के बीच बस किसी भगडे का सन्त नहीं मिलता जमा कि यूरोप में पोप तथा राज्य के बीच चलता था। जहाँ १५वीं शताब्दी के मध्य में बरोलिंग राजवंश ने चर्च की सम्पत्ति छीनकर अपने गृहस्थ सामन्तों को दे दी<sup>३</sup> वहाँ भारत के राजवंशों का स्वरूप और गचा चाह जो रहा हो, वे धार्मिक अनुदान देने में एक दूसरे के साथ स्पर्धा सी करते जान पडते हैं। सरकारी अमला का बोलबाला कम होना गया और धार्मिक तथा गृहस्थ सामन्तों का बोलबाला

१ ८१२१२।

२ ८१२१२४।

३ गनगाफ फ्यूटलिज्म, पृष्ठ ३५ ३६।

बन्ता गया वल्कि वास्तविकता यह है कि भूमि अनुदान मिलने के कारण खुश सरकारी अमल भी सामन्ती दर्जा हा प्राप्त करते जा रहे थ। हा पूर्वी भारत म स्थिति गुजरान तथा राजस्थान से भि न थी। इन दो प्रदेशों में प्रभु और माम त के सम्बन्ध व अनुदान पर आधारीन होत थ। पाला और सेना व राज्या में तांत्रना पर दिय गय धर्मोत्तर अनुदानों का अर्थशास्त्र ग्रामाव है। सस प्रकट होता है कि इन राज्यों म सामा य राज्याधिकारिया तथा सामन्ता को कभी भी इतना शक्तिशाली नहीं होने दिया गया कि व अपन अपने अनुदानों के लिए स्थायी आधार का आधार कर सक। चौतुम्बा परमारा चाणमानो गाहडवाला चन्दलो तथा उडीसा व राजबगा के राज्या म स्थिति इसस भिन्न थी।

इस काल की एक विशेषता यह भी है कि वचलदण्ड उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान म अधि कारियों के लिए राजस्व के कुछ हिस्से अलग कर लिय जाते थे। मुस्लिम शासन काल में भी यह प्रथा जारी रही क्याकि हम देखते हैं कि गेरगाह न कुछ कर अपन कर उगाहनेवाले अधिकारिया को वेतन देन व लिए सुरक्षित कर लिये थ। और जागिरी बात यह है कि इस समय तक सामन्ती प्रथा इतनी सुप्रतिष्ठित हो गई कि अब इस सम्बन्ध प्रथा में भी स्थान दिया जाने लगा यद्यपि इन प्रथा की प्रवृत्ति परम्परा पोषण की थी और य धमशास्त्रों में बताई गइ चार वर्णों में विभक्त सामाजिक व्यवस्था से मल न रखनेवाली किसी चीज को सहज ही स्वाकार करने व लिए तयार नहीं थ। मानसोत्तमस, लेखपद्धति तथा कला एवं स्वायत्त से सम्बन्धित कई वृत्तियाँ में सामन्ती श्रेणी विद्यमान था वह चित्र प्रस्तुत किया गया है जो हम पूर्ववर्ती वृत्तियाँ में कहीं नहीं मिलता। इस काल की कुछ पुस्तकों में धर्मोत्तर प्रयोजना से अनुदान देने की साफ साफ सिफारिश की गई है और कुछ म ग्रहीताओं के दायित्व स्पष्ट गाना म बनाय गय है। इन तमाम बातों न शिल्लो के सुलतानों द्वारा जागीर की प्रथा प्रारम्भ करने व लिए उपयुक्त वातावरण तयार कर दिया था।

## सामन्तवादी अर्थव्यवस्था का चर्मोत्कर्ष और हास

(लगभग १०००—१२०० ई०)

तुर्कों की भारत विजय से पहले की दासदियाँ व जो भूमि अनुदानपत्र हमें उपलब्ध हैं उनके आधार पर इस काल में उत्तरी भारत में पुरोहिता मन्त्रिणा सामन्त तथा राज्याधिकारियों का दिया गये ग्राम अनुदानों का क्षेत्रगत विवरण विस्तार से लिया जा सकता है। किन्तु यहाँ संक्षेप में यह दिखलाने की चेष्टा की गई है कि असम में गुजरात और हिमालय से विन्ध्य पर्वतश्रेणी तक ग्राम-अनुदान देने की प्रथा व्यापक बन गयी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि असम में आधिक्य रूप से स्वतंत्र और आत्मनिभर ऐसे गाँव नहीं थे जो किमाना एवं शिल्पियों के बल पर चलते हों। इस प्रदेश में ब्राह्मणों को अनुदान-स्वरूप मुमुक्षु ऐसे बड़े बड़े जंगली एवं पहाड़ी क्षेत्र दिये जाते थे जिनके बीच से नदियाँ बहती थीं और इसलिए आधिक्य दृष्टि से एक दूमर से स्वतंत्र और आत्मनिभर गाँवों का कायम रहना असम्भव था। उदाहरण के लिए बलवम्म के ताम्रपत्र (६७५) में ४००० मापक धान्य पदा करने योग्य क्षेत्र दान किया गया है<sup>१</sup> और रत्नपाल (१०१०-५०) के ताम्रपत्र में २,००० मापक धान्य उत्पन्न करने लायक भूमि दान की गई है।<sup>२</sup> इसी प्रकार इन्द्रपाल के गौहाटी ताम्रपत्र में धार्मिक अनुदान के रूप में ४००० मापक धान्य पदाने करने लायक जमीन दी गई है।<sup>३</sup> इन तीनों उदाहरणों से मली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि बड़े-बड़े उपजाऊ भू-क्षेत्र अब भी धार्मिक उद्देश्यों से दान किये

१ ज० ए० सो० व० ६९, भाग १, २६१-२।

२ वही, ६७, भाग १, १२०।

३ वही, ६६, भाग १, १३०-१, पत्रिका ६६।

जात थे।

अब हम बंगाल की छार भायें, जहाँ पाला और सना का वासन था। इस प्रदेश में बड़-बड़े भू क्षेत्रों की बजाय गाँव ही अनुगत में मिले जाते थे। विचारार्थीन काल के पाल गाँवों के सततीय विग्रहपाल ने आधुनिक मद्रसा त्रिन में किसी स्थान पर आधा गाँव एक आह्वण का दान में लिया।<sup>१</sup> इस प्रकार मदनपाल (११४०-५५) ने उत्तर बंगाल में चम्पाहिट्टिक के किसी आह्वण का एक गाँव लिया।<sup>२</sup> पाला के अधीनस्थ छोटे छोटे राजाओं ने भी इस तरह के अनुदान दिये। इन्द्रधोप ने जो दायर ततीय विग्रहपाल का सामन्त था, उसने बंगाल में चन्दवार के किसी आह्वण का एक गाँव लिया।<sup>३</sup> एक अन्य पाल सामन्त भोजवमन ने पूर्वी बंगाल में ११वीं शती के अन्त में अथवा १२वाँ शती के प्रारम्भ में किसी समय मध्यदेश के एक पुराहित का एक भू क्षेत्र अनुगत स्वस्व में लिया।<sup>४</sup>

चन्द्रा न भी, जो बदायित्त पूर्वी बंगाल में पाला के सामन्त थे, कई अनुगत लिये। श्रीचन्द्र ने एक अनुगतपत्र में धार्मिक प्रयोजनों में कई भू क्षेत्र दान किये। ये सब पुण्ड्रवधनभुक्ति के पाच गाँवों में वितर हुए थे।<sup>५</sup> श्रीचन्द्र इस भुक्ति में एक ही स्थान पर कोई बड़ा क्षेत्र 'गाय' इसलिए दान नहीं कर पाया कि वहाँ गुप्त काग में ही जमीन की बहुत कमी हो चला थी। उसने पौत्र साहसचन्द्र ने ११ पाठक और कई द्रोण भूमि के साथ दो गाँव भी लान्हामाधव देवता को अनुदान में दिये, और फिर तरहवा गताही में धीरधरदेव ने इस देवता का 'गाय' सिलहट जिले में, कि ही दो स्थानों में १७ पाठक भूमि दी।<sup>६</sup> बंगाल के ऐन शासक भी धार्मिक प्रयोजना में ग्राम दान करते रहे। अन्तर केवल इतना था कि कभी-कभी नकद अथवा जिरा के रूप में गाँव की वार्षिक उपज का भी उल्लेख कर दिया जाता था। एक अनुदानपत्र में लक्ष्मणसन ने उत्तर बंगाल में एक गाँव दान किया और साथ ही चार गाँवों में जमीन के कुछ

१ ए० इ० २६ न० ७ पत्तियाँ २४-४२।

२ ज० ए० सा० व०, ६६ भाग १, ६६ सभागे पत्तियाँ २७-४६।

३ इ० व०, ३, न० १६ पत्तियाँ २१-२६।

४ वही पृष्ठ २३-२४, पत्तियाँ २४-५१।

५ वही पृष्ठ १६५-६।

६ धीरधरदेव का मनामती साम्नपत्र। यह पहले डा० ए० एच० दानी के पास था, किन्तु अब पाकिस्तान के पुराने सर्वेक्षण विभाग के कब्जे में है।

टुकड़ भी ।<sup>१</sup> विद्वरूपसेन के शासन काल में ६ गाँवाँ में बिखरे ११ भूखण्ड, जिनके कुल क्षत्रफल का योग ३३६<sup>१</sup> उमान था और जिनसे सालाना ५०० पुराण की ग्रामदानी होती थी, ब्राह्मणों का दान किया गया ।<sup>२</sup> ११वीं और १२वीं सदियों के भूमि अनुदानों को देखने से ऐसा लगता है कि बंगाल में भूमि अनुदान मुख्यतः उसी क्षेत्र तक सीमित था जिसे आज पूर्वी बंगाल कहा जाता है । मगर वहाँ शायद जमीन की कमी के कारण बड़े पैमाने पर अनुदान देना मुश्किल था ।

बिहार में पुरोहिता और मन्दिरों का पहले की ही तरह ग़ुब ग्राम अनुदान मिलत रहे यद्यपि अभी तक मिथिला व बग़ाटा का कोई तात्पर्य प्राप्त नहीं हो पाया है । फिर भी सग्रामगुप्त नामक शासक ने १२वीं अथवा १३वीं शताब्दी में दक्षिण मुग़ल में एक गाँव अनुदान में दिया । १३वीं सदी के प्रारम्भ में जपला के खयरवाल शासक ने पलामू में कुछ गाँव दान किया और साथ ही ब्राह्मणों को यह चेतावनी भी दी कि काई भी ब्राह्मण जाभी अनुदान पत्रों के बल पर किसी गाँव का उपभोग न करे ।<sup>३</sup> कुछ समय तक बिहार का पश्चिमी क्षेत्र खयरवाला के प्रभु गाहड़वाला के हाथों में भी रहा था और तभी एक गाहड़वाल शासक ने ११३८ में मन्तर में एक ब्राह्मण का दान में एक गाँव दिया था ।<sup>४</sup>

गाहड़वालों ने अपने प्रभुत्व के क्षेत्र उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक अनुदान दिए । जैसा कि हम पहले देख चुके हैं एक ही ब्राह्मण परिवार को राज्य के कुल साठ पत्तलाग्रों में सटठारह पत्तलाग्रों में मुख्यतः साप्ताहिक सेवाओं व पुरस्कार स्वरूप सटठारह गाँव अनुदान में लिये गये ।<sup>५</sup> वही प्रवार एक क्षत्रिय राजत को छ जागीरें दी गयीं और एक अन्य राजत को तीन गाँव ।<sup>६</sup>

१ ए० इ० २६, न० १, पृष्ठ ५७ ६ ।

२ इ० व० ३, न० १५, पंक्तियाँ ४२ ६८ ।

३ हाल में इस तरह का एक जाली अनुदानपत्र प्राप्त हुआ है, जो श्री एस० बी० साहिनी, आई० सी० एस०, के पास सुरक्षित है ।

४ ज० वि० ओ० रि० सा० २ ४४३ ८४, पंक्तियाँ ८ १६ ।

५ काल निर्धारण रमा निधागी-कृत हिस्ट्री ऑफ द चन्द्रल डायनेस्ती, परिशिष्ट 'बी' न० १० १३ १५ १६ २१ २३, २६, ३७ ५०, ५२ ५६, ५८ व आधार पर किया गया है ।

६ उपयुक्त पुस्तक पृष्ठ १७३ ४ ।



धर्मतर अनुदान के अनिश्चित गाहड़वाल राजाशा ने बहुत से धार्मिक अनुदान भी दिये । इन तरह के सबसे अधिक अनुदान चन्द्रदेव ने दिये । १०६३ में तो उसने ५०० ब्राह्मणों का एक पूरी पत्तना दे डाली ।<sup>१</sup> पत्तना का क्षेत्र कितना बड़ा था, इसका तो हम कोई ठीक आँकड़ा नहीं है, लेकिन गणना गायद कम से कम १०० गाँव तो हान ही थी । ११०० में दूरी ५०० ब्राह्मणों को उनमें ३२ और गाँव दिये । जब उगन १०६३ में पूरी पत्तना प्रदान की थी उस समय दो गाँव अपने पास ही रख लिये थे । अब जो ३२ गाँव दान किये गये उनमें दो तो यही गाँव न और गाय ३० एक अन्य पत्तना में पटन थे । पूरी पत्तना दान करने का उद्देश्य क्या हो सकता था यह पत्तना की अवस्थिति से कुछ पता चलता है । यह बठहली पत्तना बनारस के निकट पडती थी और इसके तीन ओर गामती भागीरथी तथा बरणा ये तीन नदियाँ बहती थी ।<sup>२</sup> वास्तव में यह क्षेत्र गाहड़वाला की सरा का दो प्रमुख क्षेत्रों में से एक था, दूसरा क्षेत्र बनोज था । इसलिए तथा मानना समीचीन नहीं जान पड़ता कि यह क्षेत्र ५०० ब्राह्मणों को इसलिए दान किया गया कि वहाँ बस और उभे आबाद करें, क्योंकि आबाद तो वह पहले से ही रहा होगा । यह अनुदान गायद पुरोहिता को सन्तुष्ट करने की नीति का परिणाम था क्योंकि गाहड़वालों के अंगीन उनर प्रदेश की समाज-व्यवस्था में पुरोहिता का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण था । जो भी हा इतना तो स्पष्ट है कि ५०० ब्राह्मणों का १३० गाँव दान में दिये गये । अन्य भी पुरोहिता और ब्राह्मणों का ग्राम समूह बनाना जारी रहा । गाँव दान में कुछ ब्रह्मतामा को ६ गाँव दिये और जयचक्र ने भी ।<sup>३</sup> इसके अनिश्चित गाहड़वाल परिवार के राज कुमारा अयडा रानिषा ने भी राजा की अनुमति से दो या तीन गाँव दान किये ।<sup>४</sup> उपलब्ध प्रमाणों से प्रकट होता है कि गाहड़वाल राजाशा ने सामाजिक प्रयाजना की अपेक्षा धार्मिक प्रयाजना में बहुत अधिक गाँव दान किये । किन्तु हमारे अध्ययन की दृष्टि से ज्यादा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यद्यपि गाहड़वालों के राज्य में पूरा धार्मिक उत्तर प्रदेश भी शामिल नहीं था और दक्षिण में

१ ए० इ० १८, न० १५ ।

२ रमा नियोगी, स० प्र० पु०, पृष्ठ १८७ ।

३ ए० इ०, ११ न० ३ पक्ति १२ ।

४ ए० ए० १८, पृष्ठ १३१ पक्ति २० ।

५ पी० नियोगी दि इन्डो-हिन्दू इन्डिया ऑफ नॉर्थवेस्ट इंडिया पृष्ठ ५१२ ।

उसकी सीमा गायद यमुना से आगे भी नहीं पहुँचती थी, फिर भी उस राज्य का एक पूरी पत्तला, जिसमें कम-से कम १०० गाँव रहें होंगे, तथा ११० अन्य गाँव<sup>१</sup> गहस्य एवं धार्मिक ग्रहीताओं के हाथों में थे। ये अनुदानभागी केन्द्रीय सत्ता को किसी प्रकार का बर नहीं देते थे और प्रजा तथा राजा के बीच महत्वपूर्ण बग का काम करते थे।

अब हम गाहड़वालाना के पड़ोसी राजवंश चन्दवा को लें। चन्दवा का राज्य यमुना से दक्षिण बुंदेलखण्ड में था। यहाँ भी स्थिति गाहड़वालों के राज्य से बहुत भिन्न नहीं थी। बुंदेलखण्ड में अधिकांश अनुदानों में एक एक गाँव ही दान किया गया, और चन्दवा राजाओं ने गहस्य तथा धार्मिक ग्रहीताओं को अलग अलग कुल मिलाकर १५ गाँव दिये।<sup>२</sup> केवल इन्हीं अनुदानों के आधार पर विचार करने से प्रतीत होगा कि मुख्यतः सैनिक नवाओं का पुरस्कार-स्वरूप अनुदान पानेवाले ग्रहीता भी उतने ही महत्वपूर्ण थे जितने कि धार्मिक ग्रहीता। लेकिन ऐसा निष्कर्ष तभी निकाला जा सकता है जब परमर्दिन के एक अभिलेख को छोड़ दिया जाय। उसके ११६७ के समरा साम्रपत्रों में ३०६ ब्राह्मणों को चार विषयों में विचारे कई गाँव दान किये गये हैं।<sup>३</sup> इन साम्रपत्रों में केवल ११ स्थानों के ही नाम दिये गये हैं इसलिए ऐसा लगना स्वाभाविक ही है कि केवल इतने ही गाँव दान किये गये। लेकिन अगर हम इन नामों पर ध्यान से विचार करें तो देखेंगे कि इनमें से कुछ से ग्राम समूहों का बोध होता है। इस प्रकार पीलियिनी पंचेल इटाव पंचेल और इसरहार पंचेल तीन अलग अलग गाँव नहीं, बल्कि पाँच पाँच गाँवों के तीन समूह थे। इसी तरह खटौल-द्वाराक और टाण्टद्वाराक से चारह चारह गाँवों के दो समूहों का बोध होता है और हाण्टद्वाराक एक नहीं बल्कि अठारह गाँवों का सूचक है। दोष पाँच नामों से एक एक गाँव का बोध होता है। इस प्रकार परमर्दिन के इस अभिलेख में ६२ गाँव दान किये गये। यह देखते हुए कि ग्रहीताओं की संख्या ३०६ थी अनुदान गाँवों की यह संख्या अधिक नहीं मानी जानी चाहिए। लेकिन इस अनुदान में

१ रमा नियागी की सं० प्र० पु० के परिशिष्ट 'बी' के बग ए, खण्ड २ में दिये गये भूमिदानपत्रों के आधार पर अनुमानित।

२ एस० के० मित्र कृत दि अला रलस ऑफ खजुराहो, परिशिष्ट १ के आधार पर अनुमानित। लेकिन इनमें से १५वाँ गाँव अलाक्यवमन के टिहरी पत्रों के आधार पर जोड़ा गया है।

३ ए० इ ४, न० २०।

मन्तपुर शहर और ११ गाँव तथा गहर गे संजुवा ४४१ जमीन सामित नही की गयी है। दूसरे भा हमारी ११ गाँवों का पुर्ण हारी है कि स्थानों के अधिकांग नाम एक एक गाँव के अलग अलग गाँवों के गूँव हैं। ११ गाँवों का पुराहित्य तथा धर्म लोगों का जमीन के और भी बड़ा गे टकराने के प्रमाण मिला है। हमारे अध्ययन की दृष्टि में जो तथा अधिकांश गाँवों के वंश विद्वानों तथा धर्म अभिनेताओं में भा मन्तपुरवासी का उपासक है। वे अग्रहार धर्मिक तथा धार्मिक प्रथाओं के अनुयायी हैं। ११ गाँवों में जहाँ से उग्रहर धर्मिक लोग धर्म शायक जाकर बसते हैं। मन्तपुर हम एक गाँव का विचार न करते तब भी धर्मियों द्वारा गाँवों के धर्मिकों की गरमा गरम भय ८० तक पहुँच जाता है। मुन्तपुरवासी धर्मिकों के भूमि के ११११ (८००० वर्गमास) का ध्यान में रखा हुआ यह कार्य छोटा मन्तपुरवासी है।

गुजरात के सोनुवा १ भी मन्तपुरवासी धर्मिक हैं। पुराहित्य तथा जन और हिंदू धर्मियों का धर्मिक धर्मियों का तात्पर्य द्वारा जो धर्मिक दिये गए उनमें से अधिकांग में एक एक गाँव का ही धर्म सामित है यद्यपि कुल मिलाकर एक गाँव की संख्या दस हजार से कम नहीं है। लेकिन प्रथम अधिकांग में जो एक अधिकांग धर्मिक सामित हैं वे धर्मिकों का है कि बालाजय में सिद्धराज में धर्मिकों के लिए सिद्धपुर नामक एक अग्रहार स्थापित किया जिसमें १०६ गाँव सामित हैं। सोनुवा १ में बहुत-से धर्मिक धर्मिकों के धर्मिकों के लिए धर्मिकों दिये गए हैं। कुमारपाल ने १४४० जन धर्मिक धर्मिकों—गाँव प्रत्येक गाँव में एक एक है। हमें यह जानकारी तो नहीं है कि इस धर्मिकों के निर्वाह के लिए कितने गाँव दिये गए लेकिन मुसलमान इतिहासकार ने सोमनाथ मंदिर के अधीनस्थ गाँवों की जो संख्या बताई है उसे देखकर धर्मिकों होना है। कहा गया है कि १०,००० एक गाँव जिनमें भली भाँति सती बाही होती थी, इस मंदिर के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे। यह संख्या भले ही अतिरिक्त है। लेकिन इस धर्मिकों की सचाई में सदेह करने का कारण नहीं दिखाई देता कि 'हिंदुस्तान के विभिन्न

१ ६० ए०, ६ पृष्ठ १६१, १६३, १६६, १८, पृष्ठ १०८, ११ पृष्ठ ३३७ आदि।

२ ए० व० मजुमदार चौलुक्याज ऑफ गुजरात, पृष्ठ ३१८ ६। सिद्धराज ने सि०पुर अग्रहार में अनेक गाँव दान किये। वही, पृष्ठ २११।

३ इपिपट व दावसन ४ १८।

राजाओं ने इस कुल मिलाकर दो हजार गांव दान किये। जो भी हा इतना तो निश्चय ही है कि अब किसी भी धार्मिक सस्याक अधीन इतना अधिन गांव नहीं थे। यहाँ तक कि नालंदा के पास भी केवल २०० गांव ही थे।

एसा लगता है कि चौतुक्या ने जिस उदारता से धार्मिक प्रहीताओं का ग्राम अनुदान दिया, उसी उदारता से सामन्त और रायाधिकारियों को भी दिये। गायद १२६ गांवों की एक इकाई राज परिवार के सदस्यों के रूप में राजा के उपभोगों में भी दिया गया था।<sup>१</sup> सामन्त तथा राज्याधिकारियों को जागीरों के रूप में बड़े-बड़े क्षेत्र दिये गये। १२०६ में तो एक उच्च अधिकारी को, जिस भीमदेव ने जागीर के रूप में शायद मारा सोराष्ट्र मण्डल दे दिया था एक सम्पूर्ण पत्तला दान किये जाने का भी उल्लेख मिलता है।<sup>२</sup> प्रबंध चिन्तामणि में ज्ञात होता है कि कुमारपाल ने अलिंग नामक एक कुम्भकार को चिन्कूट नाम की पट्टिका अनुदान में दे दी, जिसमें ७०० गांव शामिल थे।<sup>३</sup> सम्भव है कि यह सख्या अतिरिक्त है। इसी प्रकार रासमाला में वर्णित यह अनुश्रुति भी अतिरिक्त हो सकती है कि मूलराज ने बहुत सारे श्रौतिय ब्राह्मणों को गुजरात बुलाकर उन्हें अनेक गांव दान में दिये। अभी तक इसकी पुष्टि किसी अभिलेख से नहीं हो सकी है।<sup>४</sup> लेकिन यह अनुश्रुति कि मूलराज ने ब्राह्मणों को सिद्धपुर का मुदर और समद्व नगर दान में दिये और साथ ही सिद्धपुर और सिहार के निकट बहुत-से ब्राह्मणों का अनेक छोटे छोटे गांव भी दिये गये या अविश्वनीय नहीं मानी जा सकती। ब्राह्मण लोग मुख्यतः कन्नौज और उज्जैन से गुजरात में बुलाये गये थे और गुजरात आकर वे मठा के सम्स्थापक या प्रधान बन गये।<sup>५</sup> गुजरात में ब्राह्मणों की श्रष्टेया मंदिरों को अधिक गांव दिये गये और वहाँ ब्राह्मण इन मंदिरों के पुरोहित अथवा यासी

१ ए० इ०, १ न० ३६, पंक्तियाँ ३८। यहाँ प्रयुक्त स्वभुज्यमान शब्द का अर्थ अत्यन्त रूप से राजा द्वारा मुक्त क्षेत्र हो सकता है।

२ इ० ए० १८ ११३ पंक्तियाँ १६०३।

३ मरतु गाचाय इत प्रवचिन्तामणि सं० जिन विजय मुनि, पृष्ठ ८०।

४ एच० डी० संकलिया प्राग्निर्वालोना और गुजरात पृष्ठ २०८।

५ फास्म, राममाला पृष्ठ ६४८ लक्ष्मी शंकर व्यास इत चौलुक्य कुनागपाल (दिने वृत्ति), पृष्ठ १७७ पर उद्धृत।

६ संकलिया, म० प्र० पु० पृष्ठ २०६।

वन गय ।<sup>१</sup> भूमि अनुदानों के ये सारे पुरालखीय तथा साहित्यिक प्रमाण इस बात की साक्षी भरत हैं कि गुजरात के चौतुया वंश की धार्मिक और विद्यापति गृहस्थ ग्रहीताओं के हाथों में बहुत बड़ा क्षेत्र था ।

इस काल में बघलखण्ड में अनुदत्त क्षेत्र का भी एक मोटा अंश हम ले सकते हैं । यह क्षेत्र १०वीं से १२वीं सदी तक कलचुरि राजवंश की विभिन्न शाखाओं के शासन में था । यज्ञ गांव मुख्यतः ब्राह्मणों को ही दान किया गया । उनके सहयोग और समर्थन से कलचुरि सामंत पिउडे इलाका पर अपना नियंत्रण रख सकते थे । अधिकांश अनुदानों में एक-एक गांव ही दान किया गया ।<sup>२</sup> उदाहरण के लिए कण (१०४१-७३) ने वशाली के एक ग्रहीता को एक गांव दान किया ।<sup>३</sup> लेकिन एक अनुदानपत्र से पता चलता है कि राजा और राजपरिवार के सरस्वती नगर उस नगर के विष्णु मंदिर से सम्बद्ध ब्राह्मणों को ५ गांव दिये ।<sup>४</sup> द्वितीय युवराजदेव के एक अभिलेख में पता चलता है कि उसकी प्रिय पत्नी नोहाला ने किसी शिव मंदिर को २ और शिव मंदिर को ७ गांव अनुदान में दिये ।<sup>५</sup> उसने एक अन्य अनुदान में गांव २३ और २३ नहीं तो कम से कम १६ गांव दान दिये हैं ।<sup>६</sup> कलचुरियों की गारखपुर की सरयूगढ़ शाखा ने भी भूमि अनुदान दिये । सोडदेव (११३५) द्वारा १४ ब्राह्मणों को दिये गए अनुदान से पता चलता है कि दान किया गया २० गांवों का एक गांवों में विखरा हुआ था ।<sup>७</sup> त्रिपुरी तथा रतनपुर के कलचुरियों और उनके सामन्तों के अनुदानपत्रों से पता चलता है कि उन्होंने धार्मिक प्रयोजनों के लिए कुल मिलाकर ६५ गांव अनुदान में दिये । यह संख्या उतनी बड़ी नहीं है जितनी बड़ा संख्या में वे देना ने ग्राम दान दिये । लेकिन यदि हम एक अभि-

१ वही ।

२ का० ६०-६०, ४ न० ६३, पंक्ति १६-२५ श्लोक २६-३० ।

३ वही न० २६० पंक्ति ३२-४१ ।

४ वही न० ४२ श्लोक ३०-६२ ।

५ वही न० ६५ श्लोक ४३-४५ ।

६ वही न० ६६ श्लोक ३६-४२ ।

७ वही न० ७४ श्लोक ३० पंक्ति ३२-४६ । हाल में एक विद्वान ने यह मत प्रकट किया है कि इस अभिलेख में उल्लिखित छठे स्थान नामों को एक ही गांव के छठे पुत्र माना जा सकता है (पी० निपागी स० प्र० पु० पृष्ठ १६) लेकिन लगता है अमल में तात्पर्य छठे गांव से ही है ।

लेख में अर्थात् एक अनुश्रुति का विश्वास कर तो मानना होगा कि त्रिपुरी राज्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा किमी मठ को अनुदान में दे दिया गया। इस अभिलेख के अनुसार गालकी मठ के प्रधान सदभाव रामु को कलचुरी राजा प्रथम युवराज सतीन लाख गाँवों का अनुदान प्राप्त हुआ। अनुश्रुति के अनुसार प्रथम युवराज के राज्य के केंद्रीय प्रदेश डहल में नौ लाख गाँव शामिल थे।<sup>१</sup> इस प्रकार उसने अपने कुल राजस्व का एक-तिहाई उस मठ को अनुदान में दे दिया। स्पष्टतः यह अनुश्रुति अथवा सत्य नहीं होती क्योंकि उसके राज्य में नौ लाख गाँव कहाँ सँभ सके थे? परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि कलचुरी राजाओं ने मठा को मुक्तहस्त कर देना दिया।<sup>२</sup> इनके दान दक्षिण का लाभ विनापकर शिव मठा को प्राप्त हुआ और जिस प्रकार हर्ष तथा पाल राजाओं के शासन-काल में बौद्ध मठ एक महत्वपूर्ण भूमिधर मध्यवर्ती वर्ग बन गये थे, उसी प्रकार कलचुरियों के राज्य में गाँव मठा का उभय हुआ।

मध्य भारत का पश्चिमी हिस्सा मालवा ११वीं और १२वीं सदियों में परमारा के अधीन था। यहाँ हम कुछ अलग ढंग की तसवीर देखने का मिलती है। यहाँ राज परिवार के लागे सामन्त तथा राज्याधिकारियों के हाथों में गायद ज्यादा जमीन थी और कुल मिलाकर ऐसा जान पड़ता है कि अनुदान भूमि के एक बहुत बड़े हिस्से की व्यवस्था पुराहिना तथा मंदिरों के बजाय इन लोगों के हाथों में थी। परमार राज्य के सीमावर्ती क्षेत्रों में एक सामन्त के हाथों में शायद १५०० गाँव थे जो उस राज्य की सत्ता का पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुए थे। मालवा तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में इस तरह अनेक जागीरों में वोट जाने का मुख्य कारण शायद यह था कि वहाँ का शासक परिवार सारी सम्पत्ति अपने सदस्यों के बीच बराबर बराबर बाँट लेने की परम्परा में विश्वास रखता था। उन्होंने इस राजवंश की अलग अलग लगभग आधा दत्तन शाखाओं की स्थापना की थी। परमार राज्य का अधिकांश हिस्सा गायद जागीरों में बाँटा हुआ था। धार्मिक प्रयोजनों से दान किये गाँवों की संख्या बहुत कम जान पड़ती है, और इस तरह के जा अनुदान दिए गये उनमें मुख्यतः एक एक गाँव ही शामिल था।<sup>३</sup> इनके अलावा धार्मिक उद्देश्यों से जमीन के छोट छोट टुकड़े

१ मिरासी का० इ० इ०, ४ प्रारम्भिक पृष्ठ १५८।

२ वही

३ ए० इ०, १ न० ३६ अनुदान ए० इ० ए०, ६, पृष्ठ ५२ ३ पत्तियाँ ७ २४, ए० इ० ८ न० २१, पृष्ठ २०६ ६ न० १३ वी।

भी दात निय जात थ ।<sup>१</sup>

राज परिवार व सभ्या व बीस मीरा व बाँट दिय जात के अतिर उपाहरण ग्राहमात अतिवता म मित्त है । आत्मात राज्य का जो सभ्या राजसभ्यात म पडता था, उनम ता ऐग मीरा की सभ्या कम ही जात पडता है जित्त स्वामी मी 'र' घोर आत्मात थ । सभ्या ता अतिवता है कि वहाँ जित्त मीरा राज परिवार व कुटुम्बिया अय गामता तथा राजसभ्यातारिया व हाया म थ उनन मीरा घोर आत्मात व हाया म गृही थ । १७७१ का अन्तर गृही कि राज परिवार व उक्त कुटुम्बिया अय गाम त तथा राजसभ्यातारिया स्वय भी धार्मिक प्रयातना स यत्न कता ग्राम जान दिया करत थ ।

१०वीं सती व उत्तराध म घोर ११वीं सती म सभ्या व पहाडी राज्य म भी धार्मिक उद्देश्यो म भूमि अनुदान दिय गय घोर कभी-कभी य अनुदान अग्रहारा व रूप म भी दिय गय ।<sup>२</sup> सक्ति वही ग्राम अनुदान दिय जान का वार्द प्रमाण नती मित्तता । गायन मीरा व सामक जमीन का कमा व कारण जमीन व छोटे छोटे टुकट ही अनुदान म दिय जान थ । गहस्या को भी भूमि-अनुदान दिय जान थ<sup>३</sup> यद्यपि इन बात का वार्द मीरा अन्तरा सगता भा कठिन है कि विभिन्न प्रकार व यीताया के हाया म उरहारा या जागीरा व रूप म कुल मित्तारर मित्तनी जमीन थी ।

८वीं स लेटर १०वीं सती तत जब उत्तर भारत म पाला घोर प्रतीहारा का सासन था इत क्षेत्र म दिय गय ग्राम अनुदाना व जिनन अतिवता मित्तन है उनसे बचुन अतिव दिल्ही सत्तनत की स्थापना स पहल की तीन सदिया म मित्तने हैं । उत्तर प्रदेश घोर मध्य भारत म प्रतीहारा व समय म इतने अतिव गाँव अनुदान म कभी नही दिय गय थ । वास्तव म ११वाँ घोर १२वाँ सभ्या म भूमि अनुदान देने का चलन उत्तर भारत म सबत्र फल गया । मालवा गुजरात घोर राजस्थान के अतिवता स ऐसा जान पडता है कि इन क्षेत्रा म जमीन का अधिकांश हिस्सा जागीरो के रूप म राज परिवार व कुटुम्बिया

१ ए० इ० ११, न० १८, पक्तियाँ ७ १८ ।

२ ए कापर प्लेन ग्राट आफ अल्हणस रेन वी० १२०५ ' दशरथ शर्मा अला चौदान इन्वेस्टीग पृष्ठ १८१ २, पक्तियाँ १३ १४ ।

३ आ० स० इ० १६०२ ३, पृष्ठ २५२ ३, पक्तियाँ ११ २५ पृष्ठ २६० १, पक्तियाँ १५ ३२ ।

४ वहा ।

सामन्ता तथा राज्याधिकारिया के हाथा म ही था, और एसा लगता है कि इन क्षेत्रा म इन गृहस्थ ग्रहीताआ को पुरोहिता तथा मन्दिरा को अर्पेदा अधिक ग्राम अनुदान दिय गये । लेकिन उत्तर प्रदण और मध्य भारत म पुरोहितो के हाथा म गृहस्थ ग्रहीताआ की अर्पणा अधिक भूमि थी । बिहार, बगाल और अमन मे इस विषय म तथ्या और आंकडा का बडा अभाव है । इसलिए जो थोडी-सा जानबारी हम मिनती है, उसके आधार पर कोई सामान्य निष्कप निकालना निरापद नही होगा । हा, हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि इन क्षेत्रा मे नानदा जस मठ और बिहार मुसलमान विजेताआ के आगमन के समय तक फूलन फलत रह और अनकानक गाँवो का उपभोग करते रहे ।

धार्मिक अनुदाना अथवा धर्मतर जागीरा क रूप म भोगिया के हाथा मे जा गाँव थ उनकी सत्था और अनुपात के विषय म कुछ कह सकना असम्भव है । एमा कोई अर्थमन अभी तक यूरोप क सम्बन्ध मे भी नही हुआ है, यद्यपि यूरोपीय दणा म इन विषय मे काफी साक्ष्य प्रमाण उपलब्ध हैं । उत्तर भारत म यदि हम अभिलेखा म उल्लिखित सभी अनुदत्त गाँवो का योग निकाल लें तो कुल गाँवो की तुलना म अनुपात क्या था, यह कहना असम्भव होगा क्याकि हम कुन गाँवो की सख्या मालूम नही है । फिर भी, इस काल के भूमि अनुदानपत्र इस बात क निर्विवाद प्रमाण है कि धार्मिक तथा धर्मतर अनुदान के रूप में गाव अन का चलन बहुत व्यापक हो चला था, और इस काय के निमित्त उत्तर भारत के राज्य महासाधिविग्रहिक, महाक्षपटलिक और धमलखी जस कई तरह के अधिकारी विशेष रूप से रखने थे । इस सब का मतलब यह था कि विभिन्न स्तरा के भूमिधर मध्यवर्ती लोगो की सत्था काफी बढ गयी थी—जो इस काल की अर्थव्यवस्था की विशेषता थी ।

पाला तथा प्रतीहारो के राज्यो म सामान्यतया अनुदत्त गावो की सीमाएँ स्पष्ट रूप से निर्धारित नही की जाती थी ।<sup>१</sup> इससे एक ओर जहाँ अनुदान-भागिया को अपने अपने निजी क्षेत्रा की सीमा म वद्धि करने की सुविधा प्राप्त हुई वहाँ दूसरी ओर इसका एक लाभ यह हुआ कि कृषि योग्य भूमि के क्षेत्र मे विस्तार हुआ क्योंकि सीमा निर्धारित न होने के कारण अनुदानभोगी अनुदत्त गावो के आसपास के जंगला और परती जमीन को कोड-कमाकर खेती के लायक बनवा लेते थे । जहाँ तक पूर्वी बिहार और बगाल का सम्बन्ध है, एसा

१ लेकिन कतिपय पाल और राष्ट्रकूट अनुदानपत्रा म अनुदत्त गावो के परिवेगा का उल्लेख करके सीमा का स्पष्ट निर्धारण कर दिया गया है ।



जान पड़ता है कि ११वीं और १२वीं सन्धिया में प्रथम महीना (१८८८-१०३८) 'तृतीय विग्रहनाम' और मन्नाम (११४०-५०) का शासन-काल मन्नुत्त गाँवा की सीमा अनिर्धारित छोड़ देने का चलन कायम रहा। इन राजाओं के मनुदानपत्रों में जो गाँव दान दिये गए हैं उनकी सीमाओं का रूप में सिफ़ धारा-धारा की गोबर भूमि और भाट लगना का ही उल्लेख किया गया है। सीमा अनिर्धारित करने के चलन का अनुसरण पूर्वी बंगाल के यमना और पाल राजाओं का कुछ समय तक भी किया। बंगाल भाग पत्तार भी गया के पास पीठी के मन राजाओं और सद्दामगुप्त ने जो १२वीं सन्धि के अन्तिम वर्षों में अथवा १३वीं सन्धि के प्रारम्भ में दक्षिण मुग़ल में पासन करता था इन चलन का कायम रखा। यद्यपि सद्दामगुप्त के मनुदानपत्र में मनु सीमा-विच्छिन्न का प्रयोग हुआ है लेकिन वास्तव में सीमा निर्धारित नहीं की गयी है।

लेकिन मन राजा जिन्होंने १२वीं सदी में और १३वीं सन्धि के प्रारम्भ में पूर्वी बंगाल में धीरे-धीरे बमना के प्रभुत्व को समाप्त कर लिया और पाल राज्य के एक बहुत बड़े हिस्से पर क़ाज़ा कर लिया मनुदत्त गाँवा और जमोन के टुकड़ों की सीमाएँ बराबर निर्धारित कर दिया करते थे। चन्द्रा न भी, जो पूर्वी बंगाल में गायक सेना के समकापीन शासक थे इस चलन का अनुसरण किया। लाडहचन्द्र के मनामती साम्राज्यों में मनुदत्त गाँवा की सीमाएँ साफ़

१ ७० ई० २६ न० १, 'बी' पक्ति ४१। लेकिन बेलवा साम्राज्य के नाम से पात यह मनुदानपत्र ६६२ ई० के आस पास जारी किया गया।

२ वही, न० ७ पक्ति ३२।

३ ज० ए० सी० व० ६६, भाग १ ६६ से आगे पक्ति ३६।

४ वही-वही प्रति शब्द के बदले 'प्रति का प्रयोग हुआ है।

५ इ० व०, ३ पृष्ठ २३ ४ पक्ति ३७ ४१।

६ ज० वि० ओ० रि० सी०, ४ २८०, प्लान २३।

७ वही पृष्ठ १५६ ७ पक्ति २१ ३२।

८ वही, ५ ५६३ ४, पक्ति १०।

९ वही।

१० इ० व० ३, पृष्ठ ७८, पक्ति ३७ ४४, पृष्ठ ११४ १५, पक्ति ३६-५१, पृष्ठ १२६ ३१ पक्ति ४६ ५०।

साफ बता दी गयी हैं।<sup>१</sup> बाद में चलकर इस प्रकार अनुदत्त क्षेत्रों की सीमाएँ, क्षत्रफल तथा आय व निधारित क्रिये जान से ऐसा प्रतीत होता है कि अनुदानों के परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर अधिकाधिक जमीन के खेती लायक बनाय जान की सम्भावना अब समाप्त हो गयी थी। इस काल में अगम पर यह बात लागू नहीं हो सकती थी, यद्यपि यहाँ के अभिलेखा में अनुदत्त जमीन के टुकड़े की सीमाएँ और उनसे होनेवाली उपज स्पष्ट शब्दों में बता दी गयी हैं।<sup>२</sup> असम में सीमा निर्धारित करने का कारण शायद यह था कि वहाँ गावों की बजाय जमीन के टुकड़े ही दान क्रिये जान थे। परन्तु आमतौर पर ऐसा लगता है कि अनुदत्त क्षेत्रों की सीमाएँ निर्धारित होने के कारण अनुदानभागी अब अपना क्षेत्र विस्तार नहीं कर पाते होंगे।

पूर्वी बंगाल के विपरीत, उत्तर प्रदेश में गाहड़वाला तथा उनके सामन्तों द्वारा अनुदान में दिये गये गावों की सीमाएँ आमतौर पर नहीं बनायी गयी हैं। इस सम्बन्ध में सामान्यतया 'सीमापयत ग्राम' शब्दावली का प्रयोग किया गया है पर सीमा क्या है इसके लिए चतुराघाटविशुद्ध शब्द का व्यवहार हुआ है जिसका अर्थ है प्रतिस्पर्शी सीमाएँ। स्पष्ट है कि प्रतिस्पर्शी सीमाएँ कहने से किसी निश्चित सीमा का दावा नहीं होता है। वास्तव में केवल एक ही गाहड़वाल अनुदानपत्र में अनुदत्त गाँव की चारों सीमाएँ स्पष्ट रूप से बतायी गयी हैं। वह है गान्धि दचन्द्र का बसाही अनुदानपत्र।<sup>३</sup> गाहड़वाला ने अधिकांश भूमि अनुदान विक्रमिण क्षेत्रों में ही दिये। इसलिए सीमा निर्धारित करने का कारण समझ में नहीं आता। शायद एसा मान लिया जाता होगा कि अनुदत्त क्षेत्रों की सीमाएँ तो सबका पाते हैं ही इसलिए उनका उल्लेख क्या किया जाये? लेकिन अगर ऐसा मानकर ही सीमाएँ निर्धारित नहीं की जाती थी, तो भी ऐसी सम्भावना दिखायी देती है कि भोगी इस स्थिति का लाभ अपने निजी क्षेत्र के विस्तार के लिए उठाने में बाज नहीं आये होंगे।

१ सामन्तपत्र १ पृष्ठ ६११, सामन्तपत्र २, पृष्ठ ८११। ये सामन्तपत्र अब पाकिस्तान पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग में सुरक्षित हैं।

२ ज० ए० सो० व ६६ भाग १ पृष्ठ २६५-७, वही, ६७ भाग १, पृष्ठ १२० वही ६६, भाग १ पृष्ठ १३०-१।

३ इ० ए०, १८ ११ १६, १३१, १३६, १३७, १३८, १४०, १४१, १४३।

४ वही।

५ इ० ए०, १६, १०३।

वधेलखण्ड के बलचुरि राय म भी अनुदत्त गाँव की सीमा नहीं बतायी जाती थी। त्रिपुरी तथा रतनपुर के बलचुरिया और उनके सामंता द्वारा जिन ६५ गाँवों के अनुदान में न्यून जान के अभिलेखीय प्रमाण मिलते हैं,<sup>१</sup> उनमें से एक की भी सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। बहुत-से अनुदत्त गाँवों का तो केवल उल्लेख मात्र कर दिया गया है और उनके सम्बंध में महा काई तफसील नहीं दी गयी है। विगपकर बलचुरिया के सामंता द्वारा अनुदत्त गाँवों पर यह बात लागू होगी है। इस सबका एक कारण समझ में आता है। वह यह है कि बाहर से—विशेषकर उत्तर प्रदेश से—ग्राह्य लोग आकर मध्य भारत में बसते थे। इससे खनीवाड़ी के नये-नये तरीक़ों का इस क्षेत्र में चलन हुआ होगा और फलतः यहाँ की वृद्धि के विकास में मदद मिली होगी। लेकिन साथ ही इसका एक नतीजा यह भी हुआ होगा कि अनुदत्त गाँवों में भूमि पर किसानों का स्वामित्व स्थापित नहीं हो पाता होगा।

जो स्थिति मध्य भारत के पूर्वी हिस्से की थी, वही मालवा के पश्चिमी हिस्से की भी थी। यहाँ भी परमार राजाओं के अनुदान पत्रों में अनुदत्त गाँवों की सीमाएँ निर्धारित नहीं की गयी हैं। एक अनुदान में यह कहा गया है कि इस गाँव का विस्तार एक कोस<sup>३</sup> है लेकिन अन्य अनुदान-पत्रों में इतना भी नहीं कहा गया है।<sup>४</sup> फिर भी इनमें उस क्षम्यवर्ती का प्रयोग हुआ है जो पाल

१ का० ३० ३० ४ न० ४२ श्लोक ३० ४२ न० ४५ श्लोक ४३ ५, न० ४६ श्लोक ३५ ४२ न० ६८ पक्षिया ३६ ४० न० ५० पक्षिया ३८ ४८ न० ५६ पक्षि २८ न० ६० श्लोक २६ ३० न० ६३ पक्षि २७ न० ६५ पक्षिया ११ १२, न० ६८ पक्षिया ७ १० न० ७० पक्षि १३ न० ७१ पक्षिया ८ ११, न० ७७, श्लोक ३३ न० ८२ पक्षिया १८ २०, न० ८३ श्लोक २० न० ८६ श्लोक १६ न० ८८ श्लोक २३, न० ८९ श्लोक १६, न० ९१ श्लोक १५ १६, न० ९४ श्लोक १५, न० ९६ श्लोक ३९ न० ९७, श्लोक १३ न० ९८ श्लोक ४२, न० ९९, श्लोक १८ न० १०१ श्लोक २९ न० १०२ श्लोक १९, न० ११७ पक्षिया ८ १० न० १२३, श्लोक १५, का० ३० ३०, ४ ६५२।

२ मिरासि का० ३० ६ ३० प्रारम्भिक पृष्ठ १६६।

३ ३० ९० ६ पृष्ठ ५२ ३, पक्षिया ७ ७८।

४ वही १६ पृष्ठ १६० पक्षिया ९ १७ प्रामिटिंस ऑफ (लेटर ऑल-इंडिया) ओरिण्टल काफ़रेस १ ३२५ ६।

अनुदानपत्रा तथा ऐसे ही श्रय दस्तावेजा म अक्सर मिलती है। तात्पर्य 'स्वसी-मातण्यूति गोचरपय'त स है। ऐसा जान पड़ता है कि मालवा में अब भी परती जमीन को आबाद करन की गुजाइश थी, क्योंकि बाहर के बहुत से स्थानों के ग्राहकों को मालवा में बसने के लिए निमंत्रित किया गया।<sup>१</sup> लेकिन यह भी सम्भव है कि इनमें से बहुता को परती जमीन आबाद कराने के बजाय इस उद्देश्य से बुलाया गया हो कि वे परमार राजाओं को समझन दें।

बहुत से चंदेल अनुदानपत्रा म भी अनुदत्त गाँवों की सीमाएँ निर्धारित नहीं की गयी हैं। यह बात खासकर बाहरवीं सदी से पहले दिये गये अनुदानों पर लागू होती है।<sup>२</sup> यद्यपि बाद के कुछ अनुदानपत्रों म भी ऐसा देखने को मिलता है।<sup>३</sup> चंदेल अनुदानपत्रों म इस सदम उसी 'दावली का प्रयोग हुआ है जिसका प्रयोग गाहड़वाल अनुदानपत्रा में हुआ है। सीमा का मर्केट देते हुए बस इतना कहा गया है 'चारा प्रतिस्पर्धी सीमाप्राप्त कना हुआ (गाव)',। पर य सीमाएँ नहीं बतलायी गयी हैं। परमदिन के एक अनुदानपत्र (११६७) म गायद ६२ या इतना नहीं तो कम से-कम ११ गावों के अनुदान का उल्लेख तो मिलता ही है लेकिन इनमें से किसी भी गाँव की सीमाएँ नहीं बतायी गयी हैं।<sup>४</sup> मगर ११३४ में मदनबमन् द्वारा दान किये जमीन के एक टुकड़े की सीमाप्राप्त और उपज का उल्लेख हुआ है।<sup>५</sup> परमदिन के महोवा प्लेट (११७३) में भी अनुदत्त भूमि की सीमाएँ और क्षेत्रफल बताया गया है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि चंदेल राजा यदि जमीन के टुकड़े दान करते थे तो वे उनकी सीमाएँ निर्धारित कर देने थे, लेकिन ग्राम अनुदानों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं करते थे। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि चंदेल अनुदानों से अनुदानभोगिया का इस बात की काफी सुविधा मिली कि वे प्राप्त गावों के इद गिद अपने क्षेत्र का विस्तार करें।

गुजरात में, जहाँ चौदुवों का शासन था स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न जान पड़ती है। अनुदत्त गाँवों की सीमाएँ अनिर्धारित छोड़ देने की रीति का पालन शायद १०वीं सदी के अन्तिम चरण में मूलराज के शासन-काल में किया

१ डी० सी० गागुली, हिस्ट्री ऑफ दि परमार डाइनेस्टी, पृष्ठ २४०।

२ इ ए, १६, २०४, पक्तियाँ ६११, वही २०६७ पक्तियाँ ६१५।

३ ए० इ १६ न० २० पक्ति ७१४ इ० ए १६ पृ० २०६ १०, पक्तियाँ ५७, १५ १०, ए० ड ३२, ११६ २०, ३१ न० ११, पक्तियाँ १२ १८।

४ ए० इ० ४ न० २०, पक्तियाँ ६११।

५ इ० ए०, १६, पृष्ठ २०६ १०, पक्तियाँ ५७।

गया।<sup>१</sup> अजयपानक एक चारमास सामय का ५० आंगणक अन्नदानक लिये ११७५ म दान विधायक एक गाँव का सीमाएँ निर्धारित की गयी।<sup>२</sup> लेकिन प्रथम भीम देव द्वारा गाँव निर्धारण एक गाँव और द्वितीय भीमदेव<sup>३</sup> तथा उसके तिसरी अध्यात्म राजगुरु<sup>४</sup> द्वारा दान स्थल जमातक कुछ टुकड़ा की सीमाएँ मान्य बनायी गयी हैं। लेकिन दानक अधिसूचना अनुमान १ थी सी के है। इस प्रकार तुम मित्राचार एका जात पढ़ता है कि गुजरात में १२वीं तथा १३वीं शताब्दी में अनुमान गाँव की सीमाएँ निर्धारित कर दी जाती थी जो उस क्षेत्रक निर्धारित प्राधिकारियोंक उपस्थित ही था। लेकिन ११वीं और १२वीं शताब्दी में साम्राज्य तोर पर एक गाँव की सीमाएँ नहीं बनाया जाती थी और इस प्राधिकारिता का नाम उठाकर ग्रहीता साम्रज्य अधीनस्थ क्षत्रा का विस्तार किया करता था।

११वीं और १२वीं शताब्दी के भूमि अनुदानों में ग्रहीताका का जमीन और उसकी अन्न सप्लाई स्वायत्त करने में और भी सहायता मिली। कृषिय प्रारम्भिक पाल अनुदानपत्रों में अनुदान दत्त हुए सामन्तों का प्राधिकारिया तथा ग्राम्य समाज की औपचारिक अनुमति माँगी गयी है। किन्तु परवर्ती पाल अनुदानपत्रों में तो इस औपचारिकता का भी तिलाजलि दे दी गयी है। अब उनसे अनुमति माँगने के बजाय उन्हें बकरा अनुदानों की सूचना भर दे दी जाती थी।<sup>५</sup> यद्यपि पूर्वी बंगाल के चन्द्रा<sup>६</sup> का नामपत्र<sup>७</sup> और दक्षिण भुगर में प्राप्त १३वीं

१ इ० ए० २ पृष्ठ १६२ ३ प्लेट १ पक्तियाँ ६ ११।

२ इ० ए० ८ पृष्ठ ८३ पक्तियाँ १८ २१।

३ प्रथम भीमदेव का भद्रेश्वर अभिलेख पक्तियाँ ३ ५। इसकी एक प्रति लिपि को पढ़ने का श्रेय स्कूल आफ आरिएटन एण्ड आफिजन स्टडीज, लंदन के डॉ० जे० डी० कासपेरि को है और उन्होंने ही इस प्रतिलिपि को पढ़कर यह अभिलेख मुझको देने की कृपा की।

४ इ० ए० १८ पृष्ठ ११० पक्तियाँ ७ १२।

५ वही पृष्ठ ११३ पक्तियाँ २६ ४२।

६ अब मतमस्तु शब्द के स्थान पर विदितमस्तु शब्द का प्रयोग होने लगा था। इ० ए० २६ न० ७ पक्तियाँ ३१, ज० ए० सो० ब० ६६, भाग १, प्रारम्भिक पृ० ६६ से आगे पक्ति ३६।

७ साहचन्द्रदेव के दो मनावती ताम्रपत्र जो पहले डा० ए० एच० दानी के पास थे किन्तु अब पाकिस्तान पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के अधिकार में है।

सदी के ताम्रपत्रा मे पुरानी औपचारिकता का निवर्हि किया गया है।<sup>१</sup> किन्तु उत्तर प्रदेश मध्यभारत और गुजरात क नपति ग्रामीण लोगों की इच्छाआ को कोई महत्व नहा देत थे। वे ग्राम प्रधाना प्रमुख ग्रामवासिया तथा यदा-कदा किसाना को अनुदान की जानकारी तो दे देने थे लेकिन उनसे विधिवत इसके लिए अनुमति नही मांगत थे। इमसे इम धान का कुछ सकेत मिलता है कि गाव के साधना और सपदाआ पर ग्रामवासिया के अधिकार क्षीण-होते चल जा रह थे।

भूमि विपयक अधिकार अनुदानमोगिया के नाम हस्तांतरित करन की दृष्टि से इस काल के अनुदानपत्रा म भी उमी पद्धति का अनुमरण किया गया है जो पाला और प्रतीहारा न अपनायी थी कि तु इनम ग्रहीताआ को दिय गय अधिकारा और रियायती को सीमाएँ बहुत बढ गयी हैं और अय गाव के प्राय सार साधन सपना पर उनको अधिकार दिया गया। गाचर भूमि उससे परे घास पातवानी जमीन धाम और मनुआ क पड जलागम भाडी मुरमुट, वन-प्रदेश परता जमीन खाई-बहु म पडनजाली जमीन उपजाऊ जमीन यदा कदा वाढ म डूब जानेजाली जमीन आदि ता भागी को पूवउत सौप ही दी जाती थी, किन्तु अब इम कुछ और भी चीने जुड गई थी। उगाहरण के लिए पूर्वी बगान के भूमि अनुदाना म मुपारी आर नारियल के पड लगभग निरपवाद रूप से ग्रहीताआ को द दिय जाने थे।<sup>२</sup> पहले के अनुदानपत्रा म इनका उल्लेख नायद ही हुया हो। आहिर है कि अब पेड जो उन्हें रोपते उगात थे उनकी नकदी आय के प्रमुख साधन बन गय हागे। इसके अतिरिक्त अब कमी-कमी अनुदत्त गाव की नमक की क्यारियाँ भी ग्रहीताआको दी जाती थी।<sup>३</sup> बिहार<sup>४</sup> उत्तर प्रदेश<sup>५</sup> और बघेलखण्ड के कुछ अनुदानपत्रा म 'सलाहलक्षणकर का प्रयोग हुया है।

बगाल क अनुदानपत्रा म मछनी मारने का अधिकार ग्रहीताआ के नाम हस्तांतरित नही किया गया है यद्यपि तालाग और अय जलाशया पर उनक सामान्य अधिकारा की ता बान है। हो सकता है कि उम प्रदेश

१ ज० बि० औ० रि० सो० १, १६३ ४ पक्ति ६।

२ ड० ब० ३, पृष्ठ २३ ४ पक्तिया ३७ ४१ पृष्ठ ११४ १५, पक्तियाँ ३६ ५१, पृष्ठ १२८ ३१ पक्तिया ५० ३।

३ ड० ब० ३ पृ० २३ ४ पक्तियाँ ३७ ४१।

४ ज० बि० औ० रि० सो० १, ५६३ ४ पक्तिया १० ११।

५ ए० इ०, ८, न० ४७, पक्तियाँ ७ १४।

के निवासियों के मत्स्यप्रमी होने के कारण यह अधिकार प्रहीता को नहीं दिया जाता था। किन्तु गाहड़वाल धनुषपत्रा में मछली मारने का राजसीय अधिकार बड़े स्पष्ट शब्दों (मत्स्याकर) में प्रहीतामा को सौंप दिया गया है। नमक की थपारियों और लोहे की खाना के हस्तान्तरण से तो ग्रामवासियों के अधिकारों पर उतना अधिक प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता होगा क्योंकि यद्यत् सभी गाँवों में नहीं मिलती होंगी, किन्तु स्पष्ट है कि मत्स्याकर के अधिकार का हरण ग्रामीणों की जीविका पर बड़ा आघात था क्योंकि मछलीगाहड़ लगभग सभी गाँवों में होने लगे और प्रहीता को बिना कुछ न्ये ग्रामवासी मछली नहीं मार पाते होंगे।

चन्देन धनुषानपत्रो में हम दान किये गाँवों और उनको उपज आदि की सबसे विस्तृत सूची देने को मिलती है। अनेक प्रकार के पेड़ों और खानों के अतिरिक्त इनमें कुसुम (केशर बनानेवाले फूल), ईस रुई और सण के बीजे भी प्रहीता को हस्तान्तरित किये गये हैं।<sup>१</sup> कुछ में तो हिरणा पत्नी परिदो और जलचरो का भी उल्लेख हुआ है।<sup>२</sup> स्वभावतः हमें ग्रामवासियों से उनका शिकार करने और मछली पकड़ने का अधिकार छिन जाना होगा। इसी प्रकार, कुछ सेन धनुषानपत्रा में और प्रायः सभी चन्देन धनुषानपत्रा में प्रहीताओं को अनुदत्त गाँवों में पकड़नेवाले मदिदर भी दिये गये हैं। बहुत सम्भव है कि ये मदिदर गाँववाले मिल जुलकर बनवाते हों और इनका उपयोग सामुदायिक प्रयोजनों के लिए किया जाता हो लेकिन धनुषानपत्रों के नाम इनके हस्तान्तरण के बाद गाँववालों द्वारा इनका निर्बाध उपयोग कठिन ही हो जाता होगा। विशेष रूप से ब्राह्मण प्रहीता तो मदिदर को अर्पित पान प्रसाद और सम्पत्ति को स्वायत्त करने का जोर सबरण नहीं ही कर पाते होंगे।

प्रहीतामा को हस्तान्तरित किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के सामानों में खनिज और भूगर्भ संपदा भी शामिल थी। स्पष्ट है कि इन पर राजा अपने स्वामित्व का दावा तो रखता होगा किन्तु अपने अमला के बल पर उसके लिए इस अधिकार का उपयोग करना मुश्किल पड़ता होगा और वास्तव में इन

१ ज० वि० आ० रि० सो०, २, ४३३ ए पक्ति १४।

२ वही।

३ ए० इ० २० न० १४, पक्तियाँ १७-२०।

४ ए० इ० १६ न० २, पक्ति २६।

५ वही, पक्ति २५ (यहाँ 'समदिदर प्रकार' शब्द समुच्चय का प्रयोग हुआ है।)

चीजा का लाभ मुख्यतः ग्राम्य समाज ही उठाता होगा। लेकिन ग्रहीता तो खुद ही जगह पर मौजूद रहते थे, और इसलिए वे अपने अधिकारों पर गाँव वालों को हाथ नहीं डालने देते होंगे। अतः अनुदानों के परिणामस्वरूप गाँव वालों के सामुदायिक अधिकार क्षीणतर होते चले गये। पहाड़ियाँ, नदियाँ और जंगलों के हस्तांतरण का मतलब भूमि से सम्बन्धित सारे साधन मपदाओं पर अनुदानभोगियों का व्यक्तिगत स्वामित्व स्थापित कर देना था। चंदला के राज्य में नकदी फसलों पर कर लगाया जाता था, और परमार राज्य में गाँव के साथ 'वापी कूप-तडाग' के हस्तांतरण से ऐसा प्रतीत होता है कि जनता को दी गयी सिंचाई सम्बन्धी सुविधाओं से भी राज्य को आमदनी हाती होगी। सिंचाई-कर तो कौटिल्य के समय से ही चला आ रहा था। अब शायद इसका लाभ उठाने का अधिकार भी ग्रहीताओं को दे दिया जाता था। सम्भव है कि बहुत से अनुदानपत्रों में पहाड़ियाँ तथा नमक और लोहे की खानों के हस्तांतरण का उल्लेख केवल औपचारिक रूप से कर दिया जाता रहा हो, क्योंकि सभी अनुदत्त गाँवों और जमीनों के टुकड़ों में पहाड़ियों और लोहे तथा नमक की खानें तो हो नहीं सकती थीं। लेकिन जहाँ ये चीजें पायी जाती होंगी वहाँ ग्रहीताओं के तद्विषयक अधिकारों के कारण होने की पूरी सम्भावना है। इसका मतलब यह हुआ कि अब जो लोग पहाड़ियों से पत्थर काटते होंगे या घर बनाने के लिए सामुदायिक जमीनों से मिट्टी खत होंगे उन्हें अनुदानभोगियों को कुछ देना भी पड़ता होगा। इन मपदाओं के हस्तांतरण के उल्लेख का और प्रयाजन भी क्या हो सकता था ?

अनुदानभोगी अपने आर्थिक अधिकारों और सुविधाओं का अतिरिक्त न करें इसकी देख रेख के लिए कोई भी शासक किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं करता था। किसान लोग पूरा रूप से ग्रहीताओं को—चाहे वे धार्मिक वृत्तिवादी हों या गृहस्थ—दया पर निर्भर करते थे। शायद गृहस्थ वृत्तिभोगियों के अधीन उनकी अवस्था अधिक बुरी रहती होगी, क्योंकि ऐसे भोक्ताओं को तो अनुदत्त गाँवों से राज्य को भी कुछ देना पड़ता था। लेकिन कुल मिलाकर उनकी स्थिति सुखी स्वतंत्र स्वामी कृषकों की न होकर, ग्रहीताओं की खातिर मेहनत भरावक्त करनेवाले कृषि दामा के ही समान थी।

जैसा कि हम ऊपर देखा चुके हैं दानपत्र में अनुदत्त गाँवों के साधनों का जो विशाल विवरण दिया गया है उसका यह मतलब नहीं है कि ग्रहीता को केवल उन सबके उपभोग का ही अधिकार प्राप्त होता था, वास्तव में उन पर उसका स्वामित्व भी स्थापित हो जाता था। एक विद्वान के मतानुसार कलचुरि



अनुदानपत्रों में ग्रहीताया का स्वामित्व का अधिकार नहीं दिया जाता था, बल्कि केवल लगान तथा भ्रष्ट पर महंगूल वसूल करों का राजस्वीय विशेष अधिकार ही दिया जाता था।<sup>१</sup> जिन अनुदानपत्रों में केवल गांव के नामों और लगान का ही उल्लेख है उनमें सम्बन्ध में यह बात लागू हो सकती है, लेकिन जिनमें गांवों के सामान साधन संपत्तियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है उनमें सम्बन्ध में यह विचार ठीक नहीं जान पड़ता। परमार अनुदानपत्रों में ग्रामीण साधन संपत्ति की अपेक्षाकृत छोटी सूची मिलती है।<sup>२</sup> इनमें ग्रामतौर पर केवल गांव भूमि और उससे परे घास फूस में भी जमीन का ही उल्लेख हुआ है।<sup>३</sup> इसी प्रकार चौतुल्य अनुदानपत्रों में केवल वक्षपविनया का ही उल्लेख हुआ है।<sup>४</sup> सन्तों छापी सूची चाहमान अनुदानपत्रों में दी गया है। इनमें केवल अनुदत्त गांवों का नाम भर लिखकर छोड़ दिया गया है।<sup>५</sup> इस प्रकार, राजस्थान मालवा और गुजरात में अनुदानभोगियों को भूमि विषयक पूरे अधिकार नहीं दिए जाते थे। लेकिन हम ग्रामतौर पर गाहड़वाण अनुदानपत्रों और खास तौर पर चन्देल अनुदानपत्रों के बारे में ऐसा नहीं कह सकते।

फिर यह भी कहा गया है कि गांव के साधन संपदाओं के हस्तांतरण से ग्रामवासियों के अधिकारों को धक्का नहीं लगता था। अनुदत्त गांवों में भी वे जलाशय, तालाबों सामुदायिक गोबर भूमि आदि का उपभाग पूरवत् करते रहते थे।<sup>६</sup> लेकिन एक बार जब ये अधिकार ग्रहीताओं को दे दिए जाते थे तब वे गांववालों के परम्परागत अधिकारों का सम्मान कहा तक करते हागे, यह कहना कठिन है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है सरकारी अमला के यदा कदा दौरे पर आते हैं इन सामुदायिक अधिकारों पर उतना प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता जितना लेकिन अनुदान पाने के बाद ग्रहीता तो बराबर अनुदत्त गांवों में ही मौजूद रहते थे और इसलिए ये सामुदायिक अधिकार भी दिन दिन छोड़ते चले गये हैं।

१ मिराण्डि कां० ३० ३० ४, प्रारम्भिक पृष्ठ १७१।

२ २० ए० १८ पृष्ठ १६० पंक्ति १३।

३ वही १८ पृष्ठ ८३ पंक्ति १६।

४ ए० ३० २, न० ८ पंक्ति ८८ ६ दशरथ गमा कृत 'प्रता चोपान डाइने-स्टोत्र' पृष्ठ १८२ पर एकापर प्लेट ग्राहक ग्रहणस रन गोपक लेख।

५ मिराण्डि कां० ३० ३०, ४ प्रारम्भिक पृष्ठ १७१ २।

अनुदत्त भूमि में से पुनः अनुदान<sup>१</sup> देने की प्रवृत्ति इस काल में खब बढी । हम अग्रज देख चुके हैं कि राजवंश के सदस्य, सामन्त और राज्याधिकारी कभी कभी राजा की अनुमति लेकर और कभी उसकी अनुमति लिये बिना ही अपनी अपनी जागीरा में स पुराहिता और मन्दिरों को अनुदान दिया करते थे<sup>२</sup> और यत्न-बदा तो वे अपने प्रभु का अपने वनवाये मन्दिरों का ग्राम अनुदान देने को भी वाय कर देते थे । कभी कभी वे अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा के बल पर स्थानीय शापरिया को भी अपने वनवाय मन्दिरों को अनुदान देने को मजबूर कर देते थे । यह मच है कि धार्मिक अनुदानभोगी का दाता के प्रति कोई धार्मिक दायित्व नहीं होता था और दाता को उसमें केवल शुभकृता और नतिक समथन की ही अपेक्षा थी किन्तु इन अनुदानों के कारण भूमि भोगिया की कई श्रेणिया कायम हो गयीं । मूल गहीता अनुदान लिए राजकृपा का आभारी या धार्मिक गहीता उस मूल गहीता का वृत्तज था, और किसान इन गानों का भुग्याग भी था । यह सही है कि धार्मिक भाक्ताओं को परावर भूमि पर ऐस विस्तृत अधिकार नहीं दिय जाते थे जमा कि कनचुरिया क राय में हाना था । तकिन इनसे ही उपसामन्तीकरण की गुजादा खत्म नहीं हा जाती थी । जिन मटा या ग्राह्यण समुदाया क हाथा में २-२३ गाव थे वे उनकी व्यवस्था खुद तो कर नहा सकते थे । उन्हें इसके लिए और लोगो को नियुक्त करना पडता था जिन्हें वतन क रूप में भूमि दी जाती थी अथवा राजस्व एकत्र करने का अधिकार प्रदान किया जाता था ।

अथ हम राजकीय सेवाओं के बदले में दिय गये अनुदानों की बात लें । इस प्रथा के अनुसार छाटी मोनी सेवाओं के प्रतिदान स्वरूप जमीन दी जाती थी । हमका चलन हम कौटिल्य के समय में ही देखने को मिलता है । 'अथशास्त्र' में कहा गया है कि नय जनपद में गाव की शासन-व्यवस्था क लिए निम्नेणर विभिन्न कमचारियों का भूमि अनुदान देना चाहिए । सामन्तवादी यूराप में तो इस प्रथा का सूत्र चलन था ही ऐसा लगता है कि प्रारम्भिक मध्यकाल में उत्तरी भारत क भी कुछ हिरमा में वृत्ति देने की यह विधि चल रही थी । उगाहरण क लिए, गंगा क अधीन उडीसा में ताम्रनार, ठठेरे और तम्बाली

१ ए० ३०, २ न० ८, श्लोक ४६ ।

२ वही । सामन्ता महासामन्ता तथा एम ही अथ राजपुरपा द्वारा अनुदान देने के कुछ उगाहरण पी० त्रियाणा ने एकत्र किये हैं स० प्र० पु०, पृष्ठ ५४६ ।

अनुदान के अर्थ में रूप में मन्दिरे में संयुक्त कर दिए जाते थे, जिनमें से कम से कम कुछ को तो तिर्षाह के लिए जमीन के छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटा दिया जाता था।<sup>१</sup> यद्यपि विहार उत्तर प्रदेश और मध्य भारत में जंगल काई अधिकतम प्रमाण पर ही मिलता पाया जाता पढ़ता है कि यद्यपि मन्दिरे प्रथा अभी भी प्रचलित हो चुकी थी।<sup>२</sup> इन पढ़ाई राज्यों के ११वाँ सर्ग के एक अनुदानों में पाता जाता है कि एक मन्दिरे का जमीन के एक बड़े टुकड़े अनुदान-अर्थ में दिए जाने पर वह पानना गाँवों (अन्तर्गत) तथा कुछ अन्य छोटे छोटे कर्मचारियों को सौंपा उनसे सहायता के अर्थ में दिया हुआ था।<sup>३</sup> इस जमीन का एक हिस्सा विद्यालय के अथवा मन्दिरे के अन्तर्गत की कृषि के लिए अलग कर दिया गया।<sup>४</sup> जमीन के एक टुकड़े मन्दिरे की सेवा करने वाले लोगों के परिवारों के निर्वाह के लिए दिए जाते थे। यदि मन्दिरे के सेवकों की कतिपय के लिए यह पद्धति प्राचीन थी तो राजा तथा छोटे-छोटे सामन्तों (रणजिता) को तथा करतबान छोटे छोटे कर्मचारियों का भाँति देने की काई दूसरी पद्धति पाया जाता ही रही होगी।

इस पद्धति के अन्तर्गत में कुछ उपाकरण राजस्थान में भी मिलते हैं। सबसे पहला प्रमाण तो हम उदयपुर में दो मन्दिरे का मिले गये एक अनुदान के रूप में मिलता है।<sup>५</sup> इसमें कायस्थ परिवारोत्पन्न बच्चों को द्वारा कुछ सेत अनुदान दिये जाने की चर्चा है। अभिलेख से लगा जान पड़ता है कि इस परिवार के सन्तान किसी मुहिलेन सरदार के यहाँ लिपिका और बच्चा के रूप में काम करते थे और गायद इसी सेवा के प्रतिदानस्वरूप उन्हें कुछ जमीन मिली हुई थी।<sup>६</sup> यह प्रथा नडाल के चाहमाना के राज्य में भी प्रचलित थी। इस लिपिक का आधार ११४१ का एक अभिलेख है।<sup>७</sup> इसके अनुसार घानप नगर बाँटा हुआ म बाँटा हुआ था जिनमें से प्रत्येक की गति सुरक्षा का दायित्व दो से बाँटना पर था।<sup>८</sup> यदि वे चार या पता न लगात और फिर भी राज्य से अपनी

१ ज० ए० सो० ब० ६५ भाग १, पृष्ठ २५४ ६ पत्तियाँ १ २१।

२ अ० ग० रि० १६०० ३ पृष्ठ २६२ ४, पत्तियाँ ११ ३२।

३ वही पत्तियाँ २८ ३१।

४ ए० इ० २०, पृष्ठ १२३।

५ वही।

६ वही, ११, न० ४ ६।

७ वही।

प्राजीविका की माग करत तो दण्ड के भागी बनते ।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि इन सोलह ब्राह्मणा का निवाह भूमि अनुदाना से होता था जिनके बदले म ये अपनी धर्मोतर सजाएँ प्रदान किया करत थे ।

गुजरात के एक चौलुक्य अभिलेख से भी सांसारिक सेवाया के प्रतिदान स्वरूप भूमि अनुदान देन का सकेत मिलता है । द्वितीय भीमदेव के शासन-काल म किसी अवर राज्याधिकारी न, जो गायद जाति स बनिया था, एक सिचाई-कूप और नाला बनवाया और उनकी देख रस के लिए प्रागवत गोत्र के किसी व्यक्ति को, जो क्वाचित् व्यापारी था, कुछ जमीन अनुदान स्वरूप दी ।<sup>२</sup> सम्भवत गुजरात म इस प्रकार के और भी अनुदान दिये गये जिनसे किसाना की स्थिति विगडती गई ।

पूर्ववर्ती काल के अभिलेखो म अनुदत्त गाव अथवा भूखण्ड के साथ मिमाना और निरूपिया के हस्तांतरण के कुछ उदाहरण मिलते हैं । लेकिन ऐसा जान पडता है कि अग्नि पुराण का सङ्गन पूरा होत होत—अर्थात् ११वीं सदी का प्रारम्भ हाते हात<sup>३</sup>—यह प्रथा भली भाति प्रतिष्ठित हो गई । इस पुराण म किसाना (छेटका) के समत ग्राम अनुदान देन की सिफारिश की गई है ।<sup>४</sup> यह भी कहा गया है कि मंदिरा और मठा को भूमि और दास देन चाहिए <sup>५</sup> और साथ ही उहे नृत्य और सगीत की भी सुविधाएँ मिलनी चाहिए । नृत्य और सगीत की सुविधाया का मतलब तब-नतकी और गायक-नायिका भेंट करना लगाया जा सकता है । इस काल के अभिलेखा मे तो इस प्रकार के अनुदान के अनन्य उदाहरण मिलते है । असम के भूमि अनुदाना म घर हस्तांतरित कर दिये जाते थे जिसका मतलब है कि जमीन के माय उस पर बने घर म रहनेवाला कृपक-परिवार ग्रहीता के सेवाय उस सौंप दिया जाना था । इसका

१ वही प० ३८ ६ ।

२ इ० ए० १८, पृष्ठ ११३ पंक्तियाँ २५ ४५ ।

३ इस अर्थ का काल निर्धारण बी० वी० मिश्र ने पालिटो इन दि अग्नि पुराण म किया है ।

४ २११, ३८, २१३ ६ ।

५ २११ ७० २०२ १३ १८ ।

६ ज० ए० सा० व, ६६, भाग १, पृष्ठ २६५-६ मिलाइए ज० ए० सा० व०, ९ (१८८०), ७६६ से आग, श्लोक २४ ।

एक सत्रसे द्रष्ट व उणाहरण सितहट जिले म प्राप्त ११वा सत्री व मध्य का एक अनुदानपत्र है। इस अनुसार भगवान शिव के मन्दिर को राजा गोविन्द केशवदेव से ३७५ हल जमीन के साथ अलग अलग गावा म बिचरे २६६ धर प्राप्त हुए।<sup>१</sup> भगवान् शिव के सवाय सौंपे गये इन गहस्या म कयत किसान ही नहीं किन्तु चरवाह और गिन्ना योग भी शामिल व। साथ ही इस दवना का जा जमीन दी गई उस पर रहनवाल घटवार (घटा बतानवाले लाग), धावी नाविक दुकानदार आदि बहुत स सब भी उस अनुधीन कर गिय गए।<sup>२</sup>

उगतन के अमिलेया से १२वी शताब्दी तक तो बहा किसाना क हस्तांतरण क चत का सकन नही मिलता किन्तु बाद म इस प्रथा का चलन इस प्रदेश म भी हा गया। सेन अनुदानपत्रा म धार्मिक उद्देश्या से अनुदत्त भूमि के टुपना क नाम बनाने गर हैं। टिपडा जिले म प्राप्त लगभग १२३८ ईस्वी क ताम्प पटा म २० ब्राह्मणा को दान किय एक गाव म स्थित १२ घरा क हस्तांतरण का उल्लेख हुआ है।<sup>३</sup> इस सम्बन्ध म प्रयुक्त गहटि नाम क अलग अलग अनुदान गये ह।<sup>४</sup> हमारे विचार से टि से टिला का बीव होता है। वगात और विहार म धर बनाने के लिए चुन हुए ऊंच स्थान को अथवा इस प्रथाजन से मिट्टी भरकर ऊंची की गई सनह का अनु भी टिला कहते हैं। यह अनुदान पूर्वी बंगाल म दिया गया। वहा कबत तथा अथ कृपक जानियां आज भी ऊंची की गई सनहो पर धर बनाकर रहती हैं ताकि उनक धरों म पानी न घुन पाए। इसनि १२ गहा के हस्तांतरण से यही मतलब निकलता है कि अनुदत्त भूमि पर काम करनेवाले काश्तकारा या खेतिहर मजदूर का भी उस भूमि क साथ गहीला का सौंप दिया गया। उड़ीसा म इससे पहले के काल म एस कई उदाहरण मिलत हैं। नवी शताब्दी के मध्य से लेकर लगभग अगली एक सत्री तक अनुदानभागिया का जमीन क साथ-साथ बुनकर बल्लान तथा अथ ग्रामवासी भी दिए जान रह। इन सबके लिए प्रकृति नामक का प्रयोग

१ ए० इ० १४ न० ४६ पन्जिया २६ ५१।

२ वही।

३ वही, ३० न० १० (दामोदरदेव के मेहार साम्रपत्र) पन्जिया १७ ३२, और पृष्ठ ५७ ८।

४ वही, ७, १८८ पा० पृ० ६, ३०, ५६।

दृष्टा है।<sup>१</sup> विचाराधीन काल में बुन्देलखण्ड के चन्देला के राज्य में यह प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित जान पड़ती है। यहाँ के अनुदानपत्रों में गाँवा के साथ किसानों, गिल्दियों और व्यापारियों के हस्तांतरण के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं।<sup>२</sup> चाहमाना के राज्य में भी इस प्रथा का काफी चलन था। यद्यपि वहाँ दसना स्वयं कुछ अनन्य था। नडौल के कुमार साहणपालदेव के ११३५ के अनुदानपत्र के अनुसार नन्दान ग्रामवासी साहिब और असार नामक दो व्यक्ति अपने पुत्रों पौत्रों आदि के साथ साथ भगवान त्रिपुरसुन्दर की भवा में सदा के लिए सौंप दिये गये।<sup>३</sup> ११४८ में अल्लहगंज में इसी देवता का रामा गाँव के उमपोनपाल और महपसीह नामक दो कृषकों को प्रदान किया।<sup>४</sup> यह स्पष्ट नहीं है कि इन दो अनुदानों में सम्पत्तिगत गाँव भी दान किये गये या नहीं। लखन जिन लाला को भगवान शिव की सेवा में भेंट किया व ता निश्चित रूप से किसान (कुटुम्बिक) ही थे।<sup>५</sup> और जिस उद्देश्य से वे देवता का समर्पित किये गये वह कृषि के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता था। इसलिए उनकी तुलना किसी कृषि दासों या कर्मियों की नहीं है।<sup>६</sup> १२०७ के एक चौतुक्य अनुदानपत्र से पता होता है कि चौतुक्या के सामन्त मेहर गज जगमलन ने तलाभा नामक विंगल नगर में अपने स्थापित किए दो गिब लिंगों का पास के दो गाँवों में जमीन के दो टुकड़े दान किये और यह व्यवस्था भी कर दी कि अमुक तीन किसान उनमें खेती करेंगे।<sup>७</sup> इस प्रकार की कृषि दासत्व की प्रथा का प्रमाण केवल चम्पा में मिलता है जहाँ जमीन के टुकड़ों के साथ ग्रहीताओं

१ दक्षिण परिशिष्ट १।

२ 'सामन्त-व्यवस्था-विनिर्वाह' पृष्ठ १६। इस अभिलेख के सम्पादक हीरालाल ने कृषकों को कृषकों पड़ा है और इसीलिए इनके अनुदानों में भी कुछ टुकड़े रह गई हैं, वही १३१ पा० टि १ पृ० ३० ३२ न० १५ अनुदान १ पत्रिका २१ में देखिए।

३ दगारय गर्मा-कृत अलों चौहान डाइनेस्टीज, परिशिष्ट जी, ३ पत्रिका २० २१।

४ वही पत्रिका २२ २३।

५ वही पत्रिका २० २२।

६ वही पृष्ठ २६६।

७ पृ० ११, ३३७ ४०।

का दिये गये किसानों के नाम भी बताये गये हैं ।<sup>१</sup>

यद्यपि इस विवरण में दक्षिण भारत का शामिल नहीं किया गया है, किन्तु ऐसा जगता है कि महाराष्ट्र में यह प्रथा प्रचलित थी । १२७६ के एक यादव अनुदानपत्र से पता होता है कि एक अग्रहार गिलिया आदि के साथ दान किया गया ।<sup>२</sup> इस अनुदानपत्र में प्रयुक्त 'कार्ता' शब्द में स्पष्ट विमान भी आ जात है । कावण में भी अनुदान में शिपी लोग दिये जाते थे । १००८ में जारी किये गये माण्डविक रट्टराज के खारपाल ताग्रना में मत्तमयूर गोत्र के गुग्गुआ का तीन गाँवों के साथ-साथ परिचारिकाओं के कई परिवार एक तनी परिवार एक माली परिवार एक कुम्हार परिवार और एक घोड़ी परिवार भी प्रदान किया गया ।<sup>३</sup> स्पष्ट है कि इन साधकों और इस सम्बन्धित लोगों की सेवा के लिए सेवक सेविकाएँ तथा गिरनी आदि दान आवश्यक समझा गया । यद्यपि यहाँ ग्रहीताओं के साथ भी दिये गये लोग में केवल शिल्पी सेवक ही थे किन्तु यह कृषि दासत्व की प्रथा का स्पष्ट प्रमाण है ।

उड़ीसा के परवर्ती अनुदानपत्रों से प्रकट होता है कि यह प्रथा गाँवों में फलती फलती शहरों में भी पहुँच गई थी । १२३० में जारी किये गये तृतीय अन्नगमीन के जगरी ताग्रपत्रों से मालूम होता है कि एक ब्राह्मण को एक शहर उसके निवासियों के साथ-साथ (पुत्रजन समेत) दान किया गया ।<sup>४</sup> इस शहर में राजप्रासाद के समान चार भवन थे लेकिन अधिक महत्त्व की बात यह है कि इसमें दुकानदारों अतारों सब विक्रेताओं आराकशों सोनारों ठठेरों आदि के भी घर शामिल थे और इन सबके नाम भी बताये गये हैं ।<sup>५</sup> इनके अतिरिक्त तम्बारी मालाकार गुड विक्रेता ग्वाले बुनकर तली कुम्भकार और बँवत्त भी उत्त ब्राह्मण के साथ समर्पित किये गये और इस अनुदानपत्र में इन सबके भी नाम बताये गये हैं ।<sup>६</sup> फिर एक नाई बुँड दस्तकार और धावी भी ग्रहीता को सौंप

१ जा० सं० रि० १६०२ ३ पृष्ठ २५२ ४ पंक्तियाँ १६ २५ ।

२ सं० एम० जो० दीनित सिलेक्टड इस्क्रिप्शंस फ्रॉम महाराष्ट्र पृष्ठ ६६ ।

३ वही ।

४ सं० इ० ३ न० ४० पंक्तियाँ ५८ ६ ।

५ वही १८ न० ६० पंक्तियाँ १२७ २६ ।

६ वही पंक्तियाँ १२७ ३१ ।

७ वही पंक्तियाँ १३२ ३४ ।

निय गय ।<sup>१</sup> इस प्रकार यह अनुत्पन्नपत्र शहरों में गतिहीन ग्रामीण अथव्यवस्था के प्रवर्ग का सटीक उदाहरण प्रस्तुत करता है । इससे प्रकट होता है कि किस प्रकार व्यापारिया और गिल्दिया के सामने शहर की बढ़ और गतिहीन अथव्यवस्था से बँधे रहने के अलावा और कोई चारा नहीं रह गया था और शहर का स्वामी चाह कोई ही उनका स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता था । शहरों में रहने भी वे अपने पग और स्थान नहीं बदल सकते थे और उनका उही परिस्थितिया में जाना पड़ता था जिन परिस्थितियों में अनुदत्त गाँवों के किसान जीते थे ।

मध्यकालीन अथव्यवस्था का स्वरूप ही ऐसा था कि उसमें गिल्दियों की गतिशीलता के लिए बहुत कम गुंजाइश रह जाती थी और किसानों की स्थिति भी और भी बुरी थी । जिन गाँवों के किसानों और गिल्दियों को शहरों में अनुत्पन्नभागियों के अधीन नहीं कर दिया जात था उन गाँवों में भी ग्रामवासियों पर उनका नियंत्रण कम नहीं रहता था । ग्रामवासियों को स्पष्ट निर्देश रहना था कि वे शहीताओं के आदेशों का पालन करें और उन्हें सभी प्रकार के कर दें, जिसका मतलब था कि अनुदत्त गाँवों के निवासी एक प्रकार से उनका हाथों में मौज दिया जात था । लेकिन यदि स्थिति यह थी तो फिर कुछ अनुत्पन्नपत्रों में गिल्दियों और किसानों के हस्तान्तरण का विषय उल्लेख क्या किया गया है ? अथवा उड़ोसा और चमरा में तो इसका कारण यह जान पड़ता है कि इन पिछड़े अथवा के आर्थिक जीवन का चलाते रहने के लिए कुछ अतिरिक्त सावधानी और सन्धी बरतना आवश्यक था, क्योंकि यहाँ बाहरी लोग आकर नहीं बसना चाहते हाने और इसलिए अथम शक्ति की कमी पड़ जान का खतरा बदावर बना रहता होगा । कुल्ल खण्ड के पिछड़े इलाकों में भी इस नाति का अनुसरण करना आवश्यक था । इस नीति के द्वारा गिल्दियों, किसानों और व्यापारियों की भी सवाँ मुँह की जानी था क्योंकि यहाँ अथमशक्ति का अभाव था और आबाद करने के लिए जमीन बहुत अधिक थी । लेकिन इस सबका परिणाम यह हुआ कि यहाँ कृषि दासत्व की प्रथा कायम हो गई ।

ऊपर हम जान-बूझ देख आये हैं उससे स्पष्ट होगा कि उपसामन्तीकरण और सन्धानुत्पन्न-जसी कुछ सामन्ती प्रथाएँ अनुदत्त गाँवों में मौजूद थीं, और परिणाम स्वरूप ऐसे गाँवों में किसानों की दशा विगड़नी चली जा रही थी । जा क्षेत्र माघ राजा के नियंत्रण में थे उनमें भी उनकी स्थिति इसमें बहुत अच्छी नहीं



थी। गाहड़वाल अनुदानपत्रों में करों की जो सूची दी गई है<sup>१</sup> उससे प्रकट होता है कि उनके शासनकाल में उत्तर प्रदेश में किसानों को जितने कर देने पड़ते थे उतने पहले कभी नहीं देने पड़े थे। गाहड़वाल अभिनखा में किसानों पर लगाए गए ११ करों का उल्लेख हुआ है। अगर उनमें से सारे कर लिये जाते तो समझ में नहीं आता कि उनके परिवारों के भरण-पोषण के लिए उनके पास उपज का कितना हिस्सा बच रहता होगा। त्रिपुरी व बलचुरिया के ११६७ के एक अभिलेख में ११ करों का उल्लेख है। इनके अलावा परम्परा से चले आ रहे और भविष्य में लगाए जानेवाले गणस बहुत से अन्य कर भी थे जिनका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।<sup>२</sup> ११८०-८१ के अथ बलचुरि अनुदानपत्र में भी इतने ही प्रकार के करों का जिक्र हुआ है।<sup>३</sup> इनमें भाग और भोग तो निश्चित रूप से शामिल थे क्योंकि इस अभिलेख में 'प्रवणि' शब्द से पहले आनेवाले छ शब्द पद विनमूल मिट गये हैं।<sup>४</sup> इस प्रकार इन करों की संख्या १३ हो जाती है। यद्यपि बलचुरि अनुदानपत्रों में स्पष्ट शब्दों में सामान्यतया केवल तीन या चार (भागभोगहिरण्यान्त्रिराज प्रत्याद्य)<sup>५</sup> करों का ही उल्लेख मिलता है लेकिन अन्त में राजप्रत्याद्य के प्रयोग से जान पड़ता है कि लोग से अन्य कर भी लिये जाते थे जिनका जिक्र भाग शब्द में नहीं किया गया है। अधिन से अधिन हम यही कह सकते हैं कि ये सारे कर गायद एक ही आदमी से नहीं लिये जाते होंगे क्योंकि व्यापारी गिल्डी किसान अलग-अलग ढंग के कर लिये करते थे। अगर सम्भावना यही है कि उपयुक्त करों में से अधिकांश किसानों से ही लिये जाते होंगे। यह साफ साफ पता नहीं चलता है कि अनुदानमोगों अपने अधीनस्थ गाँव में खुद कर लगा सकते थे या नहीं यद्यपि कभी-कभी उस भविष्य में कर

१ गंगा नियागी कृत हिस्ती आफ द गहड़वालराज (पृष्ठ १६७-६८) में इन तमाम करों की सूची दी गई है लेकिन विभिन्न प्रकार के करों के लिए प्रयुक्त कुछ एक शब्दों के अर्थ अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो पाये हैं।

२ फॉ० इ० २० ४ न० ६३ पंक्ति २६ ०। कुछ शब्दों का अर्थ स्पष्ट है किन्तु करों की सूची बहुत बड़ी है। भागकरप्रवणिवाटचरीरमवनीरा मन्विपेगिमानायपट्टिकिनायामदुम्सायानाय (ब) पयिकायानिकृतनरिय्य मागानाय मह।

३ वही परिशिष्ट न० ८।

४ वही ६६ पा० लि० १८।

५ वही ८ न० ५०, पंक्ति ४३ ४४।

लगान का अधिकार (करिष्यमाण) भी दे दिया जाता था। ऐमे गावा म किसानो की इस बात का खतरा बगबर बना रहता था कि उनके करा म बढि हो सकती है क्वाकि अनुदानभागी पर यह पाध्दो नही थी कि वह प्रचनित रीति परम्परा का पालन करे।

इस काल म पूर्वी भारत मे किसानो की स्थिति एक और भी कारण से बहुत बिगड गई। वह यह था कि अब यहां अलग अलग ऐना से राज्य का कर-स्वरूप किननी उपज दी जाय यह निर्धारित होने लगा। पूववर्ती लगान पद्धति वटापदादी के सिद्धा न पर आधारित थी जिसके द्वारा किसान की उपज के अनुसार उसका एक हिस्सा सरकार को मिलता था। सामतवाद का विकास हान पर खेती की उपज म कई पत्ता का हिस्सा कायम हुआ—जसे राय का वास्तकार का और नायब वास्तकार का और इस उपन के हिस्सदारा की ऊपर से नीचे तक कई श्रेणिया बन गई। जब जमीन की पैमाइश की पद्धति का व्यापक प्रसार हुआ और उपज सावधानी के साथ निर्धारित की जाने लगी किसानो के हितो का आधान पहुँचा। कारण जमीन की पैमाइश करने और उसकी उपज निर्धारित करने म प्राकृतिक आपदाओ का खयाल नही किया जाता था और उन दिना मनुष्य के पास इन आपदाओ का सामना करने का साधन तो तगभग नही ही था। इस प्रकार नई लगान पद्धति से किसानो का बजाय राज्य को ही अधिक वचत होने की सम्भावना थी क्वाकि पदा न हाने पर भी राज्य और नामत किसानो से अपने हिस्से की माँग कर सकत थ। गायद असाधारण परिस्थितिया म राज्य लगान माफ कर दिया करता था लेकिन यह कहना मुश्किल है कि जागीरदार लोग भी ऐसी उदारता बरतते हान या नही।

बलचुरियों चन्देलो और चाहमाना क राज्या म किसानो की अस्थायी निश्चय ही बहुत खराब हा गई होगी क्वाकि वहाँ उहे सभी श्रेणियो के सरकारी अमला के खच का बोझ उठाना पडता था। बलचुरिया के अधीन किती काल म विपणिम् (इस अधिनारी के काय और दायित्व का ठीक पता न्हा लग पाया है) पट्टकित दुमाध्य और वपयिक इन चार अधिनारिया का अयना निवाह-व्यय किसानो से वसूल करने का अधिकार मिला हुआ था।<sup>१</sup> चन्देल अधिनरता म एम अधिनारिया की सरया अधिन प्रतीत हानी है। इस वन अधिनारियो (आठविका) अनियमित सनिकों (चाटा)<sup>२</sup> तथा सामान्यतया सभी

१ को० इ० इ० ४ न० ६० पत्रिनयो २८ ३०।

२ ए० इ०, ३२, न० १४ अनुदान १, पत्रिका ३३।

राज्याधिकारिया का अपना अपना दातय (स्व-स्वामामायम) <sup>१</sup> वसूल करने की सत्ता दी गई है। चकिन चाहमाना के अधीन यह अधिकार केवल प्रतीहारा और वताभिया का ही लिया गया था। यह स्पष्ट नहीं है कि आदाय और आनाव्य नाम से पात कर राज्याधिकारिया का धन के ऊपर से भते के तौर पर मिलत थे या यही उनकी आय के एकमात्र साधन थे। पूर्ववर्ती काल में ऐसे कर केवल राज परिवार के भरण पोषण के लिए ही वसूल किए जाते थे। इसकी सहायता तथा प्रारम्भिक काल राजाओं के अनुदानपत्रों में मिलती है। यह कर विचाराधीन काल में भी राजकुलामाय <sup>२</sup> नाम से प्रचलित रहा। पहले शायद ऐसे कर राज परिवारों द्वारा नियुक्त अधिकारी वसूल किया करते थे। अब ऐसे करों की सहायता ही बढ नहीं गई किन्तु उक्त वसूल करने का अधिकार सम्भवतः उन्ही अधिकारियों को मिला जिनके निमित्त ये लगाय जाते थे। यह पद्धति भारतीय सामंतवाद की एक विशेषता बन गई और इसके अंतर्गत किसानों का शोषण लाजिमी था।

इस काल में शिरक और व्यापार का सामंतोत्तरण राजस्थान, मालवा और गुजरात में बढ़ता गया क्योंकि इन साधनों से होनेवाली राजकीय आय मदिरा का सौदा करने लगी। चाहमान अमिलखान में इसके कई प्रमाण मिलते हैं। अल्तुंगशह के ११६१ के एक अमिलखान में एक गान मन्दिर को नडदूल गहर के विगा क्षेत्र में स्थित एक चुगी घर की आय में से प्रति मास ५ द्रम्म का अनुदान लिया गया है। <sup>३</sup> चुगा घर की आय के अंग के अनुदान का दूसरा उदाहरण भी हम नडदूल में ही मिलता है। १११४ के इस अनुदानपत्र में भगवान् त्रिपुरण का चुगा घर में दानवाली आय में से ६ द्रम्म (मासिक अथवा वार्षिक यह स्पष्ट नहीं है) अनुदान-स्वरूप दिया गया है। <sup>४</sup> अभी अमिलखान से पता चलता है कि अहमदनगर राजा अहमदनगर द्वारा स्थापित गौरी की प्रतिमा के दान पान प्रसाद का गन्ध चक्रान के लिए उस एक चुगी घर की आय में ४ द्रम्म का

१ ए० ए० ० न० १८ अनुदान ० पन्नि १६।

२ ए० ए० ११६/७ पन्नियाँ १ ०।

३ ए० ए० ० गृह ६२ और इमा पृष्ठ का पान टि० ८ भी।

४ इतरय गमा सं० प्र० पु० परिशिष्ट जा ३ पन्नियाँ १८ १६। कुछ गानों के मित्त जान के कारण अथ स्पष्ट नहीं है कि इन इमम काई सदाह नहीं कि राजा ने धार्मिक प्रयाजना में चुगा घरों का आय का कुछ अंग अनुदान में दिया।

मासिक अनुदान सदा के लिए अर्पित किया।<sup>१</sup> ११५६ के एक सामन्तपत्र में ज्ञात होता है कि कुमारपाल के निजी सामन्त न कुछ जन मन्दिरों को एक मण्डपिका (बुगी घर) से होनेवाली आय में स प्रतिदिन एक रुपय के हिसाब से एक अनुदान दिया।<sup>२</sup> १७३ के एक अभिलेख के अनुसार धानम्मरी के निजी उच्च पदाधिकारी ने प्रति बटक नमक पर एक विगोपक के हिसाब से एक अनुदान लिया और एक दूसरे पदाधिकारी ने उमी देवता को प्रत्येक घोड़े की बिक्री पर एक द्रम्म के हिसाब से अनुदान दिया।<sup>३</sup> इन उदाहरणों में स्पष्ट है कि विभिन्न वस्तुओं की बिक्री पर सरकारी महसूल से होनेवाली नकदी आय के असा जैन और ब्राह्मण मन्दिरों का धार्मिक प्रयोजन से अनुदान के रूप में लिये गये। इससे अतिरिक्त चाहमाना के राज्य में गिल्फ उद्योग पर लगाये जानेवाले सरकारी महसूल भी धार्मिक उद्देश्य से अनुदान में लिये जाते थे। ११३२ के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि दो राजकुमारों और उनकी माता ने प्रत्येक घाणक (कोटहू) से राज-परिवार को होनेवाली आय में सत्तों दा पत्तिका नादुलगागिका (नाद्लाइ) में तथा उसके बाहर रहनेवाले साधुओं को द देने का आदेश जारी किया।<sup>४</sup> इस महसूल से राज्य को होनेवाली नकदी आय के हिस्से ब्राह्मणों को भी अनुदान में लिये गये हो तो आश्चर्य नहीं। इस तरह के अभिलेख बतियपय छोटे राज्यों में भी मिले हैं। भूतपूर्व भरतपुर राज्य में स्थित घयाना नामक स्थान में प्राप्त ८५५ के एक अभिलेख से मान्य होता है कि एक देवता के निमित्त एक मण्डपिका में तीन द्रम्म वसूल किया गया और इतनी ही राशि एक अन्य मण्डपिका में भी उगाही गई।<sup>५</sup> इसी प्रकार बजनाथ की प्रदास्त्रियों के अनुसार, एक स्थानीय सरदार ने मण्डपिका से होनेवाली अपनी आय में से प्रति दिन दो द्रम्म के हिसाब से एक अनुदान के रूप में दिया।<sup>६</sup>

उद्योग यापार का सामन्तीकरण परमारों के राज्य में भी तभी से चलता रहा। नासिक जिन में परमारों के एक सामन्त यशोवर्मन ने ११वीं सदी के दूसरे चरण में एक जन मन्दिर को दिये गये जमीन के कई टुकड़े और माथ ही दो

१ स० प्र० पु० ४ पन्ट २ पंक्तिया १५ १७ ।

२ इ० ए०, ४१, पृष्ठ २०३ ।

३ ए० इ० २ न० ८ श्लोक ४८ ४९ ।

४ वही न० ४ पंक्तियां १ ९ ।

५ वही २२ पृष्ठ १२० ।

६ वही, १, पृष्ठ ९७ ।



सुविधाएँ थी। गुल्क मण्डपिका शब्द का उल्लेख बहुत स चीनमय अभिलेखों में हुआ है<sup>१</sup> और हमें ऐसा लगता है कि अनुदान-स्वरूप राज्य की भाय का एक भाग देने का वहाँ आम चलन था। ११/६ व एक अनुदानपत्र से पता होता है कि कुमारपाल ने एक मन्दिर का न डोल की मण्डपिका में होनेवाली भाय का एक भाग—प्रति दिन एक द्रम्म व हिमाय स—अनुदान स्वरूप दे दिया।<sup>२</sup> एक भाय अभिलेख से प्रतीत होता है कि द्वितीय भीमदेव ने १२०० में कुछ चीजा की बिक्री पर लग नकद गुल्क स हानवाली भाय दा मन्दिर के पान प्रसाद और ब्राह्मणों को मिलान का खर्च चरान के लिए उन मन्दिरों के नाम हस्ता-तन्त्रित कर ली।<sup>३</sup> जाय पढ़ता है सप्तलणपुरी के कुछ व्यापारियों ने कुछ चीजा की बिक्री से होनेवाली नकद भाय अनुदानों के रूप में मन्दिरों को सौंप दी, और स्पष्टतः उद्दान वसा राजकीय भाग पर ही किया।<sup>४</sup>

व्यापार से होनेवाली राजकीय भाय को धार्मिक प्रयोजना से अनुदान में देने की प्रक्रिया का प्रभाव विन्ही व्यापार पर भी पड़ा। उसका एक उदाहरण हम वाकण में मिलता है। वहाँ बाहर में आनवाल जहाजा से स्वर्ण मुद्राओं के रूप में बमूद क्रिय जानवान गुल्क अनुदानस्वरूप एक धार्मिक सम्प्रदाय के सम्पत्तियों को सौंप दिया गया।<sup>५</sup> आश्चर्य नहीं कि गहस्था को भी इस अनुदान दिया गया है।

पश्चिमी भारत में मिलनेवाले ये मार प्रमाण शिल्प और व्यापार के सामन्तीकरण की साक्षी मरत हैं। विन्ही-गुल्क और चुगी से होनेवाली नकद भाय का हम प्रकार अनुदान में मन्दिरों को दे देने की प्रथा की तुलना मध्यकालीन यूरोप में दी गयी नवनी जागीरों से की जा सकती है। हमें यह पता नहीं है कि भारत में गहस्य ग्रीताओं का ऐसी जागीरें ली गयीं अथवा नहीं। हालाँकि सम्भव है कि कलचुरि च दल और चाहमान राज्या में सरकारी अमला के निमित्त निर्धारित क्रिय कुछ करों की बमूली नकद रकम में होती हो और इसलिए हम एक प्रकार की नकदी जागीर मान सकते हैं। लेकिन यह अनुमान निश्चित तथ्यों पर आधारित नहीं है और इसलिए यूरोप के साथ की

१ ६० ग०, ६, २०२ पक्ति ६।

२ ग० की० ओ० आर० आई० २३, ३१६ ८।

३ पुष्पा नियोगी स० प्र० पु० पृष्ठ २०१।

४ ६० ए०, ६ २०२ पक्ति ८ २६ पृष्ठ २०३ की सार-सूची।

५ ए० ६०, ३ न० ४० पक्तियाँ ५६ ५७।

गयी इस तुलना पर बहुत जोर नहीं दिया जा सकता ।

११वीं और १२वीं सन्धिया में उत्तर भारत में प्रचलित सामन्ती रीति नीतियाँ पर विचार करने से एता लगता है कि इस काल में सामन्ती अर्थ व्यवस्था इस क्षेत्र में कुछ दृष्टियाँ से अपनी चरमसीमा पर पहुँच गयी थी । धार्मिक तथा गृहस्थ भोक्ताओं को इतना अधिक भूमि अनुदान इसमें पहले कभी नहीं दिया गया था । इसी प्रकार भूमि अनुदानों के परिणामस्वरूप सामुदायिक तथा भूमि विषयक अधिकारों का इतना अधिक हास पहुँचे कभी नहीं हुआ था और न इसमें पूर्व ज़मीनी काल में किसानों पर इतने बुरा का बाम पड़ा था और न वे उपसामन्तीकरण से ही इतने अधिक प्रभावित हुए थे । फिर इस काल में हम सरकार की सहायता के पुरस्कार और प्रतिष्ठान स्वरूप अनुदान प्राप्त करने के भी सबसे अधिक उदाहरण मिलते हैं । और अन्त में, उद्योग व्यापार पर लग गुरुत्वात्स होनेवाली सरकारी आय के अनुदानस्वरूप दे लिये जान के भी अन्त में उदाहरण हम इसी काल में मिलते हैं । लेकिन साथ ही इसी काल में सामन्तवादी आर्थिक ढाँचे में दरार भी पड़ने लग गई थी— विशेषकर पश्चिमी भारत में । आगे हम इसी विषय पर विचार करेंगे । जिसे इतिहास में हिंदू शासन काल कहा जाता है उस काल के अन्तिम अंश में उत्तर भारत में कनिष्य नयी आर्थिक गतिविधि का उदय हुआ और उसके परिणामस्वरूप आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था मुद्रा के चलने के अभाव और किसानों के आपण की नींव पर आधारित पुरातन सामन्तवाद को जड़ें हिलने लगी ।

इस काल का अन्त हीन हीन काल जिसमें उत्तर प्रदेश, मालवा और गुजरात में परती जमीन को आगार कराने की दृष्टि में भूमि अनुदानों की महत्ता गमावत प्राप्त हो चुकी थी । यमाल के अनुदानपत्रों में अनुदान भूमि की उपज का अनुमान नगद राशि में बताया जान गया था और साथ ही एम धन की सीमाओं भी स्पष्ट रूप से निर्धारित कर ली जानी थी । जिसमें प्रकट होता है कि अन्त में अन्त में नये परतों यारान धन का आगार करने की गुंजाइश बचत कम हो गई थी । मानवा और गुजरात के अनुदानपत्रों में भी अनुदान गाँवों का सामान्य माप-माप बताया गया है जिसमें प्रकट होता है कि अन्त में अन्त में नये काल की किन्हीं हीन कालों की प्रज्ञानों का अनुदान पत्र में जा अधिपार और मुविधानों दी गया है जो के उद्योग तथा के सीमित रूप और उतका अनुचित नाम न रखा गया । फलतः अन्त में अन्त में नये

2377-18

मामन्तवादी अथव्यवस्था का चरमोत्कृष्ट और हास

क्षेत्र आवाद करने की सुविधा नहीं मिल पाती थी।

यही स्थिति हम वेगार या विष्टि के सबध में भी देखते हैं। यह मामल  
 वाणी अथव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता थी, और वलमी के मंत्रका राष्ट्र  
 कूटा तथा गुजर प्रतीहारा के अधीन पश्चिमी भारत में उत्पादन का एक  
 साधन माना जाता था।<sup>1</sup> लेकिन परमारा चौलुक्यो और चाहमानो के अभिलेखा  
 म दमका कोई उल्लेख ही नहीं मिलता। स्पष्ट है कि इन राज्या म यह प्रथा  
 समाप्त हो गयी थी। इसी प्रकार गाहडवाल और चंदेल अभिलेखा म विष्टि का  
 उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन पाल और सेन अनुदानपत्रा म 'सवपीडा तथा  
 कलचुरि अभिलेखो मे 'विष्टि का जिक्र हुआ है। किन्तु कुल मिलाकर वेगार की  
 प्रथा घट रही थी। इसे पुरातन सामन्ती व्यवस्था के आर्थिक बंधना के निश्चित  
 पन्ने का एक लक्षण माना जा सकता है। गायद वगार क बदने अब नरद क ही  
 लिया जान लगा हो। लेकिन इस अनुमान के समर्थन म हम काइ विशेष प्रमाण  
 नहीं मिलत। इसक कुछ प्रमाण मिलत भी हैं तो कश्मीर मे जिम हमन इन विवरण  
 म शामिल नहीं किया है। फिर भी यहा कश्मीरी साक्ष्य का उल्लेख कर दना  
 अनुचित नहीं होगा। राजतरंगिणी म कहा गया है कि वगार क रूप म श्रमिक  
 बोभा लेत थे (ऋड भारोडि)। थोफ-डोलाई के तरह प्रकार थे लेकिन उनका  
 बणन पुस्तक म नहीं किया गया है। एक ऐसा उदाहरण मिलता है कि कुछ  
 ग्रामवासियो ने एक साल तक बाभा ढाने का काम नहीं किया और फलत उन  
 सब पर जुमाना ठाकर उहें नण्डित किया गया। उहान जितना बोभा नहीं  
 ढाया या उतनी की कीमत के बराबर उनमे जुमाना वसूल किया गया और  
 पाम पटोस के क्षेत्रा म उन वस्तुआ की जा प्रचलित कीमत थी उसस अधिक  
 कीमत आकी गई।<sup>2</sup> समावना यही दीखती है कि ये जुमाने नकद वसूल किय  
 गय। यदि यह अनुमान ठीक हो ता निष्कप यही होगा कि वेगार के बन्ल नकद  
 गणि भी ली जा सकती थी। कभी-कभी वगार क बदने नकद और जिस  
 दागा रूपो म अदायगी भी जाती थी। जब ह्य क शासन-काल (१०८६-  
 ११०१) म एक मंदिर को लटा गया तो उसके पुजारिया न प्रायना का कि  
 उनम नकदी और नि सा अदायगी क बदले उहें वेगार स बरी कर लिया

१ इनके अभिलेखा म उत्पाद्यमानविष्टि गद का प्रयोग अक्सर हुआ है।  
 २ अनु० एम० ए० स्टीन, पण्ड १, लोक १७२ ८, दक्खिण, पृष्ठ १७२ ४ पर  
 पा० टि० भी।



जाय ।<sup>१</sup> लेकिन किसानों के बारे में ऐसा उदाहरण नहीं तो कभी और न उत्तर भारत के किसी भी अन्य हिस्से में मिलता है । फिर भी इस काल में मुग़ल के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखते हुए ऐसा सम्भव जान पड़ता है कि किसान नकद रकम चुकाकर बंधे बंधार से छुटकारा पा लते होंगे । इससे अतिरिक्त पूर्वी बंगाल के कवच विद्रोह जैसे किसान विद्रोहों के परिणामस्वरूप भी राजाओं का इस प्रथा की बंधोरता को कम करने के लिए मजबूर होना पड़ा होगा । पश्चिमी भारत में नगरों की बहुलता का सम्बंध सामान्य विधि की प्रथा के लोप से था क्योंकि इस प्रथा के समाप्त हो जाने से विमान और कारीगर गाँवों का छोड़कर शहरों में बस सकते थे और वहाँ शिल्प कारीगरी का धंधा कर सकते थे ।

इस काल में मध्य भारत और पश्चिमी भारत में कुछ और भी ऐसी बातें हुईं जिनसे ग्रामीण क्षेत्रों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था कमजोर हो गई । अनुदानों के परिणामस्वरूप अक्सर ऐसा होता था कि जो गाँव दीर्घ काल से एक खास आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत आते हुए थे उन्हें उनसे अलग करके नये क्षेत्र में मिला दिया जाता था । मन्दिरों को दान किये गये बहुत सारे गाँवों के कारण इनके पास पहले से मौजूद क्षेत्रों के निकट ही नहीं पड़ते थे । फलस्वरूप मन्दिरों के साथ इन गाँवों को नया आर्थिक सम्बंध स्थापित करना पड़ता था, और कई दृष्टियों से उन्हें आस-पास के उस ग्रामीण क्षेत्र से अपना सम्बंध तोड़ लेना पड़ता था जिसकी आत्मनिर्भरता में उनका इतना अधिक योगदान होता था । उदाहरण के लिए, सोमनाथ के मन्दिर के अधीन २००० गाँव थे और ये सभी किसी एक ही क्षेत्र में नहीं पड़ते थे । इस मन्दिर को विभिन्न राजाओं से दान में जो गाँव मिलते रहते थे वे स्पष्टतः एक दूसरे से अलग अलग हुआ करते थे । उत्तर प्रदेश में जागु नामा के प्रभावशाली पुरोहित परिवार को किये गये विभिन्न ग्राम अनुदान इसके उदाहरण हैं । इस परिवार की भूमिपति गाहड़वाण राज्य के १८ पत्तलामो में फली हुई थी और इसलिए यह कई आर्थिक एकाग्रता की आत्मनिर्भरता के लिए बाधक थी । घटठारह पत्तलामो में फल इन गाँवों की पदावार में अनुदानमोमी अपनी सुविधानुसार हर फरक कर सकती थी । आत्मनिर्भर आर्थिक जीवन की आवश्यकताओं की परवाह न कर वह इस बात पर आग्रह रख सकती थी कि वह वही पत्तलामो उगायगा जो अमुक गाँव की मिट्टी के लिए अथवा उसकी अपनी आवश्यकता के लिए ज्यादा ठीक है ।

इस काल में गतिहीन ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के कमजोर हातों को एक

१ राजतरंगिणी अनु० एम० ए० स्टीन, खण्ड १ १०८१-८८ ।

और भी सभ्य सामने आता है। राजा तथा अनुमानमोगी गिल्पिया और व्यापारिया की सेवाया वा प्रत्यक्ष उपयोग करते नहीं लिखाई पढते हैं। इसक बजाय उन्हें इन लागे से जितना लने का अधिवार था उतना व जिस के रूप म अथवा नकल ही लिया करते थे। लगता है कि इस दिना म पहला कदम पश्चिमी भारत म उठाया गया। अब वहाँ व्यापारिया और गिल्पिया की— इन लाना मे कोई स्वास फव नही था—राज्य का दातव्य जिस के रूप म चुकाना पड़ता था। कालक्रम मे उनसे नरद अत्यागी की अपेक्षा की जान लगी। खास तौर से जत्र के अपना माल बेचते थे तब तो उनस नरद महसूल ही लिया जाता था। अत्र वारीगरा और सौतागरा का मन्दिरा वा दान किये गाँव म बंधे रहन को नही कहा जाता था। इसके बदले उनसे नरद कर लिया जाना था और मन्दिर व व्यवस्थापक जहूरत की चीजें या जरूरी सेवाएँ उमी राणि व बल पर प्राप्त किया करते थे। उदाहरण के लिए मालवा, राजस्थान और गुजरात म मन्दिरा की गिल्पिया और व्यापारिया की सेवाएँ सुनम करा- कर इह आत्मनिभर आर्थिक इवाइया का रूप दे दना आवश्यक नही समझा जाना था।

यद्यपि यह बात मुख्यत गहरा तक ही सीमित थी किन्तु शहरा की भी सख्या कुछ कम नही थी। विभिन्न सामग्रिया व आधार पर दारय शमा ने चाहमान राज्य म १३१ स्थाना के नामा की एक सूची तयार की है<sup>१</sup> जिनम स अधिनाश गायद शहर ही थ। डी० सी० गागुली ने परमार राज्य म— मुख्यत मालवा म—स्थित २० शहरा के नाम बताये हैं।<sup>२</sup> इनम हम उनकी दूसरी राजधानी प्रसिद्ध नगरी अथूणा को जोड सकत हैं। पुष्पा नियोगी न गुजरात म चौलुक्या व राज्य म स्थित ८ शहरा के नामा की सूची दी है।<sup>३</sup> इसम बदरगाहा म बसे वे तटीय नगर शामिल नही हैं जिनसे गुजरात का सारा समुद्र तट भरा पडा था। अरवा के लिखे विवरणा म सिंध और पश्चिमी भारत के अनेक शहरा के नामा का उल्लेख हुआ है।<sup>४</sup> अलबरूनी के यात्रा विवरण और मुलतान महमूद के भारत विजय अभियान के वृत्तांत व आधार

१ स० प्र० पु०, परिशिष्ट ५०।

२ हिस्ट्री आफ द परमार डाइनस्टी पृष्ठ २३६।

३ पुष्पा नियोगी स० प्र० पु०, पृष्ठ १२०-१।

४ वही पृष्ठ ११६-२१।

पर पुष्पा नियोगी ने उत्तर भारत के २५ नगरों की एक सूची तैयार की है।<sup>१</sup> इस सूची को पर्याप्त नहीं माना जा सकता। इन २५ नगरों के अलावा भी बहुत से नगर इस क्षेत्र में थे। लेकिन पूर्वी भारत में नगरों की संख्या अधिक नहीं जान पड़ती, यद्यपि पाला के नौ केनौ विजयम्बिकावार गायद नगर ही थे। इनमें हम उत्तरी और पूर्वी बंगाल में सना की राजधानियाँ काँडाइ संकत हैं।<sup>२</sup> कुछ मिलाकर जो प्रमाण मिलते हैं उनसे यही लगता है कि पश्चिमी भारत में नगरों की संख्या अच्छी लगी थी और इनमें से कई काफी बड़े-बड़े थे।

पश्चिमी भारत में इन सब नगरों का अस्तित्व देखते हुए ऐसा मानना अनुचित न होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में जो चीजें उपजाइय जाती थी उनमें से बहुत कुछ ग्रामवासियों के उपयोग के बाद बच जाता था क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इन गहरों की गाँवादी की जरूरतें कैसे पूरी हो पाती? कुछ शहरों की गाँवादी बहुत घनी थी। अन्धिलपाटक में तो ५८ मणियाँ थी।<sup>३</sup> इन गहरों की जरूरतों के कारण शहरों तथा गाँवों के बीच निश्चय ही अच्छे-बुरे-वास पैमाने पर आन्तरिक व्यापार चलता होगा जिससे गाँवों की गतिहीन अर्थ-व्यवस्था का रूप बदलता होगा।

घोड़े तल और नमक का व्यापार राजस्थान में पहले भी होता था। अब इन वस्तुओं का व्यापार बड़ा और भी बढ़ गया। चाहमान अभिलखा ने यह बात निरालु स्पष्ट है कि अश्व विक्रेताओं महाजनों मठा और धानक स्वामियों का व्यापार बहुत अच्छा चल रहा था।<sup>४</sup> विशेष रूप से घोड़े और सामान भील से प्राप्त नमक के व्यापार से राज्य को खूब जुगी महसूस मिलता था। लेकिन महत्त्व की बात यह है कि ११वीं सदी से बहुत सी ऐसी वस्तुओं का भी आन्तरिक व्यापार होने लगा जिनका उपयोग आने लोग अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया करते थे। चाहमान अभिलखा ने बात बताई है कि राजस्थान में गहूँ, मूँग, धूँना, तन, पान, मसाला, दाल आदि का व्यापार खूब चलता था।<sup>५</sup> हमें प्रतीत होता है कि इन नगरों और बड़े-बड़े के व्यापारियों तथा ग्रामवासियों

१ स० प्र० पु० पृष्ठ १२१।

२ वही पृष्ठ ११८-९ (गणनीनी नरियाँ विजयपुर विजयपुर)।

३ पुष्पा नियोगी की स० प्र० पु० पृष्ठ १२० पर कुमारपालचरित में उद्धृत।

४ स० डी० आर० मण्जरेकर ए० इ० ११ न० ८।

५ दारण नामा स० प्र० पु० पृष्ठ २६८।

और बुनकरा का भी उल्लेख दखन का मिलता है ।<sup>१</sup> मच ता यह है कि चाहमान अमिलखा म हम मारवाड क उन सौनागरा की व्यापारिक प्रवृत्तियों के उदगम की भांति मिलती है जो बाद म मारवाडी व्यापारियों के रूप में प्रसिद्ध हुए ।

परमार अमिलखा स भी ऐसा संकेत मिलता है कि उस राज्य म आन्तरिक व्यापार अच्छे-ब्यास पमाने पर होता था । राजस्थान म प्रसिद्ध अथूणा नगर म व्यापार की स्थिति बहुत अच्छी थी । यहाँ दैनिक उपयोग की वस्तुओं का व्यापार होता था—जस अन्न (विशेषकर जौ) मूत, मूँ, कपडा, नमन शक्कर<sup>२</sup> और तेल । ऐसा जान पड़ता है कि बगल स मजीठ लाकर अथूणा म बेचा जाता था ।<sup>३</sup> नासिक के एक परमार सामंत के अमिलख स पता चलता है कि वहाँ बहुत सी दुकान और घाणर ये ।<sup>४</sup>

ऐसा प्रतीत हाना है कि गुजरात के व्यापारी जो वणिक कह जात ये काफी समृद्धिवाली थे । वस्तुपाल, तजपाल और जगड्डु य तीन लक्षपति व्यापारी तो प्रसिद्ध ही हैं ।<sup>५</sup> इन्हें आन्तरिक और बाह्य दोनों तरह के व्यापार स धन मिलता था, और वहन की जरूरत नहीं कि इन्हें उन साधारण सौदागरा से भी मदद मिलती थी जिनकी आर्थिक प्रवृत्तियों का सम्बन्ध आम जनता क आर्थिक जीवन से था । पल्दयो नाम से नात एक व्यापारिक समुदाय अन्न बचता था (कणादि विव्रना वणिक) ।<sup>६</sup> एक साधारण व्यापारी का उल्लेख भी मिलता है जो केवल चना बचता था (बणकविक्रयकार) ।<sup>७</sup> इससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रा म भी कुछ लाग खाद्यान्न खरीद कर ही खात व ।

उत्तर प्रदेश म आन्तरिक व्यापार का बहुत कम संकेत मिलता है यद्यपि गाहडवाल अमिलखा म प्रयुक्त प्रविणकर शब्द का मतलब फुटकर विव्रनाया

१ दशरथ शर्मा स० प्र० पु० पृष्ठ २६६ ।

२ ए० इ० १४ न० २१ ६६ ७६ ।

३ वही श्लोक ६६ ।

४ वही १६ न० १० पंक्तियाँ १७ ३१ ।

५ ए० व० मजुमदार दि चौतुक्याज आफ गुजरात, पृष्ठ २६७, २८८ ५ ।

६ हेमचन्द्र का दत्तानाममाल ६ ५६ ।

७ मेस्तुग-वृत्त प्रथम अचिन्तामणि, स० जिनविजय मुनि पृष्ठ ७० ।



है।<sup>१</sup> लेकिन भारत का विदेशी व्यापार का विषय में अरबों के अधिनाग विवरण का सम्बन्ध ६वीं और विष्णु स्तूप में १०वीं मंठी में है। इस काल से सम्बन्धित विवरण में अनेक भारतीय वास्तुशास्त्रों का जिक्र है।<sup>२</sup> यह दसवीं सती में पश्चिमी तट पर व्यापारिक गतिविधियाँ के फिरे में तीव्र हो उठने का सबब बताता है। इस व्यापारिक पुनरुत्थान का सम्बन्ध चीन द्वारा १०वीं मंठी के अंतिम वर्षों से जहाजराणा और समुद्री व्यापार के क्षेत्र में प्रारम्भ किया गया उपरमा से भी रहा होगा। इस दिशा में रुचि रखनेवाले एक के बाद एक कई शक्तिशाली चाल राजाओं ने दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत के व्यापार के विकास में बड़ा योगदान दिया।

१००८ के एक अभिलेख से पता होता है कि काकण का क्षेत्र केवल तटीय राज्यों के साथ ही नहीं बल्कि सुदूर विन्दिगा (द्वीपांतर) के साथ भी खुले व्यापार करता था।<sup>३</sup> और इस व्यापार के परिणामस्वरूप वहाँ के शासक माण्डनिक रटटराज का काफी नफ़ादा आय भी होती थी। विदशा से आनेवाले प्रत्येक जहाज से वह एक गन्धियाण स्वर्ण और तटीय क्षेत्र में कण्डलमूलीय नामक स्थान में आनेवाले प्रत्येक जहाज से एक घरण साना बसूने करता था।<sup>४</sup> सम्भव है कि तटीय व्यापार स्थानीय नौकाओं में किया जाता रहा हो। य सारी बातें काकण तट पर बढ़ती हुई व्यापारिक गतिविधियाँ की साक्ष्य भरती है। व्यापार का इतना विकास हुआ कि वहाँ मणिग्राम नामक व्यापारिका का एक गहर ही बस गया।<sup>५</sup>

इसी प्रकार चीन के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था। पहले इस व्यापार पर मुख्यतः अरबों का एकाधिकार था और बाद में चीनियों का हुआ गया। ये दोनों देश अपने ही जहाजों में व्यापार करते थे। १०वाँ सदी से पूर्व भारतीय सीमागरी के विदशा में जाकर व्यापार करने का कोई सबब नहीं मिलता।<sup>६</sup> लेकिन १२वीं सती की एक कृति मानसोल्लास में यह सलाह दी गई है कि राजा के वास्तुशास्त्र में ठहर भारतीय जहाजों की जितने मूल्य का माल उनमें

- १ नन्वी अरब भारत के सम्बन्ध पृष्ठ ४६।
- २ वही।
- ३ ए० इ०, ३ २६६ ६७।
- ४ वही, ३ न० ४० पक्षिया ५६ १७।
- ५ वही पक्षि ४४।
- ६ ए० के० मजुमदार दि चौकुयाज पृष्ठ २६७।

मना हा, उमका दगयी तिग्ना मुत्र क म्प म उम दता चार्त्त ११ १३वी मना म जगदु नामा एव भारतीय व्यापारी था। पारग क गाव वृत्तिरमित म्प म व्यापार करता था घोर मान को धन ही जहाज म दता था। ११ दगर घनाया घनना परिपमो तट पर माग्नाय ममुना मुत्रेय का गतिरिति का भी उतन मितता है। उगाहरण क विष्णु, १३वां मना म मार्कोपोलो ३ न्न मुत्रा की गिताया था। ११ म्प भी सिद्ध हाता है कि भाग्य म उन निना जगजराता था घनता था।

इनका ता निदिधा है कि १३वा मनी म भारत म जहाज बनाता का काम काफी बड पगा पर घनता था। मार्कोपोलो ३ न्न भारतीय जहाजा का उतन किया है जा बट्टा सार मीनागर घोर तरन्तरत्त क मान लरर पूवा (घीन का य तरगाह) जाया करत थ। ११ दगर घनाया परिपमा तट पर स्थित बड व्यस्त बंदरगाहा की भा घर्षा है जहाँ घन्व घोर घीना व्यापारी घाया करत थ। घरव लगना ३ १०वीं मनी म जिना बन्दरगाहा का जिन किया है उनही तागा ७वा मनी क घरव लगना द्वारा बताद गई सध्या स बट्टा अधिक् है। ११ इन सजस प्रवट होना है कि भारत क परिघमा तट पर १०वी स लरर १३वी मनी तन विन्ती व्यापार फिर काफी जोर गोर स होने लगा था। इन धान की पुष्टि समवालीन घनुमानपत्रा स भी होती है। इनम हम नरन्त घुगी घोर रिन्नय वर का अधिकाधिन उल्लेख देखने को मिलता है।

विन्ती व्यापार का स्वरूप भी घन बल गया था। ईस्वी सन् की प्रारम्भिन सदिया म भारत मुख्यत विलासिता की सामग्री मसाले, रोगी वस्त्र घोर मलमल दूसरे दगा को भजा करता था। लेविन घय वह कमाया हुआ चमटा, चमडे का सामान मोटा पुरदरा कपडा घोर घय प्रकार के कपड भी

१ गा० ओ० सि०, २८ परिच्छेद ४ श्लोक ३७४ ६।

२ ए० के० मजुमदार स० प्र० पु०, पष्ठ २६७। जगदुचरित नामक कृति जिसका नायक एक सौदागर है १४वी सदी म किसी समय लिखी गई। वही पृष्ठ ४२० / १२११ म एक हिं दू व्यापारी गजनी म व्यापार करता था (वही पष्ठ २६७)।

३ ए० के० मजुमदार स० प्र० पु० पष्ठ २६८।

४ मार्कोपोलो २ २३१।

५ नदवी, अरब भारत के सम्बन्ध पष्ठ ४६।

निर्यात करने लगा था।<sup>१</sup> सम्भव है, मोटा कपड़ा सण या पटुए से ही बनाया जाता रहा है। लेकिन चीनी विवरण में बढिया किस्म के पटुए के निर्यात का भी उल्लेख हुआ है।<sup>२</sup> चीनी और अरब विवरणों के अनुसार इस काल में मालवा और गुजरात से इख तथा अदरख भी बाहर भेजा जाता था। माटे कपड़े, रुई स तयार की गई चीजा, पटुए और शक्कर का निर्यात बड़े पमान पर होता होगा क्योंकि ये ऐसी वस्तुए थी जिनका उपयोग अरब और चीन के उच्च वर्गीय लोग तक ही सीमित नहीं रहा होगा। ईस्वी सन की प्रारम्भिक सन्ध्या में बर्निया किस्म के कपड़ों का निर्यात तो होता था, किन्तु पटुए और शक्कर का नहीं।<sup>३</sup> इन प्रकार लगता है कि विदेशी व्यापार में ये माल नये नये ही दाखिल किये गये थे। इन दोनों वस्तुओं के व्यापार का परिमाण क्या था इसका हम कोई अंदाजा नहीं है। लेकिन इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि ये विलासिता की सामग्री नहीं थी और इसलिए इनके निर्यात का असर इनके उत्पादकों पर भी पड़ा होगा, क्योंकि उन्हें अपनी कपास, पटुए और ईख के लिए नकद दाम दिये जाते होंगे। जहाँ तक चीन का सम्बन्ध है जिस प्रकार पहली सदी में भारतीय मसालों के आयात का परिणामस्वरूप रोम को अपना बहुत सारा साना गंवाना पड़ता था, उसी प्रकार १०वीं १२वीं सदियों में भारत की उपयुक्त वस्तुओं और विलासिता की सामग्रियों के आयात के कारण चीन का काफी सोना चांदी भारत चला आता था। अतः रोम की ही तरह चीन को भी १२वीं सदी में मलाबार तथा क्विलोन के साथ अपने व्यापार पर प्रतिद्वन्द्व लगाना पड़ा।<sup>४</sup>

- १ नन्वी, अरब भारत के सम्बन्ध पृष्ठ २६५ ६६।
- २ पुष्पा नियोगी, द इकनामिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्दन इंडिया पृष्ठ १३६।
- ३ परिप्लस में एक स्थल पर भारत से निर्यात की जानेवाली वस्तुओं में शक्कर का उल्लेख है। लेकिन यह निर्यात इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था कि उस पुस्तक में निर्यात की जानेवाली वस्तुओं की जा एकीकृत सूची में दी गई है, उसमें स्थान प्राप्त कर सकता।
- ४ चाउ जू-जुआ, पृष्ठ १८ पुष्पा नियोगी की सं० प्र० पु० के पृष्ठ १४७ पर उद्धृत। अब तक भारत के पश्चिमी तट पर कोई चीनी सिक्का नहीं मिला है। लेकिन चीनी सिक्के यहाँ हों सकते हैं। इस सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। शायद चीनी लोग भारत को सोने और चांदी का ढाँचा भेजते थे, जिन्हें गलाकर यहाँ सिक्के या आभूषण बनाये जाते थे। लेकिन तजौर में बहुत-से चीनी सिक्के मिले हैं जो दक्षिण भारत के चीन के व्यापारिक सम्बन्धों की साक्ष्यी भरत हैं।





काफी बड़े पैमाने पर होती थी। स्पष्ट ही इन उपजायमान जमीनों का जीर्णोद्धार की जाती थी उह सरोवर देहानी सौभाग्य निर्यात के लिए बरतमाहा का भेज देत थे। यही कारण है कि मध्यप्रदेश का जमान १३वीं सदी में नवद लगान दिया करते थे।<sup>१</sup> जहा तक ईश का सम्बन्ध है इसका उल्लेख चन्देन राज्य में ही नहीं मालवा में भी होता था और गुजरात में ममुद्र-तट से गजपुर का निपात किया जाता था। इस काल में इत परन के यद्द इणुनिपीडनयत्रम् का काफी प्रयोग होता था, जिसका उल्लेख हम हेमचन्द्र की कृति देसोनाममाला में मिलता है।<sup>२</sup> यह तथ्य उडे महत्त्व का है क्योंकि इसमें पहल हम ईश परन के यत्र के लिए वाई सस्त्रुत गद नहा मिलता।<sup>३</sup> इस यत्र के प्रयाग के प्रसार स गवकर उद्याग को बडा उत्तजन मिला। हम यह तो मालूम नहीं है कि कपास से सूत-कपडा आदि बान की प्रणाली में वाई प्रगति हुई या नहीं, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि ७वीं सती में रहमी (विद्वाना न इस बगल के लिए प्रयुक्त एक नाम माना है) से सूती कपडा का निपात होता था, और मालवा तथा गुजरात में कपास की खती काफी बड़े पैमाने पर हाती थी। भारतीय कपास की श्रेष्ठता की साक्षी मार्कोसाला भी मरता है। उसका अनुमार गुजरात में कपास के बडे बडे पीघा से तो २० साल पुरान होने पर छ छ गज ऊँचे हा जात थे काफी रई पदा होती थी।<sup>४</sup>

इश की खेती न केवल मध्य भारत में होती थी बल्कि राजस्थान के सूभे इना में भी इसके उपजायमान के प्रमाण मिलत हैं। इसका मतलब यह हुआ कि सिंचाई के कृत्रिम साधना का भी उपयोग किया जाता था। यहाँ अरहट्टा या अरधट्टा का उल्लेख किया जा सकता है। अरहट्टा या अरधट्टा पानी निरालन का एक चक्र था जिसमें कद बाल्टिया लगी हाती थी और बला की सहायता से उसका जरिये कुएँ से पानी निकाला जाता था। यह आजकल के रहट के जसा था। इस यत्र का उल्लेख पन्ने-महल २वीं गताती के अभिनवा में मिलता है और इसका उपयोग भारत ने गायद फारस से सीखा था। यहा इसका प्रचार हान में काफी समय लगा, क्योंकि यहाँ के लगभग गतिहीन कृषक समाज के लाग नद चीता का जल्दी स्वीकार नहीं करत थे। लेकिन अगली

१ का० ड० इ० ४ न० ११६, पक्तियाँ १ ११।

२ २ ६५ ६ ५१, ४ ४१।

३ जोगगचन्द्र राय कृत एशिएट इंडियन साइफ पृष्ठ ८५१, ए० के० मजुमदार की सं० प्र० पु० के पृष्ठ ४७८ ६ पर उद्धृत।

४ ए० के० मजुमदार सं० प्र० पु० पृष्ठ २५६।

तीन सन्धिया में यह मात्र काफी लोचप्रिय हो गया, क्योंकि दर्जा और दर्शन पूर्व मारवाड़ में प्राप्त १२वां और १३वीं सन्धिया में चाहमा अभिलेखा में सिद्ध होता है कि १११ बुधा का उपयोग काफी बड़े पैमाने पर होता था जिनसे उपयुक्त ढंग में चक्र द्वारा पानी निराना जाता था। इसमें ईंधन, कपास और सण जसी नरक धान्य दनवाली व्यापारिक पगला भी होती का सूब उत्तेजन मिला होगा।

संगता है कि १२वां और १३वीं सन्धिया में कमाय हुआ चमड़े और चमड़े के सामान का निर्यात मध्य-पूर्व और चीन का काफी बड़े पैमाने पर किया जाने लगा। दंग में इस उद्योग की प्रगतिशील स्थिति से निर्यात का बल मिला, और यहाँ इस उद्योग में विकास की सारी दली और विदगी गेना सूत्र भरत हैं। राजतरंगिणी में कश्मीर में चमकारा का उल्लेख हुआ है<sup>१</sup> और लक्ष्मीधर ने चमकारा में सधा का जिक्र किया है।<sup>२</sup> हमचन्द्र ने कई तरह के सूता और जून बनानेवाला का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> मार्कोपोलो कहता है कि गुजरात में बहुत ज्यादा चमड़ा कमाया जाता था और यहाँ लाल और नीले चमड़े की बहुत सुंदर चटाइयाँ बनायी जाती थीं।<sup>४</sup>

उद्योग-व्यवसाय को नीचा निर्माण के नौशल के विकास में भी सहायता मिली। परमार भोज द्वारा ११वीं सदी में लिखी युक्तिरत्नपत्र में कई तरह के जलयानों का उल्लेख मिलता है और उसमें बताया गया है कि तम्बाका लोहे की कीला से नहीं बल्कि रस्ती से जोड़ना चाहिए क्योंकि कीला होने से नीचा को चुम्बकीय चट्टानों अपनी ओर खींच ले सकते हैं।<sup>५</sup> यद्यपि यह लेखक का श्रद्धाविशवास ही प्रतीत होता है फिर भी इसमें एक खूबी तो थी ही कि कीला से जाड़े गये तम्बाकी अपना रस्ती से बाँधे तम्बाका में आधी-तूफान के थपड़ झूने की अधिक क्षमता होती।

११वीं १२वीं सन्धिया के व्यापार-व्यवसाय का किसी बाहरी परिस्थिति से सहायता मिली या नहीं, यह कहना कठिन है। सम्भव है क्रूसडा (धमयुद्ध)

१ पुष्पा निवासी स० प्र० पु०, पृष्ठ २४७।

२ वी० पी० मजुमदार सांख्यिक इकनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इंडिया, पृष्ठ २०८।

३ ए० के० मजुमदार स० प्र० पु० पृष्ठ २६१।

४ वही पृष्ठ २६० ६१।

५ पुष्पा निवासी स० प्र० पु०, पृष्ठ १७०।

के कारण यूरोप के साथ अरब के व्यापार में बाधा पड़ने के कारण अरबों का ध्यान भारतीय व्यापार की ओर गया हो। इधर यूरोप की भौतिक समृद्धि खूब बढ़ी थी, और उसके रहन सहन का स्तर काफी ऊँचा हो गया था। इसलिए विलासिता की सामग्री की माँग भी बढ़ी ही होगी। महमूद और मसूद के शासन काल में सिक्के बहुत बड़े पमाने पर जारी किये गये और उनका स्तर भी बहुत अच्छा था। इससे ११वीं सदी में भारत तथा पूर्वी इस्लामी दुनिया के बीच व्यापार को बड़ा उत्तेजन मिला, यद्यपि विद्वानों का ऐसा विचार है कि इस व्यापार का सतुलन भारत के ही पक्ष में था।<sup>१</sup> वाणिज्य-व्यापार के पुनस्त्यान का ठीक ठीक कारण चाहे जो रहा हो, इसमें सन्देह नहीं कि इस काल में इस क्षेत्र में काफी प्रगति हुई और इस तथ्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वाणिज्य व्यापार की प्रगति के फलस्वरूप पश्चिमी भारत में भूमि पर आधारित सामंतवाणी अथव्यवस्था की जड़ें कमजोर होने लगी थी।

जान पड़ता है आंतरिक व्यापार को यातायात के साधनों में कुछ सुधार होने से उत्तेजन मिला। भूतपूर्व भरतपुर राज्य के वमाना नामक स्थान से प्राप्त ६५५ के एक अभिलेख से प्रतीत है कि गुरसेन शासक वंश की किसी महिला ने विष्णु को एक गौव अनुदान में दिया था, जिससे होकर गुजरनेवाले व्यापारिक माल से लदे प्रत्येक घाड़े पर चुगी वसूल की जाती थी।<sup>२</sup> इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि १०वीं सदी से यहाँ घाड़े का उपयोग माल ढोने के लिए किया जाने लगा था। एक अन्य अभिलेख में ऊँट पर लदे माल पर राज्य द्वारा चुगी वसूल करने का उल्लेख मिलता है। भूतपूर्व जोधपुर राज्य में एक मंदिर को अनुदानस्वरूप यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह अपने क्षेत्र में धान जानवाले ऐसे प्रत्येक कारवा से जिसमें दस से अधिक ऊँट और २० से

१ सी० इ० वामवथ दि गजनवाट्टस पृष्ठ ७६।

२ यहाँ 'प्रति घोटक च दाने द्रम्मो देवस्य भागवतो विहित' शब्दों का प्रयोग हुआ है ए० इ० २२, न० २० श्लोक ४१। दो गौवा तथा श्रीपथा और बुसावट की मण्डपिकाया से होनेवाली आय में से प्रति दिन तीन तीन द्रम्म के अनुदान (बही, श्लोक २३६ ४०) के सम्बन्ध में आर० डी० बनर्जी का यह विचार कि महसूल प्रत्येक अश्व भार माल पर लगाया जाता था सही जान पड़ता है हालाँकि वे यह भी कहते हैं कि जब घोड़ा बेचा जाता था तभी महसूल लगाया जाता था (बही, १२१)।

अधिक बल था, एक एक पत्ता बमूल करे।<sup>१</sup> यद्यपि यह अभिलेख १३वीं सदी के अंतिम वर्षों का है लेकिन ऊँचा का उपयोग गामद पहले ही गुरु ही गया होगा, क्योंकि उन अभिलेखा और मानसोल्लास<sup>२</sup> के अनुसार सनिक अभियानों में यातायात के लिए भसा ऊँचा और बला का उपयोग होता था। इस प्रकार अन्न बला का अनावा मान डोलने के लिए ऊँचों और घाटा का भी व्यापक उपयोग प्रारम्भ हो गया था। यह सच है कि पूर्वी भारत में ऊँचा का उपयोग नहीं हो जाता होगा, लेकिन थोड़े अन्न बहा मार बाहक पशु बन गया था। अभिलेखों में घोडा की त्रिशी का बार बार जिक्र होने से लगता है कि अन्न का सनिक अभियानों के लिए ही नहीं बल्कि व्यापारिक प्रयोजना के लिए भी काफी महत्वपूर्ण हो गए थे। इसलिए हम ऐसा मान सकते हैं कि इन नये साधनों के प्रयोग में यातायात की सुविधा बनी होगी जिससे व्यापार को सहायता मिली होगी।

इस काल में मुद्रा की स्थिति पर विचार करने पर हम आतंरिक और विदेशी दाना तरह की व्यापारिक प्रगति को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। समकालीन अभिलेखा तथा साहित्य में अनेकांक स्थानों पर मुद्रा का उल्लेख हुआ है, और इस काल के बहुत से सिक्के हम मुलभ भी हैं। १००० ईस्वी के बाद उत्तर भारत में सिक्का की तलाई फिर से आरम्भ होते देखते हैं, यद्यपि यह चीज अभी मुख्यतः उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, मानवा, गुजरात और राजस्थान तक ही सीमित थी। बंगाल और बिहार में इसके बहुत क्षीण प्रमाण ही मिलते हैं। मच तो यह है कि कुछ विद्वानों द्वारा पता चिये गए इस मत को सहज ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हम काल में पूर्वी भारत में विनिमय का माध्यम कौड़ी थी। किन्तु बंगाल में सेना और उनके समकालीन गामका का अधीन स्थिति निश्चय ही कुछ बल गद। मेन भूमि अनुदानपत्रों में अनुत्त गावा या भूमि गणना का राजस्व का अनुमान कपट्टक पुराणा में लगाया गया है। पाना का अधीन हम इस विनिमय माध्यम कपट्टक पुराण की कोइ जानकारी नहीं मिलती। टिपडा जिल में प्राप्त १२३४ का एक अभिलेख में दामांतरदव द्वारा २० ब्राह्मणों को दान किये गये प्रत्येक क्षत्र की बार्थिन आय नरत्त राशि में कूती गई है और इन ब्राह्मणों का इन गमों क्षत्रों से हानवानी

१ १००० ११ न० ८ २२ पत्तियां ८७।

२ अध्याय २० नोट १०६८।

कुल आय १०० पुराण बताई गई है,<sup>१</sup> हातांकि हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि य ग्रहीता अपना अंग नकद राशि में ही वसूल करते थे। अब तक जो सिक्के मिले हैं उनमें से किसी को भी सेन अथवा पाल राजाओं या इस काल के बंगाल के किसी अन्य शासक का नहीं माना जा सकता, लेकिन अमिलेबा के हवालियों से लगता है कि पालों के राज्य में तो मुद्रा का खास चलन नहीं था, किन्तु मनो के राज्य में उसका काफी चलन था।

जैसे जस हम पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, हम मुद्रा का अधिकाधिक चलन देखने का मिलता है। सिक्के जारी करनेवाला पहला गाह्णवाल राजा मदनपाल (११००—११) था। द्रम्म नाम के बहुत से सिक्के उसके पुत्र गाविन्दचन्द्र (१११२—१५) के माने जाते हैं। अभी भी उससे सिक्के जिस तर्जनी से मिल रहे हैं, उसमें प्रकट होता है कि उनका व्यापक चलन था। अब शासकों के सिक्के के बारे में हम बहुत कम जानकारी है। उत्तर भारत के प्रमुख राजवंशों में सबसे पहले साने के सिक्के की ढलाई जाहल के कलचुरि राजवंश ने फिर से आरम्भ की। इस राजवंश के कई शासकों के सिक्के प्राप्त हुए हैं। कलचुरि स्वर्ण मुद्राएँ सबसे पहले नागदेव (१०१५—८०) ने जारी कीं। इसके बाद चालुक्य नामका न मुद्राकेन आरम्भ किया। इस राजवंश ने अपने शासनकाल के पहले से माना में कई सिक्के नहीं ढलवाये, लेकिन कीर्तिवर्धन (१०६०—११००) ने यह काम शुरू किया और उसके उत्तराधिकारियों ने उसका अनुसरण किया। इन शासकों ने तीन प्रकार के द्रम्म जारी किये। चालुक्य के राज्य में मुद्रा के बड़े हुए चलन का संकेत १२१२ के एक अभिलेख से मिलता है।<sup>२</sup> इसमें एक विसंख, अर्थात् जमीन देहन रखकर मुद्रा देने का जिक्र है, यद्यपि यह राशि कितनी थी, यह बात यहाँ नहीं बताई गई है।

ऐसे सिक्के बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं जो प्रतीहार साम्राज्य के ध्वसा-योग्य पर उदित होनेवाले तथाकथित सम्बद्ध राजपूत राजवंशों के माने गए हैं। उदाहरण के लिए, चाहमानों को बहुत से सिक्के जारी करने का श्रेय दिया जाता है और ऐसे सिक्के एक यासी तादाद में प्राप्त भी हुये हैं। बहुत से ऐसे सिक्के मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि उनके राज्य में वाणिज्य-वापार खूब फूल फूल रहा था। इसीलिए वहाँ मुद्राकेन आवश्यक था। दुर्भाग्य और वस्तु-विक्रय में प्राप्त होनेवाले राजस्व का अनुमान नकद राशि में लगाकर मन्त्रि-

१ ए० इ० २० ५७ ५८।

२ ए० इ० २५ न० १ पृष्ठियाँ १० १४।

को अनुदान में दिया जाता था। और जहाँ तब गुहिला का सम्बन्ध है, श्री गुहिल मुद्रा चिह्न से अंकित लगभग २००० राज मुद्राएँ १८६६ में आगरा में प्राप्त हुई<sup>१</sup> लेकिन आजकल वे कहीं किसके पास हैं, यह पता नहीं है। हजारों की तादाद में प्राप्त गंधया सिक्का में से बहुतों को गुहिला और चाहमानों का माना जाता है। जो गंधया सिक्के अशरकित हैं उन्हें ११वीं सदी में पहले का नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार १०वीं सदी के अंतिम चरण में लेकर १२वीं सदी के प्रथम चरण तक के बहुत से सिक्कों को बनिधम ने अजमेर और दिल्ली के तोमर राजवंश का माना है। यहाँ १३वीं सदी में ग्वालियर के नारवार शासकों द्वारा जारी किये गये तांबे के सिक्कों का भी उल्लेख किया जा सकता है। दो स्थानों में प्राप्त क्रमशः ७६१<sup>२</sup> और ६२६<sup>३</sup> ताम्र मुद्राओं को भी इन्हीं का माना गया है।

जहाँ तक मालवा के परमारों का सम्बन्ध है, उनके अभिलेखों (वास्तवों में प्राप्त अथवा अभिलेखों) में हम सिक्का का उल्लेख देखने को मिलता है। परमार राजाओं में स्वर्ण मुद्राएँ जारी करने का श्रेय केवल उदयान्तिकों को प्राप्त है, जो १०६० और १०८७ के बीच मध्य और उत्तरी भारत में कुछ हिस्सों पर राज्य करता था।<sup>४</sup>

मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मालवा और गुजरात में जो हम सिक्कों का चलन फिर से आरम्भ होते देखते हैं उसका सम्बन्ध—विशेषकर पश्चिमी भारत में—वाणिज्य-वापार की प्रगति से जोड़ा जा सकता है। अभिलेखों में मण्डपिनाया तथा दुकानों में प्राप्त नकद राजस्व के अनुदान में किये जाने का उल्लेख बार-बार मिलता है। उनसे यह भी पता होता है कि पश्चिमी भारत में तटीय श्रेणियों में देगी और विदेशी व्यापारियों से आयात नियंत्रण कर नकद लिया जाता था। कारण में विदेशी व्यापारियों को गद्याण नामक स्वर्ण मुद्राएँ देनी पड़ती थीं, और सभी व्यापारियों को घरण नामक स्वर्ण मुद्राओं में सीमा शुल्क चुकाना पड़ता था। लेखपद्धति में ऐसे दस्तावेजों को मसौद किये

१ ए० एम० आई० पी १८७१-७२ की रिपोर्ट (१ ६५) में इसकी सूचना ए० मा० एल० कालादन ने दी है।

२ सी० एम० सिंघल सिन्धियाप्राचीन आफ इंडियन क्वॉयर्स भाग १ पृष्ठ ६५।

३ वही पृष्ठ १०२।

४ वही, पृष्ठ ६५।

गये है जिनसे प्रकट होता है कि वाणिज्य व्यापार और वस्तुओं की खरीद गिरी खूब चलती थी। इस पुस्तक में हमें व्यापार और टकसाल की देख रेख करने वाले विभागों को जो व्यवस्था मिलती है उसकी पुष्टि चौलुक्य राज्य के अमिलेखीय प्रमाणों से भी होती है।

मुद्राकन और व्यापार की दृष्टि से पूर्वी भारत तथा उत्तरी और पश्चिमी भारत इन दोनों के बीच बड़ा अंतर था। पूर्वी भारत में विनिमय का मुख्य माध्यम कौड़ी थी, यद्यपि उड़ीसा के कुछ भागों में सोने के बहुत छोटे छोटे सिक्के मिलते हैं। अमिलेखा से ऐसा कुछ नहीं लगता कि इस क्षेत्र में कोई खास व्यापार होता था या ज्यादा शहर थे। स्पष्ट है कि आत्मनिर्भर सामन्तवादी अथव्यवस्था पश्चिम की अपेक्षा पूव में अधिक सशक्त मुपुष्ट थी। लेकिन विचित्र बात यह है कि अगर हम उड़ीसा को छोड़ दें तो सेवावृत्ति स्वरूप सामन्त और राज्याधिकारियों को दिये गये भूमि अनुदानों की संख्या हम पूव की अपेक्षा पश्चिम में ही अधिक देखने को मिलती है। हाँ सकता है कि वास्तव में स्थिति ऐसी नहीं रही हो किन्तु पूर्वी भारत में जहाँ प्रायः बाढ़ आती रहती थी और अथ क्षेत्रों के राजा आक्रमण करते रहते थे, ऐसे अनुदानों के अमिलेखीय प्रमाण नष्ट हो गये हों।

लेकिन हमें मध्य भारत में एक महत्वपूर्ण अमिलेख उपलब्ध हुआ है जिसमें एक बहुत बड़े परिवहन का संकेत मिलता है। पूववर्ती कानन देश के विभिन्न हिस्सों में राजस्व जिसका रूप में निर्धारित किया जाता था, किन्तु इस अमिलेख से पता चलता है कि अथ यहाँ राजस्व नकद राशि के रूप में निर्धारित किया जाता था। १३वीं सदी के प्रारम्भ (१२१३) के इस अमिलेख में पाता होता है कि कदाचित् रतनपुर के कलचुरियों के सामन्त महामाण्डनिक पम्पराज द्वारा जारी किये गये एक दस्तावेज में जयपरा गाव का राजस्व पहले से किये गए नियम के अनुसार १३० सराहगडामाच्छु और १४० बिजयराजटक निर्धारित किया गया।<sup>१</sup> इसमें यह भी बताया गया है कि एक दूसरे गाव का राजस्व १५० बिजयराजटक निर्धारित किया गया।<sup>२</sup> यद्यपि यह गता लक्ष्मीधर का नाम जारी किया गया अनुदानपत्र है फिर भी इसमें नकद राशि के रूप में राजस्व निर्धारित करने के चलन का स्पष्ट संकेत मिलता है। इसे मुस्लिम प्रभाव का परिणाम मानने का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि १२०६ में स्थापित दिल्ली सल्तनत में तो

१ का० इ० इ० ४ न० ११६ पत्तियाँ १११।

२ वही, पत्तियाँ ७८।



यह इनाम गामिन भी रही था। अपने विपरीत सिन्धी साम्राज्य में गामिन बनाने की प्रथा का अन्त निष्ठापूर्वक रूप से किया जा चुका था। उक्त प्रक्रिया की प्रथम परिष्कृत माना जाया जा चुका था। ११ वीं शताब्दी में प्राग्मण्डल बंद हो गया।

१०वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पञ्जाब तथा पश्चिमोत्तर भारत में मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ हुआ। यह एक नया कारण था कि सिन्धी साम्राज्य का अन्त हुआ। सिन्धी में उत्तरी मोहम्मदीय कारणों से भारत का अन्त हुआ। प्राग्मण्डल बंद हो गया। इसका कारण था कि ११वीं शताब्दी में प्राग्मण्डल बंद हुआ था। जय १००५-६ में महमूद ने मुजनाब को जीता था। कहा है कि यही कारण था कि पञ्जाब की सीमा बंद हो गई कि यही कारण था कि नगर को ताम्र-नदुम बन दिया जाय। यद्यपि पञ्जाब हा तो उक्त दण्डस्वरूप का प्रयोक्तृत्व (द्रव्य) दे।<sup>१</sup> कहते हैं कि १००८-९ में उत्तरी सिन्धी प्रांत में सिन्धी साम्राज्य का अन्त हुआ। सिन्धी साम्राज्य के अन्त में ७,००० मन सोने और चाँदी का डल कीमती जवाबदारी का अन्त हुआ। पञ्जाब की प्राप्ति तथा कीमती पञ्जाब से जवाबदारी एवं सिन्धीय ल गयी।<sup>२</sup> और पञ्जाब बताया जाता है कि सोमनाथ मन्दिर से बह दो प्रयोक्तृत्व मूल्य का लूट का मान ल गयी। जय राय की बन्दी बना लिया गया तब महमूद की सजा अपने साथ ५००,००० तिनार मूल्य के आभूषण डल सिन्धीय के रूप में २०,००० तिनार, २०,००० दिनार से अधिक मूल्य का सोने चाँदी का वजन २०,००० तिनार मूल्य के बपड़े तथा जिन दान-शासन की कृतियाँ को नष्ट कर दिया उनको छोड़कर ५० जानवरों पर लगी पुस्तक ल गयी।<sup>३</sup> लूट की श्रेय वस्तुओं से तो हमारे अध्ययन का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इन लूट सिन्धीय की इतनी बड़ी राशि इस बात की मांगी भरती है कि गुजरात में मुगल का व्यापक चलन था। जहाँ मुस्लिम विवरणों में उल्लिखित सिन्धीय की मन्थारों इनके वास्तविक चलन का आभास देती है वहाँ हम तथ्य से कि सोने और चाँदी के डले इतनी अधिक मात्रा में मोहम्मद थे इन धातुओं के सिन्धीय के रूप में डाले जाने की सम्भावना का सबत मिलता है। सब तो यह है कि सुल्तान इस मन्दिर से जो सोने चाँदी के डल और बहुमूल्य

१ सी० ई० वासवध द गजनवाडस पृष्ठ ७६।

२ वही पृष्ठ ७८।

३ वही।

पत्थर लूटकर ले गया उनमें से कुछ को गजनी के कुजल जौहरियां न ढालकर और काट तराश कर सुंदर आकृतियां प्रदान की ।<sup>१</sup> यह सच है कि महमूद के आक्रमणों के परिणामस्वरूप पश्चिमी भारत को अपने बहुत सारे सिक्का संचित होना पड़ा, लेकिन पजाब में गजनविया ने अपने सिक्के जारी किये, और वहां चानी तथा तांब के मिश्रण से बने हिंदू ढंग के सिक्का का चलन कायम रहा ।<sup>२</sup> तांबे और चांदी के मिश्रण से तयार किये गये इन सिक्का के जारी किये जाने से लगता है कि वहां आम लोगो में भी इनका चलन था ।

उस काल की मुद्रा प्रणाली की विशेषता यह है कि अब धीरे धीरे साने के स्थान पर मुलम्मा चनी चानी गुठ चांदी चांदी और कासे का मिश्रण और अतन् तांब के सिक्के ढाले जाते गये थे । चांदला और कलचुरिया की मुद्रा प्रणालियां इसकी साती भरती है । वैसे तो सोन के स्थान पर निम्नतर धातुओं के मुद्राकन को कभी-कभी आर्थिक अवनति की निशानी भी माना जाता है लेकिन वास्तव में यह परिवर्तन प्रतिया एक गहनतर अथ भी रखती है । उष्ण मुद्राओं का उपयोग तो बड़े बड़े सौणों में ही सम्भव था । इसका मतलब यह हुआ कि उनका प्रयोग केवल धनी मानी लोग ही कर सकत थे । लेकिन चांदी चानी तांब तथा तांब के सिक्का का प्रयोग सबसाधारण के लिए भी सम्भव था और इसलिए इन सिक्का का अस्तित्व मुद्रा के व्यापकतर चलन का संकेत देना है । डमलियां जो चीज आर्थिक अवनति की निशानी जमी निखाइ देती है वह वास्तव में एक ऐसी युक्ति थी जिमसे आम लोगो की नि-प्रति नि की विनिमय मायम की आवश्यकता की पूर्ति हाती थी । जन-साधारण के बीच तांब के सिक्का का चलन स्वभावतः अधिक हागा । उष्ण कटिबंध के जलवायु में दीवरास तक रहने के कारण धीरे धीरे उनका क्षय हागा स्वाम विक् था फिर भी मध्य और पश्चिमी भारत में ११वीं और १२वीं सतिया के ताम्र के जितने सिक्के मिने हैं वे कुछ कम नहीं हैं और ये छोट माट माभाय सौणों में भी उनके प्रयोग का पर्याप्त प्रमाण पंग करत हैं । गाहखान राजाओं में से हम गाविंदचंद्र की ताम्र मुद्राओं की जानकारी है । ११वीं सती में डाल के कलचुरि राजा गगयदव ने जिमका स्वण मुद्राओं की ढलाई का पुनरागम करने का श्रेय प्राप्त है तांब के सिक्के भी जारी किए । उनिन ज्यादातर तांबे के सिक्के १०वीं और १३वीं सतिया के रतनपुर

१ सी० ई० वासवथ, गजनवीइस प० ७६ ।

२ वही प० ७६ ।

के कलचुरि राजाघ्रा के भागे जा गत है<sup>१</sup> यद्यपि विनागपुर म प्राप्त ताग्र मुत्तमा की एक रागि का ११वीं मती के प्रारम्भ का माता जा गतता है।<sup>२</sup> रतनपुर के कलचुरि गामक प्रतापमल्ल (१२००-२६) क ता घत्र तर कत्रन ताये के सिक्के ही मिल पाये हैं।<sup>३</sup> कलचुरिया ने हनुमान की स्मृतिवाप ताये के सिक्का का चलन प्रारम्भ किया, और तन्त्रेला ने दम दम के सिक्का को पूव लोचप्रिय बना लिया।<sup>४</sup> एसा जात पडता है कि य हनुमानी सिक्के जि = कमी-कमी इम्म भी मल्ल जाता है १२वीं और १३वीं मन्विया क कलचुरि गामका के अधीन विनिमय क सयगामाय माध्यम थ।<sup>५</sup> मगर इमरा मतलब यह नहीं कि इन सामन्ता त तोत्र के और सिक्का जारी किये ही नहीं। तबि क सिक्के चौहान राजाघ्रा त भी जारी किये।<sup>६</sup> इनर राज्य म प्राचीन स्तर के व्यापार के काफी सबत मिलत हैं। जान पडता है कि चाहमान<sup>७</sup> और तीमर गामका ने विनन के सिक्के प्रचुर मात्रा म जारी किये। पत्रात्र म गजनवी गामक पुराने हिन्दू सिक्का क ही दम के तबि और चादी के सिक्का बडी सिक्के ढलवात रहे।<sup>८</sup> मविष्य म गायद बिलन और तीमर क सिक्का की और भी रागियां प्राप्त हा। लेकिन जितन सिक्के घत्र तर मिले हैं उनम यह पता चलता है कि उत्तरी भारत और पदिचमी भारत के एक बहुत बडे हिस्से म जनसाधारण क बीच भी सिक्का का चलन प्रारम्भ हो चुका था।

विनिमय के दो और भी साधना का चलन था। एक तो था लाह का सिक्का और दूसरा कौडी। जहां लोहे के सिक्के पदिचमी भारत म चलन थे, कौडिया बगाल और उडीसा म चलती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सना के अधीन किसान लगान बगरह कौडिया म चुकाते थे।

चादी, बिलन चादी-नासे और विनेपकर ताये के सिक्को और गायद कौडिया के भी उपयोग के परिणामस्वरूप जिसा और धम के रूप म लगान

१ मीराशि, का इ० इ० ४ पृष्ठ १८५ ८७।

२ ज० यू० सो० इ०, १८, ११२ २।

३ मीराशि स० प्र० पु० ५० १३७।

४ वही पृष्ठ १८८।

५ एस० के० मित्र द अली लल्ल आफ खजुराहो, पृष्ठ १८३।

६ दगश्य गामा अली चौहान डाइनस्टीज पृष्ठ ३०३।

७ वही पृष्ठ ३०५।

८ सी० ई० वॉसवय, स० प्र० पु०, पृष्ठ ७६।

महसूल अदा करने की प्रथा का ढीला पडना अवश्यम्भावी था। ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर हम निश्चयपूर्वक यह कह सकें कि जो लगान महसूल पहले जिसा के रूप में दिये जाते थे वे अब नकद दिये जाने लगे। लेकिन सना और बाद के बलचुरिया के कतिपय भूमि अनुदानपत्रों से यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि लगान नकद राशियाँ में निर्धारित किया जाता था। दिल्ली सल्तनत में सर्वत्र लगान की नकद अदायगी का नियम लागू किया जाना इसी प्रक्रिया की चरम परिणति माना जा सकता है। हमारे पास इस निष्कर्ष के लिए भी कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि राज्य जो सेवाएँ श्रम के रूप में लेता था उससे स्थान पर अब वह नकद राशि लेकर रैयता का फुसत दे देता था। लेकिन यह सोचना पड़ेगा कि बठ-बगार की जो रीति मध्य और पश्चिमी भारत में दूसरी सदी से आरम्भ हुई वह दसवीं सदी में आकर बढ़ क्या हो गई? उत्तर है ताब के सिक्का का व्यापक चलन। हम ऐसा मान सकते हैं कि ताल-बूप, सडक, किले आदि के निर्माण में किसानों से जो शारीरिक श्रम देने की अपेक्षा की जाती थी उसके बदले अब वे कुछ नकद रकम दे देने थे और राज्य उन रकमों से अपने-परे काम पूरा करता था। इस प्रकार जिसा और शारीरिक श्रम के रूप में राजस्व की अदायगी के आधार पर खड़ी परम्परागत सामन्ती अथव्यवस्था की जड़ें मुद्रा के चलन के कारण खाली पड़ गयीं।

हमारे इस अध्ययन से जो चित्र सामने आता है वह दो विषयों वास्तविकताओं का रंग में रंगा हुआ है। एक और हम देखते हैं कि सरम्बाह पण्डित पुरोहिता और गृहस्था का अधिकाधिक भूमि अनुदान दिये जा रहे हैं उपसामन्तीकरण की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है व्यापार तथा शिल्पाद्योग से प्राप्त राजस्व को पण्डित पुरोहिता की जिरात बनाया जा रहा है तरह-तरह के करों के बोझ से किसान तबाह हो रहे हैं और सामुदायिक अधिकारों को राज्य तथा व्यक्तिगत द्वारा स्वायत्त किया जा रहा है। दूसरी ओर हम यह पाते हैं कि अनुदत्त भूमि की सीमाएँ ठीक ठीक निर्धारित कर दी जाती हैं उनकी उपज का अनुमान नकद और जिसा के रूप में पेग किया जाता है विष्टि का ताप हो चुका है आंतरिक तथा विदेशी व्यापार फिर होना लगा है। एक बहुत बड़े क्षेत्र में विविध साधनों के रूप में मुद्रा का चलन पुनः आरम्भ हो गया है। यद्यपि दूसरी अवस्था मुख्यतः पश्चिमी भारत में पाई जाती है ऐसा कहना अनुचित न होगा कि भारत में पुराने सामन्तवादी अथव्यवस्था न तुर्कों की भारत विजय से पहले की दो सदियों में अपना चरमोत्कर्ष भी देना और प्रमिष ह्रास भी।

## निष्कर्ष

राजनीतिक सामंत्ववाद के उद्भव और विकास का इतिहास ईस्वी सन् की पहली शताब्दी से ब्राह्मणों का दिए जानेवाले भूमि अनुदानों से जुड़ा हुआ है। गुप्त काल में ऐसे अनुदानों की संख्या काफी हो जाती है और तब से बराबर बढ़ती ही चली जाती है। हर्ष के शासन काल में मात्र दामोदर के पास २०० गाँव थे। मन्दिरा तथा पण्डित पुरोहिता का पाला और प्रतिहारा से बहुत से गाँव मिल लकिये राष्ट्रकूटों से प्राप्त गाँवों की संख्या की तुलना में ये कम ही हैं। राष्ट्रकूट राज्य में एक अनुदानपत्र में १५०० और एक दूसरे में ४०० गाँव देने का उल्लेख है। स्पष्ट है कि ब्राह्मणों और मन्दिरों को भी राजस्व इहलौकिक सेवाओं के प्रतिदान स्वरूप नहीं बल्कि दाता या परलोक मुगारत के लिए दिया जाता था। जो क्षेत्र उत्तरीयान किये जाते थे उनमें उन्हें राजस्व विषयक व्यापक अधिकार दिए जाते थे और साथ ही शांति सुव्यवस्था कायम रखने और अपराधियों से जुर्माना वसूल करने-जैसे प्रशासनिक अधिकार भी। ह्वेत्सांग का कहना है कि राज्य के बड़े बड़े अधिकारियों का वृत्तिस्वरूप भूमि अनुदान दिए जाते थे। किंतु समकालीन अभिलेखों से उमर इम कथन की पुष्टि नहीं होती। लेकिन यदि ब्राह्मणों का राजस्व अनुदान के रूप में वृत्ति मिलती थी तो औरों के लिए किसी अन्य पद्धति का प्रयोग क्यों किया जाता होगा? इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं है कि अधिकारियों तथा राजसेवकों को सामान्यतः भूदान वचन दिया जाता था। यदि इहलौकिक सेवाओं का प्रतिदान नरुद राशिओं में दिया जाता रहा हो तो फिर धार्मिक सेवाओं का प्रतिदान अन्य प्रकार से क्या दिया जाता था? सब तो यह है कि धर्म उत्कालीन जीवन के सभी

क्षेत्रों को प्रभावित करता था और इसलिए यदि पण्डित पुण्डरीक को धर्मकाय के लिए वृत्ति दान की पद्धति अथवा मवाग्ना का पुरस्ठन करने के लिए अपनायी गयी हा तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। वृत्ति के रूप में भूमि-अनुदान दान-मानहारिक ही नहीं था इस गुण और पुण्य काय भी माना जाता था। अग्नि-वत्ता से वृत्ति स्वरूप भूमि अनुदान तब के ज्ञान की पुष्टि मुख्यतः १००० ईस्वी से हानी है। गामक सरदार अपने पुटुम्बिया तथा साम ता और राज्याधिकारियों का भी भूमि अनुदान देते थे। १००० ईस्वी से पहले के ज्ञान में बगान विहार और उत्तर प्रदेश का अपना उन्नीस तथा दक्षिण भारत में ऐसे अनुदानों के अधिन उन्नीहरण मिलते हैं। किन्तु ११वीं और १२वीं सत्रियों में उत्तर भारत में—विशेष रूप से गाहडवालो चंदेला बलचुम्बिया चौतुक्या तथा परमारों के राज्यों में—हम गहम्य भासाप्रा की एक खासी बड़ी सन्ध्या देखने का मिलती है।

सामन्ता के लिए कई सन्ध्या का प्रयोग होता था। वे इस प्रकार हैं—भूपाल, मोक्षा, भागी भौगिक भोगिजन भोगपतिर भागिरूप, महामागी बह्मनागी, बह्मनागिर राजा राज, राजराजनक राजयक राणक राजपुत्र, राजबन्धन ठकुर सामन्त महासामन्त महासामन्ताधिपति, महासामन्त राणक सामन्तक राजा माण्डलिक और महामण्डलेश्वर। अमिलखा में महासामन्ता राणका, राजपुत्रा माण्डलिको तथा कुछ अन्य सामन्तों का भूमि अनुदान दिये जाने का उल्लेख मिलता है। तबसे ज्ञान पटता है कि दूसरे सामन्ता का भी एम अनुदान दिये जाते थे। इनमें से बड़े-बड़े सामन्ता का पञ्चमहाबाद्या के प्रयोग का अधिकार भी दिया जाता था।

प्रारम्भिक भारतीय सामन्तवाद की एक विशेषता यह थी कि राजस्व की दृष्टि से राज्य को अनेक इकाइयों में विभक्त कर लिया जाता था। ये इकाइया दामिक द्वाणामिक अथवा पण्डणामिक प्रणाली पर गठित हानी थी। दामिक प्रणाली पर गठित इनाई में आनवान गाँवा की सन्ध्या १० अथवा एसी कई भी सन्ध्या हानी थी जो १० से विभाज्य हो। यही बात द्वाणामिक तथा पण्डणामिक प्रणाली पर गठित इकाइया पर भी लागू हानी थी। मनु स्मृति में जा पहली या दूसरी सन्ध्या में किसी समय लिखी गई कहा गया है कि दस गाँवा की इकाइया अथवा दामिक प्रणाली पर गठित बड़ी इकाइया में राजस्व एकत्र करनेवाले अधिकारियों को वृत्ति स्वरूप भूमि अनुदान देना चाहिए। एसी इकाइयाँ राष्ट्रकूट और किसी हद तक पाला के राज्यों में भी कायम रही। ललित गुजर प्रतीहारों तथा उनके सामन्तों और उत्तराधिकारियों—चाहमाना

परमारा और चीनुरवा— के राज्या म द्वांगमिक या पष्ठदामिक इकाइया का चलन था । ऐसी कुछ इकाइयां दास्य परिवार के लाया को निजी जागीरा क तीर पर दी गयी, लेकिन गैप शायद राजस्व एन्त्र करन क लिए गठित की गयी थी और य एस रायाधिकारिया के हाया म रहती थी जिहें वृत्तिस्वरूप भूमि अनुदान दिये जाते थे । स्पष्ट है कि राजपूता न अपने विजित क्षत्रा का इस तरह की इकाइया म बाँट दिया था । यह तो अनुमान का ही विषय है कि ऐसी इकाइयो के गठन क पीछे मध्य एशिया म प्रचलित व्यवस्था की कोई प्रेरणा थी अथवा नहीं और जिस प्रकार जमतों के आक्रमण के परिणामस्वरूप यूराप म साम तवाद को उत्तेजन मिला था उसी प्रकार हूणा तथा गुजरा के भारत आगमन स यहाँ भी साम ती व्यवस्था के विकास को बढ़ावा मिला था नहीं ।

एक चीज से भारतीय साम तवाद के आर्थिक पहलू का बड़ा गहरा सम्बन्ध था । वह यह थी कि गुप्त काल से गूद्र लोग जिहें ऊपर के तीन वर्गों का सबक और दास माना जाता था, किसान बनते जा रहे थे और पुराने किसान अध-दासत्व की अवस्था मे पहुच गये थे । पहली प्रक्रिया का सबेत हम ह्वेत्साग क विवरण म मिलता है । उसने शूद्रों को किसान कहा है । उसके इस कथन की पुष्टि चार सदी बाद अलबरूनी के विवरण से भी होती है । गुप्तोत्तर काल की कई कृतिया म गूद्रा को किसान बतलाया गया है ।

जहाँ तक प्रारम्भिक मध्य काल म भारतीय किसानों की अवस्था का सम्बन्ध है उसक पीछे बहुत से कारण काम कर रहे थे । इनमे से सबसे महत्त्व पूण यह था कि ग्रामवासियों के सिर पर करों का बोझ बहुत बढ गया था । गाहड़वाल अनुगानपत्रा म गावों पर आरोपित ग्यारह करों का उल्लेख हुआ है । यदि राज्य सचमुच ये भारे कर वसूल करता था तो किसानों के पास किसी प्रकार अपना जीवन धापन करने को भी कुछ बच रहता होगा इसम सन्देह ही है । ग्रहीताओं का ये कर वसूल करने का अधिकार तो दे ही दिया जाता था कभी कभी उहें इनके अतिरिक्त निश्चित अनिश्चित, उचित अनुचित कर लगाने और वसूल करने का भी अधिकार मिल जाता था । बहुत से अनुदानपत्रा म— उदाहरणाय पाल अनुदानपत्रा म—कग की पूरी सूची नहीं दी जाती थी और ग्रहीताओं को एस अनेक अर्थ कर भी वसूल करने का अधिकार दे िया जाता था जा आदि शब्द सवाय-समेत अथवा समस्त प्रत्याय गवद समुच्चय क अन्तगन आत थ । इस सब का मतलब यह है कि ये नये कर भी लगा सकते थे । किसान लोग सरकार का राजस्व के रूप म जा कुछ देत थे, अनुदान दिये जाने के

बाद उह वह सब ग्रहीताओं को लगान के तौर पर दना पड़ता था, और इन अनुदानभोगियों से अधिकार को दाताओं को कोई कर नहीं देना पड़ता था।

किसानों की अवस्था का दूसरा कारण बंगाल की प्रथा थी। मौर्य काल में बंगालदास और कमकरो से कराया जाता था। लेकिन ईस्वी सन् की दूसरी सदी से इस तरह का श्रम गायद सभी प्रजाजनों से लिया जान लगा। मध्य और पश्चिमी भारत में प्रारम्भ से लेकर १०वीं सदी तक दिये गये अनुदानों से विष्टि के चलन का पर्याप्त सक्त मिलता है। बंगाल और बिहार में सवपीडा को भेलना किसानों की सामान्य नियति थी। जब राज्य कोई क्षेत्र अनुदान में देता था तो अपना यह अधिकार भी छोड़ देता था जो स्वभावतः ग्रहीता के हाथों चला जाता था। सामक सरदार तो ग्रामवासियों से यथा-कथा ही बंगाल लेते थे, किन्तु ग्रहीताओं के साथ ऐसी बात नहीं थी। गाँव की जमीन तथा अन्य प्राकृतिक साधनों से अधिक से अधिक लाभ उठाना उनका उद्देश्य होता था, और इसलिए वे लागों से बंगाल भी बसकर लेते थे।

किसानों की अथागत इसलिए भी हुई कि अनुदानभोगी अनुदत्त भूमि को फिर से किसी को अनुदान में अथवा खेती करने के लिए देता था। ग्रहीताओं को यह अधिकार दिया जाता था कि वह अनुदत्त भूमि का स्वयं उपयोग कर सकता है अथवा तदर्थ किसी और को दे सकता है उसमें खुद खेती कर सकता है अथवा किसी अन्य से करवा सकता है। मध्यकाल के प्रारम्भ के कतिपय धर्मशास्त्रों से पता होता है कि राजा के नीचे और असली जेतदार के ऊपर जमीन के एक ही टुकड़े पर किसी-न किसी प्रकार का एक रखने वाले लोगों की चार चार श्रेणियाँ हुमा करती थी। इस बात की पुष्टि अभिलेखा से भी होती है। खुद खेती करने अथवा दूसरों से करवाने के अधिकार में किसानों को यत्न करने का हक भी शामिल हो जाता है। मालवा, गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र में ५वीं सदी से लेकर १२वीं सदी तक यह प्रथा खूब प्रचलित थी। परिणामतः कास्तशरी के स्थायी अधिकार कमजोर हो गया। वे अथ जमादार की इच्छा अनुसार जमीन जानते थे या उसकी मर्जी पर जमीन से हटा दिए जा सकते थे, जिससे वे भक्ति-र मजदूर के समान बनते जा रहे थे। यह स्पष्ट नहीं है कि उत्तर भारत में अन्य क्षेत्रों में भी भूस्वामियों को ऐसे अधिकार प्राप्त थे अथवा नहीं। लेकिन लगता है कि जो क्षेत्र मली भक्ति आवाद हो गये थे और जिनमें आवादी काफी होने के कारण कास्तशरी की कोई कमी नहीं थी उनमें यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। जनजातियों में आवाद पिछड़े श्रेणियों में किसान लाग खेती का काम छोड़कर किसी दूसरे गाँव में जाकर नहीं बस सकते थे।





थे। यह बात बहुत पुराने जमाने में चली आ रही थी क्योंकि हमका उल्लेख हमें  
 ज्ञातका म भी मिलता है। सुभाषितरत्न-कोष में छठी गतांगी के ज्यातिपी  
 बराहमिहिर का एक अनुच्छेद उद्धृत किया गया है। उसमें एक एस उगाड गाँव  
 का दगा था यणन किया गया है जिसमें बेशक वही गिरी दीवारें ही रङ्ग  
 गयी हैं क्योंकि वहाँ के भागपति के अत्याचारा से पीड़ित होकर किसानों ने  
 उस गाँव का त्याग कर दिया है। भागपति के अत्याचारा का उल्लेख  
 बाण वृत ह्यचरित में भी हुआ है। इसी प्रकार यूनानरदीय पुराण में बताया  
 गया है कि अकाल तथा भारी बरा से परेगान हारर लोग एक स्थान को  
 छोड़कर किसी दूसरे अधिक समृद्ध स्थान में चले जाते हैं।<sup>१</sup> लेकिन किसान उन  
 गाँवों का छोड़कर नहीं जा सकते थे जो आगामी व साय साय दान किये  
 जाते थे, क्योंकि अनुष्ठानभागिया को किसानों को जमीन से बाँध रखने  
 का कानूनी अधिकार हाता था। भाषण के खिलाफ किसानों की दूसरी  
 प्रतिश्रिया यह हो सकती थी कि वे विद्रोह कर दें। इसका एकमात्र उदाहरण पूर्वी  
 बंगाल में बवनों का विद्रोह है जिसका वणन स "पाकरन"दी न रामचरित  
 में किया है। आज तक इस घटना का या तो अत्याचारी भासक के खिलाफ अपने  
 अधिकारों का जतलाने वाला जनविद्रोह माना गया है या जनता की इच्छा में  
 मिहासन पर बठाय गय विधिसम्मत भासका के खिलाफ उपद्रव बताया गया  
 है। लेकिन अगर हम इस बात की ओर ध्यान दें कि बवनों को सेवा वृत्तिया  
 के रूप में जो जमीन मिली हुई थी वह उनसे छीन ली गयी थी<sup>२</sup> और उन पर  
 करा का बहुत भारी बोझ डाल दिया गया था<sup>३</sup> तो इस घटना का महत्त्व हम  
 ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस विद्रोह के वणन में प्रतलाया गया है  
 कि निवसन और नग्न मिपाही भसा पर चढ़कर तीर घनुप से लड़े<sup>४</sup> जिसमें  
 प्रकट होता है कि ये विद्रोही योद्धा साधारण किसान थे। रामपान के खिलाफ  
 विपन्न विद्रोह का मतलब करनेवाले भीम की सेना में रथ बिलकुल नहीं थे।<sup>५</sup>  
 फिर भी यह विद्रोह इतना जबरदस्त था और विद्रोही इतने दुःख थे कि इसे

१ स० डी० डी० कोस्म्वी व वी० वी० गाखले, श्लोक ११७५ ।

२ स० पी० एच० शास्त्री, ३८ ।

३ ए० इ०, २९ प ।

४ रामचरित, २, ४० ।

५ वही ३६ ४० ।

६ वही ४० ।

दवाय के लिए रामगान की अपनी गाथा और शक्ति-साधना पदावली गीत  
हुए और उक्त अपनी सामन्तों के साधना का सहारा लिया। गाथा यह पाना के  
गिलाफ पर लिखा मिट्टी का, और पान गामक बना सामन्तों की महापदा  
स मयतों के गिलाफ लकड़। गरिमा, दम तरु का और उपाहरण हा नदी  
मिनता है और दमलित दमक आधार पर हम बार्द सामन्तों निष्पत्त गीत  
निवाल सपत्त। सम्भव गीत सगता है कि गठित परिस्थितिया से तम आकर  
विज्ञान लाभ सामन्तों पर अपने पहन गौर पर छाटकर बड़ी अपना जा बग  
हान। लखि पूव मध्य काल की सामन्तों के अर्थव्यवस्था के यह उपाय भी  
बहुत कारगर गीत हा सगता हागा, यद्यपि विज्ञान तो जमान से बंधे होत थे।  
अपने भी ता बसी ही आपिस परिस्थितियाँ और राजनीति सगटा हात  
थ। इतिहास विज्ञान के बही और जा बसन का मालम उनका छुटारा  
नहा था।

सामन्तों के व्यवस्था दान के विभिन्न हिस्सा के भीजूद आत्मनिर्भर आपिस  
इनादवा पर आधारित थी। मुद्रा का अभाव गाथ तीन के स्थानीय मानना  
का चलन और राजाया तथा सामन्त सरदारों द्वारा उद्योग व्यापार के हानवाली  
नकदी तथा जिसे आपिस का मंदिरा के नाम हस्तांतरण—य सामान बाने  
एक एकाशा के अस्तित्व की सांगी भरती है। पाना न लगभग चार सौ वर्षों  
तक राज्य किया कि तु उनका गायद ही कोई सिक्का आज प्राप्य हो। हम  
निश्चयपूर्वक गुजर प्रतीकारा के सिक्का का भी हवाला नहीं दे सक्त हैं और  
राष्ट्रकूटों के सिक्का का नितात अभाव है। उनीता और दक्षिण भारत में भी  
सातवीं से दसवीं सदी तक सिक्का का अभाव रहा है। चाहमागो और सना के  
अभिलेखा में सिक्का का उल्लेख तो हुआ है लेकिन इनके सिक्का अभी तक  
मिन नहीं पाये हैं। प्रारम्भिक मध्यकाल में मुद्रा का चलन था और  
तत्कालीन समाज पर उसका क्या प्रसर पडा इसका अध्ययन अभी तक नहीं  
हुया है। हम जितना कुछ जानूँ है उमके आधार पर कहा जा सक्त है कि  
ग्यारहवीं सदी से पश्चिमा और मध्य भारत में मुद्रा का चलन फिर से काफी  
बढ़ पमाने पर प्रारम्भ हुआ गया। इसका सम्बन्ध इस काल में उद्योग व्यापार  
के पुनरुद्धार और बंधनगर प्रया की समाप्ति से था। लेकिन अगर हम इस  
क्षेत्र और काल की बात अलग रख ता सगता यही है कि प्रत्येक स्थान की  
आवश्यकताओं की पूर्ति वही पदा किये माल से की जाती थी और इस  
प्रयाजन से विज्ञान और कारीगरों का गाथा से बाँकर रखा जाता था। कमी-  
बन्दी अनुदानपत्रा में यह व्यवस्था भी हाती थी कि बरत विज्ञान और कारीगरों

को किसी ग्राम स्थान से हटाकर अनुदत्त गाँव में दाखिल नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोजन यही हो सकता था कि अनुदत्त गाँव के आत्मनिर्भर आर्थिक जीवन में अनुदान के परिणामस्वरूप कोई व्यवधान न उपस्थित हो पाय। मठ और मन्दिर भी आर्थिक इकाइयों का काम करते थे, लेकिन ये इकाइयाँ काफी विस्तृत होती थीं। यमी-बमी तो ऐसी इकाइयाँ में से भी अधिक गाँव हुआ करते थे। स्पष्टतः ऐसी इकाइयों में कुछ गाँव अन्न जुटाते थे, कुछ कपड़े और कुछ इमारतों की मरम्मत के लिए श्रमिक आदि। या ऐसा भी रहा हा कि प्रत्येक गाँव थोड़ी थोड़ी मात्रा में इनमें से हर चीज मुहैया करता हा।

प्रारम्भिक भारतीय सामन्तवाद की ऐतिहासिक भूमिका कई दृष्टियों से बड़ी महत्त्वपूर्ण रही। पहली बात तो यह है कि मध्य भारत उड़ीसा और पूर्वी बंगाल में भूमि अनुदान परती जमीन का आग्राहक किये जान में बहुत सहायक सिद्ध हुए। उद्यमी और साहसी ब्राह्मणों ने पिछड़े और जन जातियों से आग्राहक क्षेत्रों में बहुत उपयोगी काम किये। वे ऐसे इलाकों में कृषि के नये तरीके लाये। पुरोहिता द्वारा प्रतिपादित कृषिप्रणाली कालीन विश्वास और विधि विधान जनजातियों की आर्थिक समृद्धि में सहायक सिद्ध हुए। उदाहरण के लिए, गाँव हत्या को नर हत्या के ही समान जघन्य कृत्य बताया गया जिससे गोधन के परिष्करण में सहायता मिली। खेती के लिए गोधन कितना उपयोगी है, यह तो स्पष्ट ही है। ब्राह्मणों और पुरोहिता ने आदिवासियों को हल तथा खाद का उपयोग करना तो सिखाया ही साथ ही उड़-नक्षत्र और ऋतुग्राह विवेकपूर्ण वर्षा का आगमन की जानकारी देकर भी कृषि की उत्थिति में योग दिया। इस विषय की बहुत-सी जानकारी कृषि पराशर में<sup>१</sup> जो इसी काल की कृषि जान पड़ती है, संकलित है। जो इलाके बस-बसाये थे, उनमें धार्मिक भोक्ताग्राहों को ऐसी जमीन दान की जाती थी जिसमें पहले से ही खेती-बाड़ी होती थी। ऐसे क्षेत्रों में उनकी उपयोगिता इस बात में निहित थी कि वे लागू में प्रतिष्ठित सामाजिक व्यवस्था का प्रति सम्मान का भाव पदा करते थे। दूसरे भूमि अनुदानों के परिणामस्वरूप अनुदत्त क्षेत्रों में गार्तिसी सुखवस्था कायम रखने में सहायता मिलती थी, क्योंकि इन क्षेत्रों में कानून की सत्ता और शक्ति बनाय रखने का दायित्व ग्रहीताग्राहों का दिया जाता था। दाताग्राहों की इस कृपा का प्रतिदान भी ब्राह्मणों ने किसी-न किसी रूप में श्रवण दिया। उन्होंने पूरे मध्य भारत के राजाग्राहों के लिए जाली बना बक्ष

१ स० य अनु० जी० पी० मजुमदार और एस० सी० बनर्जी प्रारम्भिक पृष्ठ ८।

सवार क्रिय, और उन्हें सूर्यवर्गी अथवा चन्द्रवर्गी साबित करके लोगो में भ्रम फैलाया कि वे अपने दबी अधिकार के बल पर शासन कर रहे हैं। दूसरी ओर गृहस्थ सामन्तगण अपनी अपनी जागीरा का शासन चलाकर और युद्ध काल में सत्ता जुटाने के अपने प्रसन्न की सहायता किया करते थे। तीसरी बात यह है कि भूमि अनुदानों के परिणामस्वरूप जनजातियाँ के बीच ब्राह्मण सभ्यता का प्रसार हुआ। और अपने आदिम रहन सहन को छोड़कर वे सभ्य मुसलमान बन। ब्राह्मणों ने उन्हें लिपि, कला तथा साहित्य का ज्ञान कराया और उच्चतर नीतिक ज्ञान में परिचित कराया। इस अर्थ में सामन्तवाद देव के लकीकरण में सहायक सिद्ध हुआ। ये ब्राह्मण मूलतः मध्ययुग और तीर्थभूमि के निवासी थे। भूमि अनुदानों का उपभोग करने के लिए उन्हें वहाँ से यगाव, उगीसा और मध्य भारत बुलाया गया। इस प्रकार ये सारे क्षत्र एक सभ्यता की परिधि में आये और पतन इनकी पारम्परिक एकता बढनी लगी। यण सत्तर ओर अर्थ जानिया की सत्ता बढ गयी और ब्रह्मवैवर्त पुराण में तो इनकी सत्ता १०० त्रय पंच गयी है। इसका एक मुख्य कारण यह था कि ब्राह्मणों का जिय मय भूमि अनुदानों के परिणामस्वरूप बढत मा जनजातियों ब्राह्मणों के प्रथम सम्पर्क में आयीं और ब्राह्मण सभ्यता या न समान में उठ गिया। न गिया जाति के रूप में स्थापित किया गया। इस प्रकार हम मान सकते हैं कि भूमि अनुदानों के क्षत्रों और लोगो का यण व्यवस्था के अन्तर्गत ग्राहक सम्पर्क सिद्ध हुए और अन्त में ग्राहक सम्पर्क सिद्ध हुए तब समान सामाजिक

वृत्तिस्वरूप जमीन दी जाती थी, लेकिन यह जमीन, उनके जिम्मे प्रशासनाथ जितना क्षेत्र होता था उसका छोटा सा हिस्सा भर हुआ करती थी। यह न तो यूरोपीय ढंग की जागीर थी और न ताल्लुका (मनर) ही थी। इस कौटि म शायद ब्राह्मणों का दिये गावा को ही रखा जा सकता है। इसके अलावा भारत में सामन्तों को मुख्यतः अपने प्रभु को सैनिक सेवा ही करनी पड़ती थी। यहाँ वे यूरोप की तरह प्रशासनिक सेवा नहीं किया करते थे। लेकिन यूरोपीय सामन्तवाद की प्रमुख विशेषताएँ यहाँ भी मौजूद थीं। यह दश भी आर्थिक दृष्टि से छोटी छोटी आत्मनिर्भर इकाइयाँ में बँटा हुआ था, और इन इकाइयों के बनने और कायम रहने का कारण व्यापारिक आगमन प्रदाय का अभाव था। यहाँ भी एक जबरदस्त भूमिधर मध्यवर्ती वर्ग का उदय हुआ जिससे किसान निरंतर अधिकाधिक पराधीन हात चल गये।

यह सवाल उठाया गया है कि सामन्तवादी समाज में एक ही बार प्रकट हुआ या बढ़ने हुए क्लेवरों में कई बार सामने आया।<sup>१</sup> भारत में मध्य में इसका उत्तर इस बात पर निर्भर है कि सामन्तवादी समाज का तात्पर्य क्या है। यदि हम राजनीतिक मता के विषय में और प्रशासन के विस्तार के लिए ही सामन्तवाद मान लें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना में पूर्व सामन्तवाद कई बार आया। लेकिन यदि हम सामन्तवाद का एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखें जिसमें किसानों की जमीन और दह पर अपने उच्चतर अधिकारों के द्वारा श्रीमंत वर्गों का सारा अतिरिक्त हिस्सा हूँप लेता था और किसानों के पास उतना ही छोटा सा या जितना खा पट्टनकर के उम्र वर्ग के लाभ के लिए आगे भी मेहनत मशकत करते रहें तो कहा जा सकता है कि यह चीज भारत में गुप्त काल में पूर्व कभी नहीं आई। ऋग्वेदिक काल में कबील के सरदार जिन्हें पुरोहिता का समर्थन प्राप्त था मुख्यतः युद्ध में प्राप्त लूट के माल पर जीवन-यापन कर लेते थे। उत्तर वैदिक काल और वदोत्तर काल में सरदार और पुरोहित किसानों से प्राप्त उपज के एक हिस्से और गूदा द्राग की जानेवानी तरह तरह की सवाया के बल पर फूलत करते रहे। भीय और भीषोत्तर काल में ईश्वरी सन् के प्रारम्भ तक वे मुख्यतः नकद राजस्व पर निर्भर रह जा प्रजा से वसूल किया जाता था। राज्य ने बहुत बड़ी तादाद में मिकक जारी किया थे, इसलिए नकद अदा-

१ एम० सा० सरकार क्वान्टिली रिप्यू ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज, ३ (१९६२ ६३) १२६।

यगी और वसूली अब आसान हो गयी थी। वं दासा और किराये के मजदूरों की सेवाओं का भी उपयोग करते थे। इन किराये के मजदूरों (कमकरों) की स्थिति भी प्रायः वैसी ही थी जसी बगार करने वाले मजदूरों की होती थी, और वे उत्पादन के काम में लगाए जाते थे।<sup>१</sup> लेकिन गुप्त काल से शासक वर्ग के सम्पन्न प्रधानतः जमीन से प्राप्त होनेवाले राजस्व पर निर्भर रहने लगे, जो उन्हीं के लिए निर्धारित किया जाता था और फिर वे की सही से वे सीधे जमीन का ही उपयोग करने लगे। स्वभावतः गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद की पाँच सदियों में किसान और कारीगर जमीन से इस तरह बाध दिये गये जसा पहले कभी नहीं हुआ था, क्योंकि अब जमीन तो सीधे पुरोहिता, मंदिरों सरदारों, सामंतों और राज्याधिकारियों के नियंत्रण में थी और सबसत्ता सम्पन्न स्वामी वर्ग ने वसी ही व्यवस्था कायम की जो उसकी स्वायत्त मिद्धि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी। भूमिधर मध्यवर्ती लोगों की राजनीतिक तथा धार्मिक शक्ति जितनी सुदृढ़ इस काल में हुई उतनी पतन किसी भी काल में नहीं हुई थी। मुस्लिम सल्तनत की स्थापना से पूर्व के मध्य काल को हम पुरातन सामन्तवाद का चरमोत्कर्ष मान सकते हैं, क्योंकि मुसलमानों ने यहाँ फिर से नवम् अत्याचारी का चलन बड़े पैमाने पर शुरू कर दिया<sup>२</sup> जिससे किसानों पर भूमिधर मध्यवर्ती लोगों का प्रत्यक्ष नियंत्रण बहुत ढीला पड़ गया। पूर्व मध्यकाल की सामन्ती व्यवस्था में किसानों के पास गुजर बसर के बाद जो कुछ भी बच जाता था उस श्रेयस्त्व-वर्ग उनकी भूमि पर अपने उच्चतर अधिकारों के बल पर उनसे ले लेता था और वह वसूली मुख्यतः जिंसा के रूप में की जाती थी। इसका अलावा उनके गरीबों पर भी इस ही धार्मिक स्वयंसेवा के कारण वह उनसे बगार लिया करता था। यह सब हमें न तो ईश्वरी सन् की प्रारम्भिक सन्धिया से पूर्व और न तुर्कों की मारने विजय के बाद किसी बड़े पैमाने पर अपने का मिलता है। इस काल का सारा राजनीतिक टाँचा भूमि धनधान्य के आधार पर खड़ा किया गया था और धार्मिक तथा धर्मोत्तर दानों तरह के भास्त्राभा का परम ध्येय वह बन गया था कि चाहे जितना ही धन प्रविष्टिद्वारा तथा किसान विद्रोहों का सामना करने हुए छोटे छोटे सामन्तों का धर्मोत्तर बनाए

१ इनमें से कुछ-एक बातों का विचार विरचन सगर न गुप्तकाल में लिखित ग्रन्थों में किया है और इन पर विचार करने से तथा चर्चा करने से न० ८ में प्रकाशित ग्रन्थ उन एलिफंटा स्तूपों के शिलालेखों से लिया है।

२ मूरतन एप्रिलियन लिखित ग्रन्थ मुस्लिम इतिहास, पृष्ठ २०६/१।

रखें, ताकि उनके हितों की रक्षा हो।

लेकिन भारतीय सामन्तवाद भिन्न भिन्न अवस्थाओं से गुजरा। गुप्तकाल तथा बाद की दो सदियों में मन्दिरा और ब्राह्मणों का भूमि अनुदान दिया जाना प्रारम्भ हुआ, और पाला, प्रतीहारा तथा राष्ट्रकूटों के राज्या में ऐसे अनुदानों की संख्या धीरे धीरे बढ़ती गयी और साथ ही उनके स्वरूप में भी बुनियादी परिवर्तन हुए। प्रारम्भिक काल में अनुदानमोगियों को केवल उपभोगाधिकार ही दिये जाते थे, किन्तु ८वीं सदी से उन्हें स्वामित्वाधिकार भी दिये जाने लगे। ११वीं और १२वीं सदियों में अनुदानों का यह सिलसिला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया, और उत्तरी भारत अनेक छोटी छोटी राजनीतिक इकाइयों में बँट गया। यह इकाइया मुख्यतः धार्मिक तथा गृहस्थ अनुदानमोगियों के हाथों में थी। जितनी सत्ता के साथ यूरोपीय सामन्त अपने अपने तालतुका (मनर) का उपभोग करते थे उससे कुछ अधिक सत्ता के साथ ये अनुदानमोगी अनुदत्त शाखा का उपभोग करते थे। किन्तु पश्चिमी और मध्य भारत में वाणिज्य व्यापार के पुनरुद्धार, मुद्रा के बढ़ते हुए चलन और विप्लव की प्रथा के विलय के परिणामस्वरूप वहाँ पुरातन सामन्तवाद अपने चरम वक्र पर पहुँचकर हासा-मुख हो चला।



## परिशिष्ट १

# मध्यकालीन उड़ीसा में भूमि-व्यवस्था

(लगभग ७५०-१२०० ईस्वी)

पूर्व मध्यकाल में उड़ीसा में पन्द्रह या इससे भी अधिक राजवंशों का उत्थान पतन हुआ। इनमें से कई तो एक ही काल में शासन करते थे। याता यात में अधिकसित साधन और पवत पहाड़िया से मरा पडा क्षत्र—उड़ीसा छोटे छोटे राज्या के उदय के लिए सचमुच बडा उपयुक्त प्रयोग था। और इन राज्या के अस्तित्व को स्थायित्व प्रदान करत थे वे आदिवासी कबील जिन्हें स्वतंत्रता प्राणा से भी अधिक प्यारी थी और जो इस प्रदेश के मुख्य निवासी थे। जान पडता है स्थानीय सरलारा न यहा मञ्ज और तुग जैसे अनेक राज वंशों की स्थापना की। होता यह था कि अपनी श्री समृद्धि की वृद्धि के साथ साथ ब्राह्मण सस्त्रुति के संपर्क में आने के कारण इहे क्षत्रियत्व का सम्मानित दर्जा प्राप्त हो जाता था और ये नये राजवंशों के सस्थापक बन जात थे इस प्रथा का अन्वेष उड़ीसा के पडोसी क्षेत्र छोटानागपुर में आज भी देखा जा सकता है। पहाड़ी इलाकों के ये शासक वसंतो समुद्र तट के क्षेत्रों के शासकों की अधीनता स्वीकार करत थे लेकिन वास्तव में दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत क्षीण थे और सारा प्रदेश छोटे छोटे अनेक गासकों के बीच बँटा हुआ था। ये गासक सामन्त राज्याधिकारिया मंदिरों और सबसे बढकर ब्राह्मणों का भूमि अनुदान दिया करत थे। फलत उड़ीसा और भी छोटे छोटे टुकडा में बट गया। आप किसी भी काल को ले लीजिए, ताम्रपत्रों पर अकिन् जितनी भूमि अनुदान आपको उड़ीसा में मिलने उतने बंगाल और बिहार में नहीं मिलने। इन अनुदानपत्रों से प्रकट होता है कि यहा धार्मिक तथा गृहस्थ अनुदानभागियों का

बहुत बड़ा वग सामान्य किसानों के ऊपर थोप दिया गया।

गहस्थ अनुदानभोगियों में सामन्त भी थे और राज्याधिकारी भी। सामन्तों के दिये गये भूमि अनुदानों के प्रत्यक्ष प्रमाण बहुत कम मिलते हैं, लेकिन अनुदानपत्रों में उल्लिखित कोई दजन भर शब्द भूमिधर सामन्तों के पर्याय हैं। उदाहरण के लिए भूपाल, जिसका शाब्दिक अर्थ भूमि का रक्षक है बहुत बड़े बड़े भूमिधर सामन्त रहे होंगे। दसवीं सदी के अंतिम वर्षों में विज्जिग के भञ्जा द्वारा जारी किये गये अनुदानपत्रों में अनुदानों की सूचना केवल इन भूपालों को ही दी गयी है जो बात उनका महत्त्व दर्शाती है। प्रत्येक आदिवासी राज्य में शायद कई क्षेत्रीय इकायाँ हुआ करती थीं, और इनमें से हर एक इकाई किसी क्रायली सरदार (जिस संस्कृत का भूपाल विष्णु प्राप्त था) के अधीन हुआ करती थी और वही सरदार उस क्षेत्र के प्रशासन के लिए जिम्मेदार होता था। इस समय विज्जिगों के भञ्जा के राज्य में शायद उन राज्याधिकारियों तथा अन्य राज्यपुरुषों के लिए कोई स्थान नहीं था जिनका उल्लेख हम अन्य अनुदानपत्रों में पाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि भञ्जा के अधीन कुछ समय तक राज्य की राजनीति में भोगियों और सामन्तों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा क्योंकि विद्याधर भञ्ज के एक अनुदानपत्र में केवल इन्हीं दो श्रेणियों के राजपुरुषों का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup> भूमि धर तथा भञ्ज अनुदानपत्रों में भोगियों के दो बार बार आया है। भोगी शब्द का अर्थ कभी कभी ग्राम-प्रधान या लगाया जाता है, लेकिन ग्राम प्रधान महत्त्व कहलाता था, और वह महामहत्तर के अधीन हुआ करता था।<sup>२</sup> किंतु भोगियों के शाब्दिक अर्थ से लगता है कि उसे राज्य की ओर सजा जमीन मिली होती थी उसके बदले उसने कोई राजस्व नहीं देना पड़ता था। शायद प्रणामनीय सेवाओं के एवज में उसे जागीर दी जाती थी। विद्याधर भञ्ज के अधीन भञ्ज राज्य में ऐसी जागीरों की संख्या इतनी अधिक थी कि ग्रामीण प्रजा को दो वर्गों में विभक्त कर देना पड़ा। एक वर्ग में प्रत्यक्ष रूप से राज्य द्वारा शासित क्षेत्रों (विषया) का प्रजा आती थी और दूसरे में भोगियों को जागीरों के रूप में मिले इलाकों (भोगा) की प्रजा आती थी।<sup>३</sup> सोमवर्गीय शासकों के अधीन भोगियों का एक विविष्ट वर्ग

१ ए० इ० ९, न० ३७ पृष्ठ १७।

२ ए० इ० ९५, न० १ पृष्ठियाँ, ११० मिलाइए डी० सी० सरकार, वही २९ ८५ ८६ स

३ भोग्यादिविषयजनपदम् ए० इ० ९ न० ३७ पृष्ठियाँ १६ १७।

ही था जिसे भोगिजन कहा जाता था।<sup>१</sup> इनके अलावा भोगिरूप भी हुआ करते थे।<sup>२</sup> वैसे तो भोगिरूप का मतलब हुआ ऐसा व्यक्ति जो प्रायः भोगी का ही स्तर का हो, कि तु इन्हें भोगिया की तुलना में कुछ कम अधिकार प्राप्त थे। जान पड़ता है कि भोगिया का सम्बन्ध राजस्व-व्यवस्था से हुआ करता था, और भौम-करो के अधीन कुछ भोगी महाक्षपटलिक अर्थात् महालेखापान का पद भार भी संभालते थे और उनसे अनुदानपत्र तैयार कराने का काम लिया जाता था।<sup>३</sup> उच्चतर भोगी को महामोगी कहा जाता था। इसका उल्लेख किसी ऐसे गायक परिवार के अभिलेख में हुआ है जिसका नाम धाम उसमें नहीं बताया गया है।<sup>४</sup> किन्तु भौमकर अनुदानपत्रों में उच्चतर भोगी के अर्थ में बृहद्भोगी का उल्लेख बार-बार हुआ है।<sup>५</sup> इस अधिकारी को ग्राम प्रधान माना गया है<sup>६</sup> लेकिन हमारे विचार से वह उच्चतर श्रेणी का भोगी ही था जिसका हाथ में साधारण भोगिया की अपेक्षा बहुत अधिक गांव था। भौम कर अनुदानपत्रों में भोगिया और बृहद्भोगिया दाना की चर्चा बार-बार हुई है।<sup>७</sup> इससे जान पड़ता है कि उड़ीसा में भूमिधर श्रीमन्ता की श्रेणियाँ बनी हुई थीं।

सामन्त और महासामन्त के बीच श्रेणीबद्ध सम्बन्ध होता था। इस सम्बन्ध का आधार गायद भूमि अनुदान और यह बात थी कि प्रभु को कौन कितनी सैनिक सहायता देता है। भौमकरो और उनके अधीनस्थ सरदारों के राज्या में इन सामन्तों और महासामन्तों का अपना विशेष महत्त्व था। तुगलक के एक सरदार ने अपने अनुदानपत्र में केवल सामन्तों को ही सम्बोधित किया है<sup>८</sup> जिससे प्रकट होता है कि राज-काज में केवल उन्हीं की प्रधानता थी। नन्वश के तृतीय देवानन्द (नवीं सदी के अन्तिम वर्ष) के लिए प्रयुक्त महासामन्ताधिपति

१ इ० हि० क०, ३५ न० ७, बलिभारी (नरसिंहपुर) ताग्रपत्र, पृष्ठ ३६।

२ ए० इ०, २८ ३२३।

३ विनायक मिश्र मेडिएवल डाइनेस्टीज आफ जोर्डिसर पृष्ठ १०२३, ए० इ०, १५, न० १ प० ३३ ३४, ज० वि० ग्रो० रि० सो० २, ४२६७) प० ४० २।

४ मिश्र स० प्र० पु०, पृष्ठ २४ २५ अभिलेख न० १।

५ इ० हि० क० २१, २२१ पवितर्या २७-४०।

६ वही २१७।

७ ए० इ०, २९, ८५ ६।

८ ज० ए० एस० बी०, यू० सि०, १२ (१६१६), २६१।

विरुद्ध इससे भी ऊँचा था। वह किमी की अनुमति लिये बिना अपनी इच्छा में भूमि-अनुदान भी दे सकता था।<sup>१</sup> यह ताल नहीं है कि उसने महासामन्ता और सामन्ता को जागीरें दी या नहीं। सनित इस बात के ता निदिचन प्रमाण हमें उपलब्ध हैं कि सिंगिजग के दा मञ्ज शासक ने महासामन्त बट्ट का ग्राम-अनुदान दिया।<sup>२</sup> बट्ट का पिता मुण्डि मात्र एक सामन्त था,<sup>३</sup> लेकिन स्वयं ही पुत्र ने उससे उच्चतर स्थान प्राप्त कर लिया था और अपने पिता की जागीर खूब बढ़ा ली थी। यद्यपि हमारे पास ऐसा कोई अनिर्णयीय प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर हम कह सकें कि सामन्तों को भी भूमि अनुदान लिये जाना था किन्तु लगता यही है कि उन्हें भूमि अनुदान दिया जाने था, क्योंकि ग्राम चरकर व उड़ीसा के प्रमुख भूमिधर वर्ग के रूप में सामने आते हैं जो चायन पूर्व मध्य-काल में उनका दी गयी जागीरों का ही परिणाम था।

भूस्वामिया का एक और बग राणक कहलाता था। यह तब चायन राजा की सैनिक सेवा-सहायता करनेवाले सामन्त थे। इनमें और रायनक में जो मूलतः राजपरिवार के ही सदस्य थे और अपने आप में एक बग थे, कोई अन्तर नहीं था।<sup>४</sup> उनके लिए 'उपजीविजन' शब्द का भी प्रयोग हुआ है,<sup>५</sup> जिससे प्रकट होता है कि वे राजा के दान-शिक्षिण्य पर पलते थे। कालक्रम से ऐसे लोग भी राणक की श्रेणी में आ गये जो राज-परिवार से सम्बद्ध नहीं थे और जिन्हें भूमि अनुदान भी प्राप्त हुए। सामन्ती राजा द्वितीय महामन्वगुप्त (१०००-११) ने एक ब्राह्मण राणक का, जिसका पितामह श्रावस्ती से आकर यहाँ बसा था, एक गाँव अनुदान में दिया।<sup>६</sup> कुछ राणकों को गाँव लिये जाते थे, जिनका सकेत हम गंग शासक बज्रहस्त (१०३८-७०) के अधीन एक राणक द्वारा है जो ग्राम अनुदान से मिलता है। उसने कोई गाँव तभी दान किया होगा जब उसका पास एकाधिक गाँव रहे होंगे। इस बग के सामन्ता को बड़े-बड़े प्रशासनिक पद मिले होते थे—

१ ए० इ० २६, ७७।

२ ज० ए० एस० बी० ६०, न० ३, १६६८।

३ वही १६८।

४ स्ववत्समुद्रमवानेपरराजय (व) बग, ए० इ०, १८, न० २६, पंक्ति १७८।

५ वही।

६ ए० इ० १, न० ६७ प्लेट एफ०, पंक्ति २८६२।

७ वही, न० ३१, पृष्ठ २२२।

विशेष रूप से सोमविश्या के अधीन। यह लोग अनुमानित प्रकृतक,<sup>१</sup> महान पटलिक<sup>२</sup> और महासा विविग्रहिक<sup>३</sup> का वाग करते थे। सामन्तिया के राज्य के सामन्ती श्रेणि विद्यास में इनका ऊंचा स्थान होता था—राणी से नीचे और राजपुत्र से ऊपर।<sup>४</sup> राणिया की अपनी निजी जागीर होती थी। यह बात विशेष रूप से भीमनरा पर लागू होती है, जिसका एक महिला नामि काएँ हूँ। इसी प्रकार गायक राजपुत्रा की भी निजी जागीरें होती थीं। उन्हा हरण के लिए किसी एक राजपुत्र का वच्यहस्त के सिंगी के अमन न यौनुर म एन कर मुनन गाँव दिया।<sup>५</sup> राजपुत्रा के बाद राजवंशका का स्थान आता है।<sup>६</sup> इन्होंने राजशुभा प्राप्त थी और एसा प्रतीत होता है कि इनका भी उम समय प्रचलित पद्धति के अनुसार ग्राम अनुमान से ही पुरस्कृत किया जाता होगा।<sup>७</sup>

उपरोक्त विवरण के अनुसार हम उड़ीसा में सामन्त नृम्बाधिया के जिन विभिन्न वर्गों की जानकारी मिलती है, वे इस प्रकार हैं भूराज भागा भागि रूप, महामागा बृहदभागी सामन्त महामामन्त, महामामन्ताधिपति राणी राज्यनक या राणक राजपुत्र और राजवल्लभ। समता है, इनमें से अधिकांश का कुछ न कुछ सन्निहितत्वा का निवाह करना पड़ता था और इनका जीवन का साधन राज्यकी आर से प्राप्त भूमि थी जिसके राजस्व आदि पर इन्हीं का अधिकार होता था। इन विभिन्न भूमिधर वर्गों में परस्पर कौन ऊंचा था और कौन नीचा, इसकी जानकारी के लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं है कि तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पड़ोसी प्रदेशों की तुलना में उड़ीसा में भूमिधरों की संख्या भी बहुत अधिक थी और महत्त्व भी बहुत ज्यादा था।

काफी कुछ गाँव राज्याधिकारियों के हाथों में भी थे। ये राजसेवा के बदले इन गाँवों से राज्य का हानवाली भाग का उपभाग करते थे। सामन्तों

१ मिथ ड्राइनस्टोन ऑफ मेडिएवल ओडिसा पृष्ठ १०२ ३ अभिलेख न० १२।

२ वही पृष्ठ १७ अभिलेख न० १०।

३ वही पृष्ठ ६६ ७।

४ ए० इ० ३, न० ४७ प्लेट एक० पक्षितया ३१ ३४।

५ वही, न० ३१ पक्षितया ६ १५।

६ वही न० ४८, प्लेट एक०, पक्षितयाँ ३३ ३४।

७ मिथ ड्राइनस्टोन ऑफ मेडिएवल ओडिसा पृष्ठ २७७।

राजा प्रथम महाभवगुप्त (६३५-७०) ने तीन भूमि अनुदानपत्रों द्वारा अपने ब्राह्मण महामात्य साधारण को चार गांव दिये।<sup>१</sup> नन् राज तृतीय दवानन्द (८६८) ने अपने कायस्थ महासर्वाधिपति का कटक जिले में एक गांव दिया।<sup>२</sup> खिजलि के दो मन्त्र ग्रासका (य दोनों भाइयों) में प्रत्येक ने १२वीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक ज्योतिषी को एक-एक गांव दिया।<sup>३</sup> सेन और गाहड़वाल राज-पुरुषों की सूची में ज्योतिषिया का स्थान ऊँचा है, और सम्भव है कि खिजलि के मन्त्रों के अधीन भी राजा के विभिन्न कार्यों के लिए गुम मूहृत निर्धारित करने के बन्धे में उह भूमि अनुदान मिले ह।<sup>४</sup> इससे वही अधिपति स्पष्ट साक्षात्क उद्देश्य से गंग शासन अर्वात्तवमन् चोडगंग (१०७६-११३८) का दिया एक अनुदान है। उमने अपने विन्वासा अधिकारी (प्राप्तनियाम) चोडगंग का कलिग क्षेत्र में एक पुरवे के साथ एक गांव दिया।<sup>५</sup>

गंग अनुदानों के असली स्वरूप की भारी हम सनिक अधिकारियों को दिए अनुदानों में मिनती है। ये अधिकारी नायक<sup>६</sup> कहे जाते थे, और इनमें में कुछ वंश्य भी थे। गंग सम्बन्ध के ५२६वें वर्ष में अर्वात्तवमन् के पुत्र मयुकामाणव द्वारा जारी किये गए एक अनुदानपत्र के अनुसार तीन गांवों का एक वंश्य अग्रहार बनाकर वंश्य जातीय मन्त्रि नायक के पुत्र एरण नायक का अनुदान में द दिया गया।<sup>७</sup> गणपण सस्था का चन्ने के निमित्त दिए अनुदान का अग्रहार कहा जाता था किन्तु सनिक अधिकारियों से शिक्षण-मन्त्रियों के मन्त्रालय की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। वास्तविक स्थिति यही जान पड़ती है कि यह सनिक सेवा के लिए लिया गया अनुदान था। अर्वात्तवमन् चोडगंग के एक अभिलेख में भी एक नायक को अनुदान दिए जाने का कुछ मन्त्र मिनता है। उसने अपने अधिन माधव का एक कर मुक्त गांव अनुदान में दिया।<sup>८</sup> ऊपर जा उदा-

१ ए० इ०, ३ न० ४७, धी पक्षिया ४५, सी, पक्षिया ४५, पनाट, वही ३४५।

२ वही २६ न० २६, पक्षिया १६ ३८।

३ ए० इ०, १८, न० २६ पक्षिया १६ २६, १६, ४३, पा० टि० १।

४ वही, ३ पृष्ठ १७४, पक्षिया ३०-३४।

५ मद्रास रिपाट ऑन एपिग्राफी, १६१८ १६ परिशिष्ट ए० न० ३।

६ वही, न० ५।

७ वही।

८ ८० ए०, १८, १७१ २ पक्षिया १०६-१३।

हरण दिय गय है उनकी मग्ग्या अधिक नहीं है। फिर भी इस बाल म हमें बिहार और बंगाल में इस प्रकार के जितन अनुदान व उदाहरण मिलते हैं उनसे इनकी दाताद कहा गया है। इससे यही निष्पन्न निकलता है कि मध्य कालीन उड़ीसा म सैनिक तथा गरमनिव अधिधारिया को वृत्तिस्वरूप ग्राम अनुदान दिय जात थे, और साथ ही एम अनुदान मनिव सेवा करने बाल सामन्ता का भी मिलत थ।

बारह तरह श्रणिया के सामन्ता और राज्याधिकारियों की तुलना म हम लगभग तान सौ ब्राह्मण को दिय अनुदाना व प्रमाण उपलब्ध हैं।<sup>१</sup> इनम से अधिकांश ब्राह्मण गायत्र बाहर से बुलाय गय थे। कतिपय मञ्ज अनुदानपत्रा म तो ब्राह्मण का सम्बोधित किया गया है किन्तु भीमनरा तुगा, सोमवर्णिया तथा गगा के मारे अनुदानपत्रा म ब्राह्मण का अनुदाना की सूचना नहा दी गयी है। इसका कारण यह हो सकना है कि जिन क्षेत्रा म एस अनुदान दिये गये उनमें या ता ब्राह्मण साम रहत नहीं थे या अगर रहत थे तो उनकी संख्या इतनी अधिक नहीं थी कि उनका विशेष रूप से उल्लेख किया जाता। ग्रहीताया की सूची स प्रकट होता है कि के मुख्यत मध्यप्रदेश तीरभुविन राड, बग तथा धरे द्र से बुलाये गय थे।<sup>२</sup> एक मत यह है कि उड़ीसा व भूमि अनुदानपत्रा मे उल्लिखित मध्यप्रदेश, बंगाल और उड़ीसा के बीच में पडता था। जो भी हो एसा कोई प्रमाण तो नहीं मिलता जिससे माना जा सक कि यह क्षेत्र उड़ीसा का अग था। कुछ अनुदानपत्रा स यह संकेत मिलता है कि यद्यपि ब्राह्मण लोग बाहर से ही आय थे किन्तु बीच म वे आड म ठहरे थ<sup>३</sup> जहाँ से उहे उड़ीसा के दूसरे हिस्सा म बसाया गया।

ग्रामतौर पर तो एक अनुदान एक ही ब्राह्मण को दिया जाता था लेकिन कभी-कभी एन ही अनुदान के ग्रहीता दो स लेकर दो सौ ब्राह्मण भी होत थे। भीमकर राजा प्रथम गुमानरदेव ने जो आठवी सदी के मध्य म शासन करता था उत्तरी तोसली म दो गावों को मिलाकर वह पूरा क्षेत्र विभि न गोत्रो और

१ यह सख्या मिश्र की सं० प्र० पु० म दी गई अभिलेखों की सूची पर आधारित है। १९३४ म इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद से उड़ीसा म और भी भूमि-अनुदानपत्र प्राप्त हुए हैं। लेकिन उनसे धार्मिक तथा गृहस्थ ग्रहीताया के अनुपात म किसी अंतर का संकेत शायद नहीं मिलता।

२ मिश्र सं० प्र० पु०, सांख्यिक, पृ० १।

३ वही।





दिये गये। त्रिजलि के यगामञ्जदेव ने पेट पोषे, भाड ऋषाड और जगन के माय-साय पाटिरोम्याण (स्पष्टतः यह कोई आमोत्तर बस्ती थी) नामक एक गाँव दान किया, और उसने प्रहीता को भछली और वल्लुमा परचन का भी अधिकार दिया।<sup>१</sup> जाहिर है कि यह गाँव जगता से घिरा हुआ था। फिर हम सोमवर्गी राजा चतुर्थ महाभवगुप्त का एक अनुदानपत्र उपलब्ध है, जो ग्यारहवीं मनी के प्रारम्भ में पश्चिमी उड़ीसा और दक्षिणी बंगाल पर शासन करता था। उक्त अनुदानपत्र के द्वारा उसने ग्रहदण्ड तथा हस्तिदण्ड अर्थात् साँप और हाथी मारने के अधिकार, के साथ-साथ दो गाँव दान किये।<sup>२</sup> शायद इस क्षत्र के हाथी बहुत अधिक संख्या में पाये जाते थे क्योंकि जिस इलाके में ये दोनों गाँव थे उस ऐरावटमण्डल कहा जाता था।<sup>३</sup> इस क्षत्र में हाथी तथा मयि-सम्बन्धी पाल के लिए विख्यात श्वर (अथ समार) लोग रहते थे।<sup>४</sup> जागीर (उपभाग) के रूप में दो भाइयों को लिये इस अनुदान में भविष्य में लगाये जानेवाले कर (भविष्यत् कर)-सम्बन्धी अधिकार भी शामिल थे।<sup>५</sup> यह स्पष्ट नहीं है कि भविष्यत् कर का मतलब भविष्य में राजा द्वारा लगाया जानेवाला कर या अथवा प्रहीतामा द्वारा लगाया जानेवाला कर। यदि इसका दूसरा मतलब रहा हो तो मानना पड़ेगा कि यहाँ राजा ने उन्हें एक असाधारण अधिकार प्रदान किया था, जिसके बल पर वे ग्रामवासियों को बिल्कुल श्रृंगि दासत्व की अवस्था में पहुँचा सकते थे। अन्तिम सोमवर्गी राजा सोमेश्वरदेव के एक अनुदानपत्र में वन प्रदेश के अनुसूच्य कुछ नये राजस्विक अधिकारों का भी परिचय मिलता है। उसने दो गाँवों से जमीन के कुछ टुकड़े (सण्ड क्षेत्र) अनुदान में दिये जिसमें जमीन के साथ साथ हस्तिदन्त, व्याघ्र चर्म और नाना वनचरा के उपभोग का अधिकार भी शामिल था। इसके अलावा इमली पत्थिया खजूर आदि पहाड़ तथा जंगलों के उपभोग का अधिकार भी हस्तांतरित कर दिया गया था।<sup>६</sup> उक्त तीनों अनुदान

१ ए० इ० १८, न० २८, पत्तियाँ १६ २२

२ ज० वि० आ० रि० सो० १७ १, पत्तियाँ २६ ४६ ।

३ वही, पत्तियाँ ३७ ४६ ।

४ वही पत्तियाँ १८ २१ ।

५ वही पत्तियाँ ३७ ४६ । बस एक ही गाँव के अनुदान से सम्बंधित शर्तें बतायी गयी हैं। लेकिन सम्भव है कि दूसरे गाँव के अनुदान के साथ भी वही शर्तें लागू रही हों।

६ ए० इ०, न० ५० पत्तियाँ ३ ८ ।

पत्रों में अनुदत्त क्षेत्रों की सीमाएँ नहीं बतायी गयी हैं जिससे ग्रहीताग्रा के लिए आसपास के जंगल को अपने अधिकार-क्षेत्र में लाने का पूरा अवकाश रह गया था। लेकिन गंग राय धनतवमन् व एक अनुदानपत्र में अनुदत्त गाँव की सीमाएँ जंगल, पेड़-पौधे और चट्टानों बतायी गयी हैं,<sup>१</sup> जिससे प्रकट है कि यह गाँव निम्नी वन प्रदेश में पड़ता था। इस अनुदान की गतें तो नहीं बतायी गयी हैं लेकिन अथ अनुदानों की शर्तों में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि पिछड़ इलाका में पड़ पौधे जंगल चमड़ा, मछलियाँ आदि भूमि राजस्व का मुख्य मापन थे।

विकसित और आबाद इलाका की भूमि राजस्व-व्यवस्था का एक पास विगपता यह थी कि दाता विभिन्न प्रकार के करा के साथ न केवल गाँव दान किया करता थे, बल्कि उनके साथ ही गाँवों में रहने वाले बुनकर फलाल, चरवाहा और अथ प्रजाजन (प्रजुत) भी ग्रहीताग्रा का सौंप देते थे। भीमवर राजाग्रा में १६वीं सदी के मध्य से लेकर लगभग सौ वर्षों तक अनुदान की इस परिपाटी का अनुसरण किया।<sup>२</sup> उनका सामन्त मञ्जा<sup>३</sup> और तुगा<sup>४</sup> न भी इसी तरह के अनुदान दिये। ग्रहीता को सौंप गये प्रजाजनों में बुनकरों और आसपास के उल्लव से एमा जान पड़ता है कि कपड़ा और गाराव बनाना, ये दोनों प्रामोण क्षेत्रों के अतिवाय धंधे थे। इसके अलावा, चरवाहा के हस्तांतरण से प्रकट होता कि देश के उस हिस्से के आर्थिक जीवन में पशु-पालन का कितना महत्त्व था। ग्रहीता को सौंप अथ गिल्पी और किसान शायद प्रकृति शक्त के अन्तर्गत आ जाते हैं, क्योंकि इस शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से सभी ग्रामवासियों के लिए हुआ है। कारीगरों और किसानों के स्पष्ट गतों में ग्रहीता के हाथों सौंप दिये जाने से प्रकट होता है कि वे जमीन से धंधे हुए थे और ग्रहीता के अत्याचार करने पर भी वे न तो किसी दूसरे गाँव में शरण ले सकते थे और

१ वही ३ न० ३ पत्तियाँ १८-२२।

२ एच० पी० शास्त्री, 'सबन वापर-प्लेट रेकॉर्ड में आफ लड ग्रांट्स फ्रॉम दकानल जी ग्रांट ऑफ त्रिभुवन महादेवी, ज० वि० ओ० रि० सो० २ ८२६ ७, पत्तियाँ २४-३२।

३ सत तुवामगोकुल शौडि (डि०) कादि प्रकृति 'वही ज० वि० ओ० रि० सा० १६-८१ ३ पत्तियाँ १८-२४, ए० ३०, २०, ८५-८६, ३० हि० क्वा० २१-२२१, पत्तियाँ २८-३८।

४ ए० ३०, २५, न० १८ पत्तियाँ १२-२०।

५ ज० वि० ओ० रि० सो० ६, २३६ ११५६।

न परती जमीन का ही धारण कर सकते थे हाताकि यहाँ एमी जमीन की कोई कमी नहीं था। १२वीं सती के एक बदल ममिलेत म भी, जिसम ग्रहीतामा की सेवा के लिए कारीगर किमान और व्यापारी सभी उ हैं लिये गये हैं, कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था देसन का मिलती है।<sup>१</sup> लेकिन उडीसा म यह प्रथा व्यापक बन गयी थी, और यह दीघ काल तक चलती रही। मम्मव है कि श्रमिका की कमी के कारण ग्रामीण अयतत्र को चलाने के लिए यहाँ एसी व्यवस्था करना आवश्यक पाया गया हो। लेकिन एस अनुदाना का परिणाम यही हुआ हागा कि किसान लगभग वृषि-दासा की स्थिति म पहुच गये हागे और उनकी सारी महनत मगन्नत का लाभ ब्राह्मण ग्रहीतामा को मिलता होगा। एन ग्रहीतामा म से बहुता को सगुल्मक का अधिकार भी दिया गया। इस विद्वाना ने शिजार करन का अधिकार माना है<sup>२</sup> लेकिन 'मनुस्मृति'<sup>३</sup> म इस शब्द के प्रयोग से पता चलता है कि गुल्म गांधा मे राजा द्वारा स्थापित सनिव चीकियाँ थी जा उसने ग्रहीतामा को सौंप दी थी। अवज्ञाकारिया को दण्ड देने के स्थानीय साधना के हाथ म आ जाने से ग्रहीता अपने राजस्विक अधिकारा को अधिक कारगर बना सकते थे और आत्म निमर ग्रामीण अथ व्यवस्था को बलपूर्वक कामम रख सकते थे।

हम भूमि पर पारस्परिक सामूहिक अधिकारा के धीरे धीरे क्षीण होत जाने के भी प्रमाण मिलत हैं। दाता ग्रहीतामा को पड-पीछे जगल भाड, नदियाँ आदि भी दान कर दत थे।<sup>४</sup> बाद के काल म ग्रामीणा द्वारा इन सम्पदामा के उपयोग के जा कुछ अवशेष मिलते हैं उनसे प्रकट होता है कि पहले उन्हें इन तमाम स्थानीय सम्पदामा के उपयोग का निवाध अधिकार प्राप्त था, यद्यपि उनकी इन पर अपने सामूहिक स्वामित्व का कोई स्पष्ट बोध नहीं था। लेकिन एक बार इन सबके ग्रहीतामा के नाम हस्तांतरित कर दिये जाने के बाद वे स्वभावतः गाववालो को बिना कुछ कीमत लिये उनका उपयोग नहीं करने देते

१ सकाटकपवर्षागिग्वास्तयम् । ए० इ०, २०, न० १४ वीं प्वाठ, पक्ति १६ । यहा मैंने 'भारती' के एक हात के अक्ष म डा० वी० एस० पाठक द्वारा प्रकाशित मदनमयन के एक अमिलत के आधार पर उक्त शब्द समुच्चय को गूढ कर के दिया है।

२ एच० पी० शास्त्री वही २ ४२६-७ ।

३ ७, ११४ ।

४ ए० इ०, १८ न० २६, पक्तिया १६ २२ ।

होगे। उत्तर प्रदेश में यह प्रथा जस तसे रिचनी हुई १८वीं सदी तक चली आयी थी। वहाँ स्थानीय भूमिधारा प्रदान पट काटन पर कर लिया करत थे।<sup>१</sup> इसका अलावा ग्रामीण लोग अथ जंगली क्षेत्रों को ग्रामानों से आयाद नहीं कर सतत थे। दूसरी भाग ज्या-ज्या ग्रहीताओं के परिवारों की सम्पत्ति-सस्या में वृद्धि होनी, वे अधिकधिक परती जमीन पर कृषि करके उमका निजी उपयोग करने लगत होगे।<sup>२</sup> हम प्रकार किसान लोग बीरान अलावा में सेतों करन के अपने प्रकृत अधिकार से वचित हो गय हगि। परिणामत गाँवों में भूमि का अममान वितरण अवश्यमायी था—अर्थात् उमका अधिकतर भाग ग्रहाताओं और उनके वंशजों के हाथों में चला जाना हागा। इसका अनिश्चित उनसे पता में एक बात यह भी थी कि उह भूमि राजस्व निषेध बहुत स अधिकार मिले हात थे जिनसे बल पर बालजम से वे जमीन के स्वामी ही बन जान थ। जिन एमी स्थिति केवल उड़ीसा में ही रही हा सो बात नहीं ह। यह तो उत्तर भारत के मध्यकालीन भूमि अनुदानों की एक सामान्य विशेषता थी कि जिन अधिकारों का उपयोग पहले ग्रामीण लोग करत थे वे ग्रहीताओं को दे दिय जात थे।

ऐसे भूमि राजस्व के माघना की सूची काफी लम्बी है जो पहले तो राजा को दिया जाता था और अनुदान के बाद ग्रहीताओं का दिया जान लगता था। लेकिन उपज का कितना हिस्सा राजस्व-स्वरूप मागा जाना था और जो मागा जाना था वह किस हिस्से से तय किया जाता था यह हम पता नहीं है। तो भूमि अनुदानों से प्रकट होता है कि लगान नकद राशि में निर्धारित किया जाना था। एक अनुदानपत्र में एक ब्राह्मण को दिय गय पूरे गाँव का राजस्व ८४ रूपक तय किया गया है।<sup>३</sup> दूसरे अनुदानपत्र में यह राशि ८२ रूपक है।<sup>४</sup> बंगाल में नकद राशि में लगान तय करने के उगाहरण सबसे पहले ११वीं सदी में सेना के अधीन मिलत हैं। लेकिन यह बात सन्दिग्ध ही है कि प्रारम्भिक मध्य काल में बंगाल अथवा उड़ीसा में लगान की वसूलों में नकद रकमा में ही की जाती थी क्योंकि सातवीं से दसवीं सदी तक यहाँ सिक्के नहीं के बराबर मिले

१ यडन पावेल लड सिस्टम इन ब्रिटिश इंडिया, १, १२८-९।

२ वही १, १७३।

३ ज० ए० एस० बी० यू मिराज १२ (१९१६), पृष्ठ २६५ पंक्तियाँ २२-३६।

४ ए० इ०, १२ न० २० पंक्तिया २२-२८।

ही। एसा मही सामंती कि उा निगा मुना पर धार्मिक कथा व निर म चना प्रसिद्धि हा एसा था कि समाज बगल की सगली मरु रकमा म का ता सकी।

भूमि सगला का कु १ मी ५ मही निरगा कि कस्य प्र गा का सरकारी भी साम गवाण निरिचिचिचि प्रारम्भ हु—साधारण रिमाना व निर भूसासा साग भग निर मर जा मुनाग उर गा म सागर म मुनाग काउग ५। उाने कवन सर का का मगा बारम रगा म ता मर नी हा गाप ही काउ मरुति व प्रगा म सागाग रिपा जिगय का निगमो जन ममु म निरू रागापा का पर रिगाप रग। व निर नीर छोरे वैवागिक साधार प्राण हुमा। कागत्रम म कछ सा निवागी सरकार भी सर सामग्य बन रद। सागर सरकार पुत्र का समधिना वषमगाग छोरे सा निर रागा का उा रिचि चि गगा। उम व रर परि वरासा का सधिचि कता जाग था। जिमम प्रकट हाता है कि उमक सधीय जिना मर था उग सवरा मर स्वामो माना गाग था। यदरि एम सरकार का भूमि सगला दग का सधिचर गरी हाता था पर सा निवागी सरकार पुत्र राज दगा प्रमावगातो था कि उसन भौमकर राजा गमाररव (६वा सदी) स एव। व मरि व गय और गद सता व मरण पोषण क निर एव गाव दान करवाया।<sup>१</sup> भूमिपर लाग का एर तीसरा वग भी था, जिह सगरी सगला की गृति व रद म उरी वनों पर गमीन मिली हुई थी जिग पर साक्षाता का मिली हुद था।

किन्तु साक्षाण अनुशासनागिवा की गग्गा गदस्थ अनुशासनागिवा से बहुत सधिच थी। इट भूमिमे होनेवाली बट सारी घाय ता शीप ही सी जानी थी जिह पर अनुदाग से पूव राजा का हक होता था साप ही इरा। यह सधिचर भी दिया जाता था कि इनकी दूछा हो तो श्रमिना की अनुदत्त भूमि स बांधकर रते। एा धार उट य सधिचर प्राप्त थे, और दूसरी धार उट गाव की उन सारी सम्पदाभा पर भी हाय डालने की सुली छूट थी जिनका उपभाग सयतक कमीण समुपाय करता थाया था। दोना का मतीजा मर हुमा कि निसान और कारीगर वृषि दासा की स्थिति म पढ़ेच गय। मध्यकालीन उडीसा म इत तमाम बाता ने सामंतवागी भूमि-व्यवस्था व कुछ विशिष्ट लक्षणा की जम

१ टी० सी० सरकार हि० क० इ० पा०, ५ २०६।

२ वही।

३ ज० वि० ओ० रि० सी०, १६ ८१ २, पक्तिर्था १८ २४।

दिया। किन्तु उद्योगों में इन भूमि-व्यवस्था का उदय उत्तर भारत की तरह किसी गणितित साम्राज्य के व्यवसायों पर नहीं हुआ था। यहाँ यह व्यवस्था आदिवासी जनजातियों की रीति परम्पराओं की पट्टभूमि में विकसित हुई थी। विभिन्न राजवर्गों ने आरक्षण भूस्वामियों को इन लोगों के बीच बसा कर उन्हें ही इन जीवन पद्धतियों में समाहित कर लिया।

## पाल तथा चन्देल राज्यों की दुर्ग-रक्षित वस्तियाँ

पूव मध्य काल म देग म वहुत से छोटे छोटे सामन्त राज्य कायम हो गय । य बराबर एक दूसरे के क्षत्र को हडप लने की तारु म रहन थ । फलत इस काल म गाँवा की सुरक्षा की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण हो गयी । गाँव बसाने के निर्देश हमे सबसे पहले कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र म दखने को मिलत हैं और शायद यही एक कृति है जिसम इस विषय की विस्तृत चर्चा की गयी है । कौटिल्य ने गाव की रूपरेखा की योजना काफी विस्तार से बतायी है और कहा है कि उसकी सुरक्षा का दायित्व वागुरिका पुलिस आदि आदिवासी जन जातियो को सौंप देना चाहिए । लेकिन इस कृति म गाव की किलबंदी का उल्लेख कही नही हुआ है । बाणभट्ट की रचनाआ म भी कुछ गाँवा का बणन किया गया है किन्तु ये दुग रक्षित गाव नही हैं । ऐस गावा की जानकारी हम बहुत आगे चलकर मानसार म मिलती है । इसम आठ प्रकार के गावा का बणन किया गया है और आदश गाव उसे बतलाया गया है जो चारो ओर से इट या पत्थर से बनी दीवारो से घिरा होना हो और जिसकी दीवार से परे गजु के आनमण को रोकने के लिए चारो ओर चौडी और गहरी खाई हो<sup>१</sup> आग बताया गया है कि गाँव के चारों ओर खडी की गयी दीवार म चार प्रवेश-द्वार होने चाहिए ।<sup>२</sup> मयमत म भी कहा गया है कि गाँव खाइयो और मिटटी के कोटा से घिरे होने चाहिए ।<sup>३</sup> मानसार म किलो की जसी विगद चर्चा

१ पी० के० आचाय, मानसार सरोज ६ १०२ ।

२ वही १०२ ३ ।

३ ६ ६० ।

की गयी है उससे प्रकट होता है कि उन दिनों सुरक्षा की दृष्टि से सर्वत्र उनका महत्व था। एक स्थल पर इसमें आठ प्रकार के किला का उल्लेख है, एक अन्य स्थल पर सात प्रकार के किलो का, और फिर तीसरे स्थल पर तीन प्रकार के पर्वत दुर्गों का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार इस दृष्टि से हमें कुल अठ्ठास प्रकार के किला की जानकारी प्राप्त होती है।<sup>१</sup> यदि इन तमाम प्रमाणा को ध्यान में रखकर सोचें तो मानना होगा कि मानसार का रचनाकाल किलो और कोटा का काल था। हम यह मानूँ नहीं है कि इन दृष्टियाँ म दिय गये निर्देशों का पालन कहा तक किया जाता था। भूमि अनुदानपत्रा में गाँवा की सीमाओं का वणन करते हुए दुग प्राचीरा का उल्लेख कहीं नहीं किया गया है। स्पष्ट है कि मानसार में एक विशिष्ट प्रकार का गाँवा का ही वणन किया गया है। य गाँव या तो राजा द्वारा नियुक्त किय स्थानीय अधिकारियों के सत्ता क्षेत्र थे या फिर स्थानीय सरदारों और सामंतों के शक्ति क्षेत्र थे। सम्भव है इनमें से कुछ गाँव कालक्रम से सुदूर दुग बन गये हों। मदिवा भीत गयीं। इस बीच पूर्व मध्य काल में लड़े किये उन दुर्गों को न जाने प्रकृति और मनुष्य के कितने प्रहारा को झेलना पडा। किंतु आज भी सारे उत्तर भारत में उनमें से बहुतों के अवशेष देखे जा सकते हैं। यहाँ हम पाला तथा चन्देला के राज्या के दुग रक्षित स्थलों का एक मोटा विवरण प्रस्तुत करेंगे।<sup>२</sup> जहाँ तक पुरावशेषों के रूप में उपलब्ध प्रमाणा का सम्बन्ध है, पाल कोटा और किता के बारे में हम कुछ ज्यादा जानकारी है। मुगेर तथा उससे लग भागनपुर, पटना और गया के हिस्सा में पाल युग के बहुत से दुग रक्षित स्थल मिलते हैं। गया से दक्षिण मुदगनिर (मुगेर) का प्रसिद्ध किला था, जो काफी महत्वपूर्ण था। यह पाला के विजय स्वर्णधारों में से एक था और नायक उनकी राजधानी भी। उसके पड़ोस के इलाका में अनक अन्य किले थे। मुगेर सदर सबडिवीजन में रामपुर और पोखरामा नाम के गाँव पाल युग की दुग रक्षित वस्तियाँ थे। उसी क्षेत्र में लखीसराय के निकट जयनगर का किला भी है जहाँ शायद पाल

१ मानसार सिरीज ६ १०४।

२ यद्यपि पूर्व मध्य काल के लगभग प्रत्येक राजवंश पर शोध प्रबंध लिखकर शोधकर्त्ताओं ने डाक्टरेट की उपाधियाँ ली हैं लेकिन किसी भी प्रबंध में शोध के लिए खुद राजवंश से सम्बन्धित दुग रक्षित वस्तियाँ का विवरण नहीं दिया गया है।



राजा इन्द्रद्युम्न की राजधानी थी।<sup>१</sup> उसका कुछ ही दूर हटकर मूरजगदा का दुर्ग था। या तो यह स्थल गंगा में बह गया है, लेकिन इसके उपात क्षेत्रों में अब भी बहुत से पाल युगीन पुरावर्गीय दरजन को मिलते हैं।<sup>२</sup> जमुई सबडिवीजन में इन्दो का किला है। इसकी दीवारें और दीवारों के चारा और की लाई आज भी ज्या की त्या कायम है। अनुश्रुतियाँ के अनुसार इस किले का भी सम्बन्ध इन्द्रद्युम्न से ही था।<sup>३</sup> गंगा से उत्तर बेगूसराय जिले में नीलागढ़, जममगलागढ़ और धलीलीगढ़ के किले थे।

पाल युग के बहुत से दुर्ग भागलपुर जिले में मिलते हैं। इस जिले में सबसे पश्चिम में पडनेवाला किला मुल्तानगज में है। यहाँ पाल-युग की बहुत सी बौद्ध प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। सबसे पूव में पडनेवाला किला कहलगाँव के निकट अतीचक में स्थित था। बटेसरथान से ठीक भील दूर अतीचक में हाल में हुई खुदाई में बटपवतक की तीन मुहरें मिली हैं। पाल अनुदानपत्रों में बटपवतक को एक विजय स्वभावार्थ कहा गया है और विद्वानों का विचार है कि आज का बटेसरथान ही तब बटपवतक कहा जाता था। अतीचक का दुर्ग प्राचीन लगभग ढाई भील की दूरी तक देखा जा सकता है जिससे लगता है कि बटपवतक का स्वभावार्थ दुर्ग स्थित स्थल था और अतीचक का पूरा क्षेत्र इसमें शामिल था। इसके अतिरिक्त यहाँ एक राणक की (राणक थी देवस्य) मुहर भी मिली है।<sup>४</sup> इससे लगता है कि दुर्ग किसी सामन्त की देव रेख में था। जान पड़ता है पथरघटा का पहाड़ी दुर्ग भी जिसका सम्बन्ध अतः पाल पुरावर्गीय से है इसी स्थान के पास पडता था।<sup>५</sup> पहाड़ी के ऊपर बना शाहकुण्ड का किला भी इसी तरह का पहाड़ी दुर्ग था, और लगता है कि इसका सम्बन्ध भी पालों से ही था। भागलपुर नगर के उपात क्षेत्र में चम्पानगर का किला था। बुकानन कहता है कि यहाँ उसने एक वर्गाकार कोट देखा जो चारा और से खाइ से घिरा हुआ था। उसके अनुसार यह कोट शायद पाल युग

१ ए० रि० वि० न० २१०।

२ वही न० ४२७।

३ वही, न० १६०।

४ इस सारी जानकारी के लिए मैं पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्व विभाग के फील्ड डायरेक्टर डॉ० आर० सी० पी० सिंह का आभारी हूँ।

५ ए० रि० वि० न० ३०३।

का ही था ।<sup>१</sup>

गया जिने में कम से कम पाँच पाल किला के घुसावने पर देखने की मिलते हैं । उदाहरण के लिए, दाउदनगर के निकट अमौना में, जहाँ छोटी दाताब्दी के मध्य का एक अभिलेख भी मिला है<sup>२</sup> मिट्टी का एक किला है, और यह गायद पाल-युग का ही है । फिर कुकीहार में भी इटा से बने एक किले का घुसावने पर मिला है और साथ ही बहुत से पाल पुरावने भी—<sup>३</sup> विनोद कर कसे के वे टुकड़े जो पटना संग्रहालय में रखे हुए हैं । स्पष्ट ही, यह पाल युग का एक महत्वपूर्ण दुर्ग था । इनके अलावा तीन अन्य दुर्गों का भी उल्लेख किया जा सकता है । एक तो है धरवत जहाँ बहुत सी बौद्ध प्रतिमाएँ मिली हैं ।<sup>४</sup> दूसरा है बिहार और तीसरा अफसद जहाँ आदित्यसेन के शिलालेख भी मिले हैं ।<sup>५</sup>

पालों के अन्य किलों के अवशेष पटना जिले में मिले हैं । खद पाटलिपुत्र नगर पालों का एक विजय स्व-घावारा था । ऐसा जान पड़ता है कि पालों के अधीन पटना दुर्ग रक्षित स्थल था, और वैसे तो यह मुस्लिम-काल तक दीवारा से घिरे नगर के रूप में कायम रहा ।

जहाँ हम पालों के केवल नौ विजय-स्व-घावारों के नाम मिलते हैं वहाँ चन्देलों के द्वाकीस स्व-घावारा और राज गिविरा की जानकारी उपलब्ध है ।<sup>६</sup> ऐसा मानना असंभव न होगा कि ये सब के सब किले रहे होंगे । कम से कम सात गिविरा के सम्बन्ध में तो यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है । ये सात गिविरा थे—खजूरवाहक वारिदुर्ग जयपुर या नटपुर (अजयगढ़) कीर्ति गिरि दुर्ग (देवगढ़) गोपगिरि (ग्वालियर) कालञ्जर और सोधि, (सिद्ध दुर्ग अब कहरगढ़) ।<sup>७</sup> इसके अलावा अनुश्रुतियाँ हैं आठ और दुर्ग भी चन्देलों के बताये जाते हैं लेकिन इन आठ में उक्त सात दुर्गों में से दो-तीन शामिल हैं ।<sup>८</sup>

१ वही न० १०० ।

२ वही, न० १२ ।

३ वही, न० २६२ ।

४ वही न० १४० ।

५ का० इ० इ०, ३ २०० १ ।

६ ए० रि० बि०, न० ३०५ (३) ।

७ एस० के० मिश्र द अर्ली इलस आफ खजुरवाहो पृष्ठ १६३ ४ ।

८ वही ।

९ वही पृष्ठ ६८ ।

अतएव, मूल मिलानर च देल दुर्गों की सख्या लगभग नौ दजन मानी जा सकती है। उनके सबसे ज्यादा किले स्वभावतः बुदेनगण्ड में थे, क्योंकि चदला के राज्य का अधिकांश भाग बुदेनगण्ड में ही पड़ता था। चदला का राज्य आजकल व डिवीजन से बड़ा नहीं था। सच तो यह है कि उनका मूल नाम ही जेजाभुक्तिन था और भुक्ति क्षेत्रफल में डिवीजन के बराबर ही होती थी। उनके राज्य में केवल सोलह विषय या पत्तला थे।<sup>१</sup> इतने छोटे राज्य में दुर्गों की यह सख्या कोई कम नहीं मानी जायेगी।

जाहिर है कि ये चदेल दुर्ग स्थानीय सरदारों के अधीन स्वायत्त सामन्ती किले नहीं थे। य वास्तव में सैनिक केंद्र थे, जहाँ से स्थानीय किमाना से राजस्व वसूल किया जाता था और उन पर सत्ता का रोब रखा जाता था। ऐसा लगता है कि प्रत्येक दुर्ग एक एक दुर्गाधिप<sup>२</sup> के हाथ में रहता था और उसके पद को दुर्गाधिकार<sup>३</sup> कहा जाता था। कालञ्जर तथा अजयगढ़ जैसे दुर्गों के सेनानायक को विधिप<sup>४</sup> कहा जाता था, और उनमें से प्रत्येक को कम से कम एक गाँव सेवावृत्ति के रूप में दिया जाता था।<sup>५</sup> शायद चदेल शासन के अन्तिम दिनों में उन्होंने स्वतंत्र सामन्तों का पूरा दर्जा पा लिया था। १२वीं सदी में इंग्लैंड के राजकीय दुर्गों की गढ़-सनाग्ना को दो चार जमीदारियों के समूह वृत्ति-स्वरूप दे दिए जाते थे।<sup>६</sup> चदला के अधीन राजकीय दुर्ग के प्रधान को वृत्तिस्वरूप भूमि अनुदान तो दिया जाता था, लेकिन दुर्ग रक्षक सैनिक भरती और मुहैया करना उसका काम नहीं होता था। यहाँ इन सैनिकों का भरण पोषण आदि राज्य के खर्चों पर होता था। जा भी हो, चदेल राज्य में किला की इस बहुलता को राज्य के सामन्ती गठन का लक्षण माना जा सकता है।

पाल और चदेल राज्यों के दुर्गों के इस छिट पुट अध्ययन के आधार पर कोई सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। यदि हम मुस्लिम शासन की स्थापना से पूर्व के इन मध्य-कालीन शक्ति केंद्रों की भूमिका के महत्त्व को ठीक-

१ एस० के० मिश्र ने स० प्र० पु० (पृष्ठ १६१ ३) में विषय को पत्तला कर पर्याय मानकर चदेल अभिलेखों के आधार पर सालह विषयों के नाम गिनाये हैं।

२ वही पृष्ठ १६०।

३ वही।

४ वही पृष्ठ १५८ ६।

५ फ्रैंक स्टैटन इंग्लिश फ्यूडलिज्म, १०६६-११६६, पृष्ठ २१२ ३।

ठीक समझना चाह तो यह आवश्यक है कि विभिन्न राजवशा से सम्बन्धित दुर्गों का इलाकावार अध्ययन किया जाये। फिर भी राजनीतिक तथा आर्थिक भगठन की दृष्टि से दुर्गों की उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। मध्यकालीन किला बहुद्देशीय भगठन था। ये किले आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और इस दृष्टि से ये आज के शहरों की ही तरह थे। जिससे के रूप में वसूल किये गए को यहाँ एकत्र किया जा सकता था दुर्ग रक्षक सैनिकों को रखा जा सकता था, तथा युद्ध बाढ (विशेषकर पूर्वी प्रदेशों में) और अकाल के समय आम पास के लोगों को आश्रय मिल सकता था। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि दुर्ग बड़े अतिम अस्त्र था जिसका प्रयोग राजा या सरदार किसानों पर अपनी सत्ता कायम रखने के लिए कर सकते थे।





## अनुक्रमणिका

अमपटलादाय १६३	अपरम्पारगोबलिवद्ध ५० पा० टि०;
अपटलिक १६३	३
अग्निकुण्ड ११२	अपराजितपच्छा २११, २१२
'अग्निपुराण २०५, २३७ पा० टि०	अपराक १५१
अप्रवाल वा० श०, १६ पा० टि०,	अपस्तम्ब १४६
२१	अपुत्रिका घन १०६
अप्रहार १२ ४२ ४३ ४६, ४६-	अप्रहत ३८-३७, ३९
४८, ४९, ५५, ६६, ७९ ८२	अबोतावाद १११
११६ १२८ १३६ १६८ २२१,	अनयपाल पा० टि० ७, १७७
२२४, २४०,	अमरकोश ६४
अप्रहारिक ३१ ४४ ४६ ६६	अमात्य १५, २१, २२, २०८
अनग ६८ १७७	अमोघवप (प्रथम) ८७, ८८, ८८,
अनगभीम (ततीय) २४०	९५ १०६ १०८ २२१
अनतवर्मन २५ ४५ १६९ २८७	अमोघवप (ततीय) ८२, ८७, १०७
अनहिलपाटन २५२	अरहट्ट ४२ पा० टि०
अनुगतना ३३ ३५	अयशास्त्र २१ २५ ४०, ५२, ७६,
अनुरवत महासामन्त ३०	१००, १२६, २३५
अनुराग ३०	अघपुरपारिक १६१
अनुशासन पत्र २	अलतेकर अ० स०, ८८, ८७, १०६,
अन्तर्वेदी २० पा० टि०	१०७, १०८ १११, १३६
अतिचक्र २६८	अलर ८१, ९१
अन्तीली घरीनी, ६४	अलबकूनी २५१, २७२
अन्त पुर १६	अलवर ११८, १३१

भल्ल १२१  
 भल्लशक्ति ५०  
 भल्लहृषदेव २३६, २४४  
 भवष १२०  
 भजमेर २६४  
 भवनिवमन (द्वितीय) ८४ ६३  
 भवसगन ३४ ३५  
 भसरफपुर (प्लेट) १४ ५५  
 भरोपरराजपुरुषाज ६२  
 भगोक १७, २५  
 भष्टप्रहारिक २३६  
 भष्टद्रहिन २०६ २१० २१२  
 भसहाय १४६  
 भहिच्छत्र २८६  
 भाषाम १०  
 भाषाय २४२ पा० टि० २४४  
 भाषित्यसन २६६  
 भादिवराह १३४  
 भाषिमिह ३४  
 भाषि १५३  
 भाषिकारिक पा० टि० १ ६८  
 भाधजन १३१  
 भाध प्रण ३६  
 भाधगामत २८  
 भाभाष्य २४४  
 भायुक्तक २३ ६७  
 भाकट १०६  
 भाषिक ६८  
 भाषार १७

इनाम ८७  
 इन्द्रद्युम्न २६८  
 इन्द्र (द्वितीय) ८३  
 इन्द्र (तृतीय) ८६, ८७ १०४  
 इन्द्रराज २६, १६५  
 इस्लाम ६८  
 ईश्वरघाप २०१, २०२ २१६  
 उज्जयिनी ११०  
 उज्जन ८४, ६५  
 उडीसा १६ ४६  
 उत्तर प्रदग ११४  
 उत्पादयमानविष्टि १०७  
 उत्क १४५  
 उत्पपुर २३६  
 उत्पमान ३८  
 उदयादित्य २६८  
 उद्दतपुरी ११६  
 उत्तरग १३ ३६ १२७  
 उत्तम ६६ १२६  
 उपरिकर १२ १२ २०, २०, २६  
 २६ ७७ ६७ १०७  
 उपसामंतीकरण ६ ३५ ३८ ७७  
 ६२ ६४ ६६ ११४, ११७ २३५  
 २ ७ २६१ २६८ २६६, २७३  
 उपजाविजन २८१  
 उमान २१७  
 कृष्ण २७६  
 कृष्ण १०  
 एकाग २००

एलोरा ५८	७१ ७२ ७५ ७६ १११, १३०, १३२
आगज ११२	
आनग ४	पयक ४७, १५८
अीडू २-८	कल्लपाल १२०
अीदुम्बरिक २८	कल्हण १०७
कछार ६३	कामीर २५०
कटक २८७	कागरा ५८
कडौल ८६	काचनपूर ११०
काम्यवात १८३	काकीणी १३३
कनिषम २६८	काठियावाट ८८ ९४ १०५
कडलमूलीय २५५	कात्यायन ६२, १४६ ११० १५१ १५३ १५५
कानड ३४	कादम्बरी १- २६, २८ ४४
कानीज ११०	कायकुलभुक्ति ८९
कपदक पुराण २६२	कामन (गिलालख) १२४
कपिलावासक ११०	कामक नीतिसार ३२-०४
कर १२ १३१, — का किमाना पर कुप्रभाव १२, ५० — के रूप म राजाधिकारिया की वतन ८८	काममून ५२ ६६
करजम २०९	काहकादि २४०
करद २६	कालजर ७८
कराधान १४६-४७ १५०, १५ १५७, २३२ २०३ ४० ४० २४७, २५८ १६ २७०	किनाग ६४
कवक (द्वितीय) ६२	किला अमौना म २६६ — कुकिहार म २६६ — चम्पानगर म २६८ — जयनगर म २६७ — पथरघटा म २६८, — पाटलिपुत्र म २६८ — गाहकुण म २६४, — मुरजगडा म २६८
कवकराज सुवणवप ८६	कीघ १३६
कवकराज ९८	कीतिपाल १८१
कणसुवणक २८	कातिवमन १७१ २६३
कर्णाटक ३४ ५१ ५६ ७१ ८५ ९६ ९६ १२८	कुटम्बिक २३६
कपक १३३	कुटुम्बिन ५६
कूपरदेवी १६८	



कुम्भे ६५	काकण ७२, २४० २४७, २५५ २६४
कुमारगुप्त १६, ६७	कोकामुलम्बामिन् ३७, ४५
कुमारनाग १३	कोटिक २४६
कुमारपाल १६५, २२० २२१, २४५	कोटिवप १६
कुमारस्वामिन १८, ३८	कोरापुट ५६
कुमारामात्य १६ २१, २६	काहापुर ८५, १०५ १०६
कुमागमाय महाराज ७	कोसम्बी डी० डी० ६६
कुल ८४	कोसल २, ४०, २८७
कुल गर्मा १७३	कोटिल्य ८ १० २२, २५, ३२, ४०,
कुल्म ६३	५०, ५२, ६१, १०० १२६ १४५,
कुम्भवाप ६२	१४६, २३३ २६६ —के विषय
कटक २४५	अधिकारिया को वनन देने के सम्बन्ध
कृष्णाम १२८, —म म २३६, —	म ११
के रूप ५८	विदलोन २५७
कृषि दामत्व ५७ ९१ ११५ १२०	कोठी ६७, १३४, २६२ २६८ २६९
२३३ २६१ ६, २६४ —उद्योग	भोत्रवार ७८
म २४० २४१ २६० ६१ —कागरा	छोत्रस्वामिन् ४८ ५३
घोर गुजरात म ५७ ६८ —का उद्	वम भिन्ना १२५
भव ६४ ६५ —का विकास १२०	विजिल २८६
१२७ —मध्यकालीन यूरोप म २७४	लिजिग १६८ २८३ २८५ २८७
कृष्णन १५६	विष ३६ ३७ ३६
कृष्ण (प्रथम) ६७	मानेग ८२
कृष्ण (द्वितीय) १०६ १०६	तामिष १५६
कृष्ण (तृतीय) १०६	गगा ११०
कृष्ण (चतुर्थ) १२०	गगाधर मन्त्र १६५
कता ४२	गगाम ५६
कम्प १८१	गगानि नयन १६६
कम्प ८९, १३६	गग ८८
कराचिनी २३३	गगरागि १०४ १०३
कराचिनी साम्राज्य १६५	गदुपान २६८
कर्म विना १६१, १७५	गर्भया रीमा १३५
कोकट ६४	गर्भया गिषदा २६४

गया ७, ४५, १३३  
 गयाडतु ग २८६  
 गवुण्ड ६०  
 गगूर (गौशूर और गसुर भी) १११  
 गागुली, डी० सी० २५१  
 गागेयदेव २६७  
 गुजरात १७, ३८, ४०, ५०, ५७, ५८,  
 ६३ ८५ ८७ ६०, ६६, ६८, १०८  
 ११२, ११४ १२२, १२५, १३८  
 गुणसागर (प्रथम) ८८  
 गुणाम्बोधि ८८  
 गुजर १११, देखिए गसुर भी  
 गुज्जरत्तरामूमि ८६, ६४  
 गुहिलोत २३६  
 गृहटि २३८  
 गहस्यावर चलक ५८  
 गोगु राणक १०८  
 गोत्र ४०  
 गोदावरी ५५  
 गेफ ८ ६  
 गोपचद्र १६  
 गोपाल १०५  
 गोविन्द (द्वितीय) १०६ १०७  
 गोविन्द (तृतीय) ८५ ६०, ६३,  
 १०४  
 गोविन्द (चतुर्थ) ८६ ६६  
 गोविन्द (पंचम) ८५  
 गोविन्द केशवदेव २३८  
 गोविन्दचद्र १७७ २१८ २२७  
 २६३ २६७  
 गोविन्दस्वामिन् ४५  
 गोष्ठिक २३६

गौतम ३३ १४१, १४६ १५२, १५४  
 गौतमी पुत्र घातकणि २  
 गौरी २४४  
 ग्राम इकाइयाँ,—एक सौ छब्बीस की  
 १८८, २२१,—चौंसठ की १८६,—  
 चौबीस की ६०, २१६ २७१,—  
 चौरासी की ६० १११ १८०,  
 १८४ १६३,—तीन सौ की  
 १०८,—दस की ८६ ६० १०८  
 ११३ २७१,—पाँच की २१६,—  
 बयालीस की १८८,—बारह की  
 ६० १०८, १११ १८४, २१६,  
 २७१,—सोलह की १८४ पा०  
 टि०,—सौ की २१८  
 ग्रामकूट ८६, ६१, ६७, १०२ पा०  
 टि०  
 ग्रामजम २०६  
 ग्रामपति ६ ६१, ११३  
 ग्राम प्रधान २३, ५२ ६६, ७७, ८६,  
 ६१  
 ग्राम भोजक ६  
 ग्राम पटटक २०७  
 ग्रामाधिपति आयुक्तक २३  
 ग्रामाधीन २०६  
 खालियर ८३ १२० १३७ १४४  
 २६४  
 घटकूपक १३२  
 घटी ४२  
 घरत्वानम् ५४  
 घोपाल १४०  
 घट्टा १६५  
 चक्रवर्ती २१० २१६

चण्डाल १०६ ११६, १३१	जहाजरानी २५५ ५६ २६०
चतुर्विंशतिवर्षसहिता ५६	जागीर १८२
चतुरसिक २११ २१२	जागीरदार १६,—जागी (रा) के
चन्द्रगुप्त ६२	वत्तव्य गुजरात मे २०५ ६
चन्द्रदेव २१८	जागुक (जागु शर्मा) १७६ ७७ २५०
चाट २०, ३६, १२६ २४३	जाजूक १७१
चामुण्डराज २४६	जायसवाल का० प्र० १३६ १४८
चीन १, ६६ ७०	जीरक ५६
चुंगी २४४ ४७ २५६, २६१, २६४	जेमक-कर भर १६५
चाल वामादिराज १६६	जमिनी १६१ १४८
चोलगग १३३	जोधपुर ६४, २६१
चोल्लिक १३२	जाति १४३
छोडुगोमिक १३	ज्योतिषी १६५
छपरा ८३	भूम ४३
छम्बा १२८ २२४ २३६ २३६,	टिपेरा ४१ ४३ ४४ २४१ २६२
२४१	ठक्कुर १७२ १७४ १७७ २०२
जगन् २४३	ठक्कुर फेरू १३४
जगदेकमल्ल १०६	ढड्ड (द्वितीय) २३
जगन्मल ११६	टायन त्रिसोमटम ७४
जगधर गर्मा १६८	डरेट जे० डी० एम० १५८
जगमल २३६	तत्रपाल ६८
जटन गर्मा १७७	तरिक २५४
जनपद १८६	तरणादित्य ६३
जमीन के अधिकार १२७	तरणादित्यदेव ८३
जयघट २३	तलपाटक ८०
जयचव द्र १७७ २१८	ताप्लि ६२
जयनगर २८	ताम्बूलिक १३२
जयनाथ १२	तार १०५
जयमट (तृतीय) ५८	तारापी १६ ४४
जयधमन (द्वितीय) १६७	तालि १३३
जयम्क-घावार ११०	ताहिया ११२
जम्नादिपम ६६	निलकमनरी १६७

## अनुक्रमणिका

तुलारिस्थान ११७  
 तुला १३३  
 तजपाल (ब्यापारी) २५३  
 तत्रक १३२ १३७  
 ताण्डइ १०५  
 तासली २८८  
 त्रिपुरस्यदेव २८६, २४४  
 त्रणा ८७  
 शलोत्रयवमन १७१ १७३, १७४,  
 १६२  
 धनसर ४२  
 दण्ड ८२  
 दण्डगापराध १७७  
 दण्डधारी ३१  
 दण्डनायक ७७ ६२ ६६  
 दन २२  
 दन्तिदुग १३, ८५  
 दम्बल १०६  
 दगग्रामिक ६ ८८ ११३  
 दगग्रामी ८  
 दगापचार ८२  
 दगापराधदण्ड ८२  
 दामोदर गुप्त ४६  
 दामोदरपुर ३६ ३७  
 दायाद १४३  
 दारपराज १६६  
 दास ५१ २३७ २७३ ७४ २८०  
 दामत्य —का ह्रास ६० ६१  
 टिय ४६  
 टिल्ली २६४  
 दिवाकरप्रम २२  
 टिवर १०

दुग,—घलीलीगढ मे २६८,—  
 कालजर मे २६६,—बिउर म  
 ७६६,—कीर्तिगिरि म २६६,—  
 खजू र वाहक मे २६६,—गोपगिरि  
 म २६६,—जयपुर या नदिपुर मे  
 २६६,—जयमगलागढ म २८७,—  
 घरवन म २६६,—नीलागढ म  
 २२६,—वारि दुग मे २६६,—  
 साधि म २६६

दुर्गा १२१  
 दुर्गाधिकार ३००  
 दुर्गाधिप ३००  
 दुष्टसाध्य १६१ १६४  
 दु साध्य २४३  
 दूतिक २००  
 देवकुल ८६ ११६  
 दवणमटट १४३, १५७  
 देवपाल ८१ ११५ १३१  
 देवल १५०  
 देवानद (ततीय) २८७  
 देगग्रामकूटक क्षेत्र ८६  
 देशीनाममाला २५६  
 देसकार ६३  
 दीस्ताधसाधनिक १  
 द्रम्म १३३ ३५  
 द्रव्यपरीक्षा १३४  
 द्वारप्रकोष्ठ १६  
 द्रोण ६३  
 द्रोणवाप ६३  
 धग १७१  
 धनिका १४३  
 धधुक १८३

घरण २५५ २६४	नारायण ५६
घरणिबराह ८४	नारायणभद्र २८
घरसेन (प्रथम) ४६	नारायणवमन ८० ६३ ६५
घरसेन (द्वितीय) ५७	नासदा ४४ ४६ ७५ ८०, ८१, ११५ १२२ २२५
घरसेन (तृतीय) ५८	नालुस २२२
घमपाल ८० ६३ ६५, १२६ १३३	नासिक ८५ २४५ २४७
घमलेखि २२५	निगम ७५
घवलप्प ६३	निधि निधान १२३
घाय १२७	निम्बदेवरस १०३ १०५
घारवार ७४ १०८, १२१, १२२	नियुक्त ६७
घालेप २३६	नियुक्तक ६७ १०२ पा० टि०
ध्रुव (प्रथम) ८७	नियोगी, पुष्पा २५१ पा० टि०
ध्रुव (द्वितीय) ८७	निवेश ५६
ध्रुव (तृतीय) ८६	निवशन ५६
नगर — उत्तरी भारत मे २५२, —	'नीतिवाक्यामत १०४
पश्चिमी भारत मे २५० ५२, —	नसिह (द्वितीय) १७०
पूर्वी भारत मे २५१ २५३	नेमिक वर्णिक १३७
नगरकोट २६६	नोहाला २२२
नडोल २४७	पचकुल २०७
नडडुल २४४	पषग्रामी ८
नान नारायण ८०	पचनगरी १६
नानराज २३	पचमहागद २३ १०३
नरसिंह चालुक्य १०४	पचीयकद्रम्म १३५
'नरसिंह पुराण ६४	पजाब ६७
नराधिप २११	पट्टकिल १८५, १६१, १६४, २४३
नमदा ६२	पट्टधर २१०
नट्टिभर्ता १२३	पट्टमाज २१०
नागभट (द्वितीय) ८०	पट्टिका २२१
नाटलडागिका २४५	पण १३३
नायक १७० १६६ २८७	पण्य १५२
नारद ३२ ३३ ३५ ६१ ६४	पत्ताला १७६ १८०, १६०, २०६
१४६ १४७ १५१ १५२ १५५	

२१७, १२१, २५०  
 पयक १८६ ६०  
 पयरघटा ११०  
 पम्पराज २६५  
 परती जमीन १५६, २२५, २६४,  
 —का हस्तांतरण २३१  
 परमभट्टारक २०, ६८  
 परमभट्टारक महाराज परमेश्वर १०३  
 परमादिन १६३ १६२, २१६, २२६  
 परमेश्वर ६८  
 परमेश्वरपादोपजीविन ६८, १०१  
 परमेश्वरीय १३३  
 परिचारिकीकरण २७  
 पलिका १३२ २४६  
 पल्लिका २४५  
 पाटक १७८ २१६  
 पाटलिपुत्र ११०  
 पातिकोम्याण २६०  
 पाद १३३  
 पादपदमोचजीविन १०१  
 पादपिण्डोपजीविन १००  
 पादप्रमादोपजीविन १०१  
 पात्रोपजीविन १७०  
 पाणिक् २१०  
 पिष्टपुरिकादेवी १४, ३७  
 पिष्टपुरी ४५  
 पुण्ड्रभुक्ति ८१  
 पुण्ड्रवधन ३० ८१  
 पुरुषोत्तम सेन १६६  
 पुरोहित १०, ३३ १६५  
 पुलकेगिन ३०  
 पुलिन्दभट १४, ३८

पुलिन्दराज २६४  
 पुष्पभूति २६  
 पृथ्वीराज (द्वितीय) १६६  
 पृथ्वीराज (तृतीय) १६६  
 पृथ्वीराज (चतुर्थ) १६६  
 पेदश्या एक व्यापारी वग २५३  
 पहोघा १२६  
 यथन ८२  
 पला २६१  
 प्रकृति २६१  
 प्रचण्ड ६२, १०६  
 प्रताप ३०  
 प्रतापमत्त २६८  
 प्रतिवामिन ८१  
 प्रतिष्ठानभुक्ति ६०  
 प्रतिसामत २६  
 प्रतीहार ७७ १६३, १६४, १६५,  
 २४४  
 प्रदोषशमन ४१  
 प्रधानसामत २६  
 प्रव घञितामणि १६८, २०६ २२०-  
 २२१  
 प्रभु, —का नियन्त्रण सावत्रिक १०६-  
 ७  
 प्रमातार १२  
 प्रवणि ४२  
 प्रवणिकर २५३  
 प्रवरसेन (द्वितीय) ३ ७  
 प्रसादलिखित ११  
 प्रस्थ १६३  
 प्रस्थक १२३  
 प्रहारिक २१०, २१३

प्रह्लाद नामा १७६  
 प्राणवधमहात्म्य २३  
 गिनो ६६  
 पाणिपात ६ ११ ६४ ६७ ७८  
 १८८  
 पञ्चम ८६ १३, १०८  
 पद्मनाभ ४ ३६ ३७ ४१ ५५,  
 ६३ ७८ ८८, ९५ ९६ ११८  
 १२८  
 पद्मनर ६७  
 पार्श्वी पी० एन० १३९ १०  
 पद्मवामी ८६ ८९ १०८  
 पद्मारण ८३  
 पद्माना २४५ २६१  
 पद्मवत् पद्मिणी २५  
 पद्मनाभ मन्मथ १७३  
 पद्मपद्मन् ८३  
 पद्मवर्मा ९४  
 पद्माधिकृत ९८  
 पद्माधिक १९४ २४४  
 पद्मि १६४  
 पाण १६, २६ २७ २९, ३० ४२  
 ४४, ४६, २७५ २९६  
 पादाभि ५०, ५६ ७४  
 पातपुत्रदेव ८१  
 पियास ३१  
 विहार ३४, ६७ ८१ ९६, १२८  
 बील ९  
 बुकानन २६८  
 बुद्ध ४५  
 बुद्धधोष ५  
 बुधगुप्त २०

पुण्यव ९३, १०३  
 पुत्रेयवत् १२८  
 पुत्रार १३६  
 पद्मनाभ ७१२  
 पद्मनाभ ७१  
 पद्मनाभ २७१, २८६, २८६  
 पद्मनाभोय पुराण २७५  
 पद्मनाभ २, ११ ३७, ४८ ६१ ६६  
 ७७ ७९, ७९ १४३ १६० १५०  
 १५१ १५३ १५५ १६६ पा० १०  
 पद्मनाभ (विष्टि) २४ २९ ४९ ५३,  
 ७१ ७६ ८५ ८६ १ ५ १२६  
 १२७ १३८ २४९-५० २६९  
 २७३ २८०  
 पद्मनाभ ६९  
 पद्मनाभ १४९  
 पद्मनाभ ४५ २२३  
 पद्मनाभ ५, ६ १०  
 पद्मनाभ पुराण २७८  
 प्राज्ञान ३५ ३६, ३७ ३९ ४१ ४३  
 ४५ ४८ ५४ ५५ ५७ ६५ ७२,  
 ७७ ८१ ८३ ८५ ८६ ८७ ९१  
 ९४ ९६ १०८ ११६ १७४  
 १३१  
 भगवान् पद्मनाभ नारायण ४२  
 भट ३९ १२८  
 भट्ट ब्रह्मवीर स्वामिन २८  
 भट्ट भूवन्देव २११  
 भट्ट पद्मनाभ १७१  
 भट्ट विष्णु ९४  
 भट्टस्वामिन् १२६ १४६ १४७  
 भट्टाग्रहार २२०

नटारक १६  
 भण्डावर १३५  
 भरतपुर १२४ २४५, २६१  
 भवाना ४५  
 भाग १२ २४२  
 भागनपुर ११० १३३  
 भाण्णागाराधिकृत २०  
 भारक २८६  
 भारत वकिट्ट्याई ६७  
 भारतीय संग्रहालय १३४  
 भारद्वाज ८० १५१ १५४  
 भावदव १६६  
 भास्करवसन २३  
 भित्तरा ४६  
 भित्तमाल १३५  
 भीमदव (प्रथम) २३०  
 भीमदेव (द्वितीय) २३०, २४७  
 भुविन १८ २२ ८३ ८६ पा० १०  
 ८६  
 भुयमान १४  
 भुयमानक १४  
 भूतवति प्रत्याय १२७  
 भूपाल २७१, २८३ २८६  
 भूमि —का अधक १५४ १७८  
 ७५, —का विभाजन १४१, १४२  
 —की विप्री १४३ १४६ २७६ —  
 गुजरात म जागीरो के रूप म अधि  
 कृत २२४ २५ —पर राजकीय  
 स्वामित्व १४१ ४२ १४५ ४६ —  
 पर सामुदायिक अधिकार १४१ ४३  
 —मालवा म जागीरो के रूप मे  
 अधिकृत २२३ २४, —राजस्थान म

जागीरो के रूप मे अधिकृत २२४ २५  
 भूमि अनुदान असम म २१५, २३७,  
 —वायस्थो को १७२ १७६, १६८,  
 —उड़ीसा म १४४, १६४, १६७,  
 २०५, २७१, २७७, २८२ ६५, —  
 उत्तर प्रदेश म १७५, २१७ २ १,  
 २४८, २७१, —कट्टुम्बिया को  
 १०७, २७१, —के साथ किसानों का  
 हस्तांतरण ५४ ५६, —गंगा द्वारा  
 १६६ ७०, १७१, २८७, २८६, —  
 गाहड़वाला द्वारा १७६ २१८, २३८,  
 २४६, २५३, २७२, —गुजरात मे  
 ४८, १६३, २०६, २२०, २२१,  
 २२५ २३, २४८, —गुजर-  
 प्रतीहारों द्वारा २३१ —च देली के  
 राज्य में १०४ २३२ ३, २३४,  
 २४६ —चन्द्रा द्वारा २५८ —चाह  
 मानो द्वारा २ ४, २४४, २४५,  
 २५२ २६०, —चोलुवया द्वारा  
 ३४ २४६, —तुगो के राज्य म  
 २८४, २८८ —पालो के राज्यों मे  
 ७७ ६, —प्रतीहारा और उनके  
 सामन्तों के शासन क्षेत्रों म ७६-८१,  
 प्राङ्ग मौर्य काल व मौर्य काल म  
 ४, —बंगाल म १४४, १६५, २१६  
 २१७ २४८, २७१, २७३, २७८,  
 २८२ २८६ —वघेलगण्ड म २१४  
 २०२ २२८ २३१, —बिहार म  
 १६५, २१७, २३१, २४८, २८  
 —बाह्यणो और पुरोहिता को १७६,  
 १६८, २०२ २१५, २१६, २१, २१  
 २२१, २२०, २७७ २७६, २८२,



- २८८,—मजो द्वारा २८३, २८८,  
 २९०,—महाराष्ट्र में ४८,—  
 मालवा में २०९, २३४, २४८,  
 —राजस्थान में २२४, २३४,—  
 राज्याधिकारिया और अधीनस्थ  
 सरदारों को १६४, १७० १७६,  
 १८२ १८३, १८५ १८८, १९६,  
 १९७, २०१ २, २०८ २२१,  
 २२३ २७२, २८३, २८७ ८८ —  
 रागिया और राजपुत्रों को १८१ —  
 राष्ट्रकूटा और उनके सामन्तों के  
 शासित क्षेत्रों में ८४ ८७,—वमनों  
 के राज्य में २५८,—सेनो के राज्य  
 में १६६ ६७, २३२, २३८ २४९  
 २५४ २५८,—सवावर्तिका के रूप में  
 ७८ ७९, १६४ ५, १७५ १९७  
 २३५ २४८ २६५, २७१ २८६,  
 सैनिक सेना के लिए ९१ ९२, १७२,  
 १८६ १९७ १९८ २०८, २१४  
 २१९, २७१, २८८ —सोमवर्तिका  
 के राज्य में २८८ २८९
- भूमिकर ४५, ८५  
 भूमिच्छिद्र ३८, ३९  
 भूमिच्छिद्र धाय ३७ ३८, ३९, २०६  
 भृत्यभरणीयम १०  
 भेरी २३  
 भोक्ता २७१  
 भोक्तमहाराजपुत्र १८३  
 भोग १२, १८ २४२  
 भोगकर ८८  
 भोगपति १५ ९७ ९९ २८५  
 भोगपतिक १५, १७
- भोगलाम १५३  
 भोगशक्ति ७०  
 भोगिक १५, १७, १८, २२, ७७, ९९  
 २७१  
 भोगिकपालक १७  
 भोगिरूप २७१, २८४, २८६  
 भोगी २७१, २८४, २८६  
 भोज (प्रथम) ८२, ८८ पा० टि०,  
 १३४  
 भोज (द्वितीय) १३४  
 भाजवमन (पालसामन्त) २१६  
 मन्त्रिनायक १९६, २८७  
 मन्त्रिन २१ १९८ २०८  
 मगध २, ३४ ४०  
 मठ ४५ ४७ ९४, १२१, २०१, २२३  
 २३५, ४३७  
 मठ प्राय स्वतन्त्र ४७  
 मन्त्रिग्राम २५५  
 मण्डल ८२  
 मण्डलेश १०६ ११०, २११  
 मण्डलेश्वर १८३ १९७  
 मण्डपिका २४४, २४७, २५४  
 मत्तर ९०, १२१  
 मथनदेव ९४ ११८ १३२  
 मदव ए मन्त्राश १५९  
 मदन पाणिजात १४२  
 मधुकामाणव १६९  
 मदनपाल २२८ २६३  
 मध्यदेश ९, ४४ २७८, २८८  
 मध्यप्रदेश २९ ३७ ४०  
 मनु ८, ११ २५ पा० टि० ६१, ७८  
 ८८, ११३, १४५, १४५, १४९,

१५२ १५३, २७१, २६२	महामात्य १८८, १६६, २००, २०१
मनुस्मृति ६	२०५, २०६
मयमत २१२ २६६	महामात्र ३२
मराठा ६०, ६३	महाराज २१, ५८, ६८, २१०
मलाबार २५७	महाराजाधिराज ६८
महसक १०८	महासाधनिक १८५
महत्तर ३१ ५७ १०२ पा० टि०,	महासाधिविग्रहिक २२, ६८, ६९,
१०६ २८३	१०६, २०० २२१
महत्तराधिवारिण १०६	महासामन्त २० २२, २६ २७, २९,
महाराष्ट्र १७ ३८, ४०, ४६, ५१,	४१, ८८, ६२ ६६ १००, १०३,
६३ ८१ ६६ ६८, ११५ १२३	१०५, १०६, १६८, १६६, २११,
१२१ १२८	२१३, २७१, २८५, २८६
महोपति ४७ २११	महासामन्तराणक २७१
महोपाय ८१ ८८ १०४	महासामन्ताधिपति ८८, ६३, ६८
महोपाय (उपाधि) ३०	२७१, २८४
महोदय (द्वितीय) ८३, ८८, ६८	माउट आबू ११२
महोदय १ ०	सागणक ८४, १२३
महाकानाट्टिक ६८	भाण्डिक १८६ १६६ २११
महाध्वजिक २२५ २८४	२१३, २७१
महाजन ७४, ७५ १२१	माधव ८४ ६५, ६८, १७०
महादण्डनायक २१, ६८	मानक २४६
महादोस्ताधानिक २२, ६८	मानसार २१० २१३, २६७
महापात्र १७०	'मानसोल्लास' २३ १० २०८
महापीलुननि १७	२१४, २५५, २६२
महाप्रतीहार २८	मान्यक १०७
महाभवगुप्त (प्रथम) २८७	मान्यश्रेष्ठ १११
महाभवगुप्त (द्वितीय) १६७, २८५	मार्लो बोला २५६ २५६
महाभवगुप्त (चतुर्थ) २८६	मालश्रेष्ठ १११
महाभारत २	मातदा १०६, ११०, १२२
महाभोगी १६ २७१ २८४ २८६	मानिका-महर १३२
महाभण्डनखर ६६ १०५	'मितासरा ४७ १४२ १४३
महामहत्तर २८३	मिरज १०६

- 'मितिन्द प'हो' १२  
 मिस्त १, ७०  
 मिहिरभोज १३४  
 'मीमासा सूत्र' १४१  
 मुंजर ८१  
 मुटव २४६  
 मुदगगिरि ११०, २६७  
 मुद्रा, कलचुरिया की २६६-६७,—  
 का मभाव ६७ ८, १३२ १३३,—  
 का चलन १३३, २४८ ४९, २५८,  
 २६२, २७५ २७९,—गाहड़वालो  
 की २६३ २६७ —गुजर प्रतीहारा  
 की २७६,—गुहिलो की २६४,—  
 च देलो की २६३ २६७  
 २६८, चादी की २६४, २६६,  
 २६७,—चाहमानो की २६३,  
 २६८, २७६,—डाहल के कल  
 चुरियों की २६३,—तावे की ६७  
 २६४ २६७,—तोमरों की २६४,  
 —परमारो की २७६ —मारवाड  
 के शासका की २६४ राष्ट्रकूटो की  
 २७६,—लोहे की २६८,—सनों की  
 २७६ —सोने की २६२ ६७  
 मुल्ता २६६  
 मू ग या मुदग ४२  
 मूलराज २२१, २५९  
 मेगास्थनीज १ ७६  
 मेल १३१ १४४  
 मन १३९  
 भेसिक ८१  
 मैक्डोनेल १ ९  
 यमुना २०  
 यगमजदेव १६८, २६०  
 यगोदत्त १८७  
 यशोधमन ७५  
 यशोवती २८  
 यशोवमन १८७ २४५  
 यानवल्क्य ४७ ६७ १४७  
 युक्तक, १०२ पा० टि०  
 'युक्तिवल्क्य' २६०  
 युवराज १०० १०३  
 युवराज (प्रथम), कलचुरि राजा  
 युवराजदेव (द्वितीय) २२२  
 यू ची ११२  
 यूरोप १६, ४३, ५३, ७० ७५ ८६  
 ७८, १०९ ११४  
 रघुवश ३, ३२  
 रट्टराज २४०  
 रणमज १६८  
 रतनपुर २६७  
 रथिक १०८  
 रवकोटयाचाय २३  
 राजत १७२ १७७ १९९ २०३  
 २१७  
 राजकुलीय १९५  
 राजकुलोदय १९५  
 राजतरगिणी २४९ २६०  
 राजपादोपजीविन १०१  
 राजपुत्र ८८ १८१ १९६, १९८  
 १९९ २०५ २०७ २११ २७१,  
 २८६  
 राजराजणव ८८, २७१  
 राजवत्सभ २७१, २८६  
 'राजवत्सभमण्डन' २१२



बलभी २६, ५०, ५७, ६३, ६८, १२२,  
 १२५ २४६  
 वसतिदण्ड १६५  
 वसिष्ठ १४६  
 वस्तु ३७  
 वस्तुपाल २५३  
 वाकपतिराज सूरि २०१  
 घाटस १० पा०टि०, ३०  
 धारस्यायन ५२, ६६  
 वारिक ५०  
 वास्तु ३७  
 विगतिच्छवष १६४  
 विशोषक १२६, १३३, २४५  
 विकरग्रामा १७६  
 विक्रमगिला ११६  
 विक्रमादित्य ७४  
 विग्रह १०१  
 विग्रहपाल (तृतीय) १२२ १६५, २१६  
 २२६  
 विजयदेव वमन ५५  
 विजयराज ४२  
 विजयसेन १६  
 वित्तबन्ध २६३  
 विद्याधर भजदेव २८३  
 विनायक पाल १२४  
 विनायकमुद्रा १३४  
 विलासपुर ११०  
 विगनिघट्टप्रस्थ १६३ ६४  
 विनिप ३००  
 विद्योनिम १६१, २४३  
 विश्वकमन भीमन १४१  
 विद्वरूप सेन १६६, २१७

विपय १८, १०८  
 विपय महत्तर १०८  
 विपयपति १२, २०, २१, ६७, ६६,  
 १०२ पा० टि०  
 विष्टि (देखिए वेगार भी) ४६, ५१  
 ५२, १२५, १२६ २४८, २७३ ७४,  
 २७६  
 विष्टिवन्धक ५१  
 विष्णु १२१, १२६, १४४, १४६ १५५  
 २२२  
 विष्णुनि दिन १३  
 वीर बलज १०६  
 'वीर मित्रोदय ४७  
 वुसुन (देखिए गुसुर) १११  
 वृद्धि १५३  
 वेंगी १०४ १०६  
 वेतन ३  
 वज्रलदेव १६०  
 वैद्य गीयक २३६  
 वद्यदेव १६५  
 वशाली २२ २२२  
 वश्य ६१ ६४, १०१  
 वश्य अग्रहार ६४  
 वश्य वग ६४  
 वषयिक १६१ '२४३  
 व्यवहार निष्णय' १५२  
 व्यापार, —उत्तर प्रदेश म २५३, —  
 का पुनरुत्थान २७६, —का सामन्ती  
 करण १२६, १३०, २४४ —का  
 ह्रास ६७, ६६ ७०, ११५ —  
 गुजरात म २५३ — चीन के साथ  
 २५५, २६० —देग के अदर २५२

१४, २५६, २६०, २६३, ६१, २६६, —  
 पश्चिमी भारत में २५० २१६ ६०,  
 २६४ २६६ — पूर्वी भारत में २५८,  
 २६५, — फारम व माय २५६ —  
 बघलखण्ड म २५४ — तुदलखण्ड म  
 २५४ — वैज्रतिया साम्राज्य व  
 माय ६८, — मध्य-पूर्व के साथ  
 २६० ६१, — मध्यभारत म २५६,  
 — राजस्थान म २५० ५३, —  
 विन्धो व साथ २४७, २५८ २६५,  
 २६६

ध्यास १२३, १४७ १५३  
 ध्वजगण ६३  
 ध्वजराजी २८४  
 ध्वजनाम १३  
 धनुमहासामंत २८ २६ ३०  
 धनुष १११  
 धनुस्वामिन् १४२, १४८  
 धनु दसराय १०१ २५१  
 धनुनाम २०  
 धनुनाथ १३, ३८  
 धनुर्वातर १५७  
 धनुर्वरम् ३८  
 धनुर्विहित १५०  
 धनुर्विहारी २४५  
 धनुर्विहारी ७०  
 धनुर्विहारी १७४  
 धनुर्विहारी २१  
 धनुर्विहारी ४४  
 धनुर्विहारी १४  
 धनुर्विहारी जिला २८६  
 धनुर्विहारी (प्रथम) ५०

धनु १२४ २२२ २३८ --  
 "धनुर्विहारी" १६६, १६६  
 धनुर्विहारी ७७  
 धनुर्विहारी (प्रथम) २८८ =  
 धनुर्विहारी २४७  
 धनुर्विहारी ६१ ६४, २७२, २८३  
 धनुर्विहारी १८६  
 धनुर्विहारी २३  
 धनुर्विहारी २७  
 धनुर्विहारी ८३, २८५ २८६  
 धनुर्विहारीजनपद ४२  
 धनुर्विहारी, एक गव देवता १८६  
 धनुर्विहारी २१६  
 धनुर्विहारी १८० ८१  
 धनुर्विहारी भट्टारक १२१  
 धनुर्विहारी ६६  
 धनुर्विहारी १३५  
 धनुर्विहारी ७२, ७३, ७५, १०६ १०६  
 धनुर्विहारी स्वामिन ३७ ४५  
 धनुर्विहारी १०  
 धनुर्विहारी २०२ २०६  
 धनुर्विहारी ४७  
 धनुर्विहारी १४ ५५ १५८  
 धनुर्विहारी १४३  
 धनुर्विहारी २१  
 धनुर्विहारी २६२  
 धनुर्विहारी २२ १६६, २०८  
 धनुर्विहारी १४४ --  
 धनुर्विहारीशापराधा ४  
 धनुर्विहारी नन्दी २७५  
 धनुर्विहारीसिद्धन समत ५८  
 धनुर्विहारीशापराधा महाशब्द १०३ पा०टि०

समरंजवहा १०१

समाचारदेव ४१

समाहर्ता ८

समुद्रगुप्त १८, २४ २६, ४६ ६६

समुद्रसेन ५८

सम्बन्धिनू १०१ १००

सरकार, डी० सी० ७१

सरहगडमाञ्छु २६५

सचदित्यविष्टि ५२

सबपीडा १२५, २४६ ७२

सबविष्टि ५१

सर्वाध्यक्ष ३

सर्वाय समेत १२७

सलखणपुरी २४७

सबक्षमालाकुलम ११६

सहसगण्ड ११०

सहुल्ल १२४

साधिविग्रहिक १०६ १६६

सामन्त २५ ३१ ७७ ६६ १०५,

१०७, १६७ १६८, १८ १६६

१६८, २००, २०१ २०४ २१०

२११ २१३ —के कत्तय १०२,

१०५

सामन्तक राजा २७१

साम तचक्र २०१

सामन्तशुडामणि २५

सामन्तप्रत्याय १२७

सामन्तप्रमुख २१२

सामन्त महाराज २६

सामन्तवाद २५, —का चरमोत्कप

२८१ —का सद्भातिव आधार

२१०, —की विनोपनाएँ ७८

७६, —गुप्तो के राज्य म २३, —

चीन मे १, —चीलुक्वो के राज्य म

१८८, —जमनी म १६७, —पूव

बगाल मे २४४, —बगाल म २०१,

२३७, —बघेलखण्ड म २१४, —

बिहार मे २०१ २, —फास मे

१६७, —मिस्र मे १

सामन्तवादी व्यवस्था, —भूमि के

असमान वितरण पर आधारित १५७

साहणपाल देव २३६

साहनी, डी० प्रार० १७६

सिचाई ७६ २३३, २६०

सिंहद्वार २१३

सिहराज १८०

सिद्धराज २२०

सि-घ ७०

सिलहट २३८

सीमा विवाद ६४

सीयडोणि ६६ १२१ १३७

सुदर्शन भाल ७०

सुव बु ३८

सुब्बरिग ४१

'सुभाषित ग्लनकाप ७५

सुमाना ८१

सुलेमान ६१ १०५

सुवण १२६

सूयसेन २८ १६६

सेनापति २१

सेनाभवन ५३

सनिफ बग १६८ ६६

सोडदेव २२२

सोत्पाद्यमानविष्टि ५० पा० टि०

## धनुःक्रमणिका

सोदशाद्यमानविष्टिक १२५  
 सोमेश्वर (तृतीय) १०७  
 सोरनुर ६६  
 सौदति ६०, ६३, १२२  
 सोराष्ट्र ७६  
 स्कन्दगुप्त ४६  
 स्कन्दनाग १३  
 स्कन्धक ८४, १२३  
 स्नग्धावार २६८  
 स्ट्रबो ३१  
 स्थानिक ८  
 स्थावर १५२  
 स्मतिचन्द्रिका १४३ १५५  
 स्वभाग ११४  
 स्वभोगावाप्त वशपोत्रक भोग ८८  
 स्वामिन्नास ६  
 स्वामिन ६७ ६२ पा० टि०  
 हजारीवाग ३४  
 हट्टपति २५४

हट्टिक ८०  
 हरधाम ११०  
 हरिमद्र सूरि १०१  
 हरिवर्मनदेव १६६  
 हय (हयवधन भी) १२, १६ २१  
 २६ २७, ३०, ३१, ४२ ४४ ६७  
 २२३, २४६, २७०  
 हयचरित १६, २१ २६ २८, ४०  
 ४४, ४६  
 हल ३६ ५६ पा० टि०  
 हत्तायुध १६६ १६७  
 हॉपकि स १३६  
 हिरण्य १२ ६८, १२७ १३१ १३६  
 हूण १११ ५७२  
 हेमचन्द्र २५६  
 हो चाग चुन ११ पा० टि०  
 हारमज २५३  
 ह्वेनत्साग १०, १२, ३० ४६ ६५  
 ७८, १४८ २७०, २७०





## BIBLIOGRAPHY

### DHARMAŚĀSTRA AND ALLIED LITERATURE

- Atareya Brahmana* Ed & Tr Martin Haug 2 volumes, London 1863
- Āpastamba Dharmasutra* Ed G Buhler Bombay 1932
- Arthasastra of Kautilya* Ed R Shamasastri, 3rd edn Mysore 1924 (unless otherwise stated references in this work refer to this text) Tr R Shamasastri 3rd edn, Mysore 1929 Edn with comm by T Ganapati Śāstrī 3 vols Trivandrum 1924 25 Ed J Jolly and R Schmidt vol 1 Lahore 1924
- Commentaries on the *Arthasastra*
- (i) *Jayamangala* (runs up to the end of the Bk I of the AŚ with gaps) Ed G Harihara Śāstrī *JOR* xx xxiii
  - (ii) *Pratipada pancika* by Bhattasvāmin (on Bk II from sec 8) Ed K P Jayaswal and A Banerji Sastrī *JBORS* xi xii
  - (iii) *Naya Candrika* by Madhava Yajva (on Bks vii xii) Ed Udayavīra Śāstrī Lahore 1924
  - (iv) A Fragment of the Kautilya's *Arthasāstra* alias *Raja siddhanta* with the fragment of the commentary named *Nitinirṇiti* of Acharya Yogghama alias Mugdhavilāsa Ed Muni Jina Vijaya Bombay 1959
- Barhaspatya sutram (Arthasāstra)* Ed F W Thomas Punjab Sanskrit Series Lahore 1922
- Baudhayana Dharmasutra* Ed E Hultzsch Leipzig 1884
- Bṛhaspati Smṛti* Ed K V Rangaswami Aivangar (this text has been followed in Ch I In other chapters Jolly's edn has been followed) *GOS* lxxxv Baroda 1941
- Bṛhat Paraśara Samhita* Bombay 1911
- Gautama Dharmasutra* Ed A S Stenzler London 1876 with the comm of Maskarin Ed L Srinivasacharya Mysore 1917

*Kāmandakīya Nīṭisāra* Ed R L Mitra BI Calcutta 1884  
Tr M N Dutt Calcutta 1896  
*Kāmandaka Nīṭisāra* Trivandrum Sanskrit Series Trivandrum  
1912

*Kaṭyāyana Smṛti* on *Vyavahāra* (Law and Procedure) Ed with  
reconstituted text Tr Notes and introduction by P V  
Kane Bombay 1933

*Kṛtyakalpataru* of Lakṣmīdhara Ed K V Rangaswami  
Aiyangar [GOS Baroda 1943

*Lekhapaddhati* Ed C D Dalal and G K Shrivondekar GOS  
xix 1925

*Manu Smṛti* or *Manava Dharmasastra* Ed V N Mandlik  
Bombay 1886 Tr G Buhler *SBE* xxv Oxford 1886

*Narada Smṛti* with extracts from the comm of Asahaya Ed  
J Jolly Calcutta 1885 Tr J Jolly *SBE* xxxiii Oxford  
1889

*Parasāra Smṛti* with the comm *Manohara* Banaras Sanskrit  
Series 1907

*Sukranīṭisāra* Ed Jnananda Vidyasagara Calcutta 1890 Tr  
B K Sarkar Allahabad 1914

*Tirukkural* Tr V R R Dikshitar The Adyar Library 1949

*Vasiṣṭha Dharmasastra* Ed A A Fuhrer Bombay 1916

*Viṣṇu Smṛti* or *Vaiṣṇava Dharmasastra* (with extracts from the  
comm of Nanda Pandita) Ed J Jolly, BI Calcutta 1881

Tr J Jolly *SBE* vii Oxford 1880

*Vyavaharamayukha* of Bhaṭṭa Nīlakantha Ed P V Kane  
Poona 1926

*Yajñavalkya* with *Vīramitrodaya* and *Mitaksara* Chowkhamba  
Sanskrit Series Banaras 1930

Trs of the *Dharmasutras* of *Āpastamba Gautama Vasiṣṭha* and  
*Baudhayana* by G Buhler in *SBE* ii and xiv Oxford,  
1879 82

#### EPCIS PURANAS AND ALLIED WORKS

*Agni Purana* BI Calcutta 1882 Tr M N Dutt 2 volumes  
Calcutta 1903 4

*Bṛhannaradīya Purana* Ed P H Sastri, Calcutta, 1891

*Kṛsnajamakhaṇḍa* of the *Brahmavaivarta Purana* Allahabad, 1920

*Mahabharata* Calcutta Edn, Ed N Siromani and others BI Calcutta, 1834 9 Tr K M Ganguly Published by P C Roy, Calcutta, 1884 96 Kumbakonam Edn Ed T R Krishna charya and T R Vyasacharya Bombay, 1905 10 *Śantiparvan* (Rajadharma 2 Parts) Critical Edn, Ed S K Belvalkar Poona 1949 50 *Śanti Parva* Chitrashala Press, Poona 1932

*Markaṇḍeya Purana* Ed Rev K M Banerjee BI, Calcutta 1862

#### BUDDHIST TEXTS

*Digha Nikaya* Ed T W Rhys Davids and J E Carpenter, 3 volumes PTS, London 1890 1911 Tr T W Rhys Davids 3 volumes SBB London 1899 21

*Jataka* with commentary Ed V Fausboll 7 volumes (vol 7 index by D Anderson), London 1877 07 Tr Various hands 6 volumes London 1895 1997

*Milindapanho* Ed V Trenckner London 1928 Tr T W Davids SBE, Oxford 1890 4

#### HISTORICAL AND SEMI HISTORICAL WORKS

##### SANSKRIT

*Harsacharita* of Bānabhatta with the commentary of Śankara Ed K B Parab Bombay 1937

*Harasa carita* of Bana Tr F B Cowell & F W Thomas London 1897

*Kumarapalacharita* by Hemachandra with a commentary by Purnakalas Aḡani Ed S P Pandit Bombay 1900

*Prabandhacintamani* of Merutunga Ed Jinavijaya Muni Santiniketan 1933

*Rajatarangini* of Kalhana Tr M A Stein Westminster 1900

*Ramacarita* of Sandhyakaranandī Ed R C Majumdar R G Basak and N G Banerji Rajshahi 1939

##### ARABIC & PERSIAN (Tr )

*The History of India as told by its own Historians* Ed and compiled by H M Elliot & John Dowson 8 Volumes London 1867 77

## TECHNICAL WORKS

- Aparajitaprecha* of Bhuvanadeva Ed P A Mankad GOS  
Baroda 1950
- Bṛhat Samhita* of Varahmihira Tr Durga Prasad Lucknow  
1884 with the comm of Bhaṭṭotpala 2 Parts Ed Sudhakar  
Dwivedi Banaras 1895 7
- Desinamamala* of Hemacandra Ed Muralydhara Banerjee  
Calcutta 1931
- Kamasutra* of Vatsyayana with the comm *Jayamangala* of  
Yaśodhara Ed Gosvami Damodar Shastri Banaras 1929
- Karnatakabhaṣābhūṣana* of Naga Varmma Ed L Rice  
Bangalore 1884
- Kṛsī Parasara* Ed & tr G P Majumdar & S C Banerji  
BI Calcutta 1960
- Manasara* on Architecture and Sculpture (Sanskrit Text with  
critical Notes) Ed P K Acharya Oxford 1933
- Manasollasa* (or *Abhilasitarthacintamani*) Ed G K Shri  
gondekar GOS xxviii & lxxxiv Baroda 1925 39
- Manamata* Ed T Ganapati Śastri Trivandrum Sanskrit Series  
1919
- Varanganasutradhara* of King Bhojadeva Ed T G Sastri  
Baroda 1925

## MISCELLANEOUS LITERARY TEXTS

- Subhasitaratnakosa* Ed D D Kosambi and V V Gokhale  
Harvard Oriental Series 1957
- (The) *Tilaka Mañjarī* of Dhanapala Ed Bhavadatta Śastri &  
K B Parab Nirnayasagara Pres. Bombay 1903
- Kadambarī* of Bāna with the commentary by M R Kale  
Bombay 1928

## COINS AND INSCRIPTIONS

- A S Altekar (ed) and compiled by C R Singhal *Bibliography  
of Indian Coins* Part I
- C J Brown *Coins of India* Calcutta 1922
- A Cunningham *Coins of Mediaeval India from the 7th century  
down to the Muhammadan conquests* London 1894

- M G Dikshit, *Selected Inscriptions from Maharashtra* (5th to 12th century A D) Poona 1947
- M G Dikshit *Sources of the Mediaeval History of the Deccan* (Texts with comments in Marāṭhi), iv Poona 1951
- J F Fleet, *Inscriptions of the Early Gupta Kings*, CII iii London 1888
- Sten Korow *Kharoṣṭhi Inscriptions* CII ii, Part 1 Calcutta 1929
- G H Khare *Sources of the Mediaeval History of the Dekkan* 1, Poona, 1930
- Luders *List of Inscriptions*, EI x
- N G Majumder (ed) *Inscriptions of Bengal* iii Rajshahi 1929
- V V Mirashi *Inscriptions of the Kalacuri Cedi Era* CII, iv two parts Ootacamund 1955
- *Vakatah Rajvams ku itihās tatha Abhilekh* Varanasi, 1964
- R B Pandey *Historical And Literary Inscriptions* Varanasi, 1962
- R B Patil *Antiquarian Remains in Bihar*, Patna 1963
- V A Smith *Catalogue of the Coins in the Indian Museum* Calcutta Oxford 1906
- D C Sircar *Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilisation* 1 Calcutta 1942

## FOREIGN SOURCES

## (i) Greek

- J W McCrindle, *Ancient India as described by Megasthenes and Arrian* Calcutta 1926
- *Ancient India as described in Classical Literature* Westminster 1901

## (ii) Chinese

- Samuel Beal *Travels of Fah hian and Sung Yun* (Tr), London, 1869
- *The Life of Hsuen Tsiang*, London, 1888

- Ho Chang Chun 'Fa hsien s Pilgrimage to Buddhist Countries' *Chinese Literature* 1956, No 3
- H A Giles, *The Travels of Fa Hsien or Record of Buddhistic Kingdoms* (Tr) Cambridge 1933
- James Legge *A Record of Buddhistic Kingdoms* (being an account of the Chinese monk Fa hien s Travels) Tr Oxford 1886
- T Takakusu *A Record of Buddhist Religion* Oxford 1896
- T Watters *On Yuan Chwang s Travels in India* Ed T W Rhys Davids and S W Bushell 2 volumes London 1904 5

## (iii) Others

- Henry Yule tr & ed *The Book of Ser Marco Polo* 2 volumes London 1926

## REFERENCE BOOKS

- Laxmanshastrī Joshi *Dharmakosa* (in three parts) Wai Dist Satara 1937 41
- Monier Monier Williams *A Sanskrit English Dictionary* Oxford 1951
- T W Rhys Davids and W Stede *Pali English Dictionary* PTS London 1921

SECONDARY WORKS ON EARLY INDIAN FEUDALISM  
ECONOMIC HISTORY AND ALLIED SUBJECTS

- P K Acharya *Hindu Architecture in India and Abroad* *Manasara Series* Vol VI Oxford 1946
- V S Agarwala *Harshacharita Ek Sanskritik Adhyayan* Patna 1953
- V S Agarwala *Kadambri Ek Sanskritik Adhyayan* Varansi 1958
- A S Altekar *The Rashtrakutas and Their Times* Poona 1934
- K A Antonova K Voprosu O Razvitiu Feodalizma V Indu kratkie Soobschenia Instituta Vostokovedeniya iii (A K Nauk U S S R Moskva, 1952) 23 32.
- B H Baden Powell *The Indian Village Community* London 189

- , *The Land Systems of British India*, 3 Volumes, London 1892
- P C Bagchi *India and Central Asia*, Calcutta 1955
- P N Banerjee *Public Administration in Ancient India*, Calcutta 1916
- A L Basham *Studies in Indian History and Culture* Calcutta, 1964
- *The Wonder that was India* London, 1954
- R G Basak *The History of North Eastern India*, Calcutta 1934
- Marc Bloch *Feudal Society* London 1961
- C E Bosworth *The Ghaznavids (994-1040)* Edinburgh 1963
- M A Buch *Economic Life in Ancient India* Volume II, Baroda 1924
- R K Choudhary Feudalism in Ancient India, *JIH* xxxvii 385 ff xxxviii, 193 ff
- *Viṣṭi (Forced Labour) in Ancient India* *IHQ* March 1962
- Some Aspects of Feudalism in Cambodia *JBRS* xlvii 246-68
- H T Colebrooke *Miscellaneous Essays* Ed E B Cowell, London 1873
- R. Coulbourn (ed), *Feudalism in History*, Princeton 1956
- V R R Dikshitar *The Gupta Polity* Madras 1952
- Charles Drekmeir *Kingship and Community in Early India* Stanford Stanford University 1962
- B N Dutta *Hindu Law of Inheritance* Calcutta 1957
- *Studies in Indian Social Polity* Calcutta 1944
- D C Ganguly, *History of the Paramara Dynasty* Dacca 1933
- F L Ganshof *Feudalism* London, 1959
- U N Ghoshal *The Beginnings of Indian Historiography and other Essays* Calcutta 1944
- *Contributions to the History of Hindu Revenue System*, Calcutta, 1929



- Marrion Gibbs, *Feudal Order* London 1949
- Krishna Kanti Gopal 'The Assembly of the Samantas in Early Mediaeval India' *JIH* xlii 241 50
- \_\_\_\_\_ 'Feudal Composition of Army in Early Mediaeval India' *Journal of the Andhra Historical Research Society*, xxviii, 30 49
- Lallanji Gopal *Economic Life of Northern India (c A D 700-1200)* Banaras 1965
- \_\_\_\_\_, 'On Feudal Polity in Ancient India' *JIH* xli, 405 13
- \_\_\_\_\_ 'Sāmanta—Its Varying Significance in Ancient India' *JRAS* 1963
- \_\_\_\_\_ 'The *Sukraniti*—a nineteenth century text' *BSOAS* xxv 524 526
- S Gopal and R Thapar (ed ), *Problems of Historical Writing in India* New Delhi 1963
- S A Q Husaini *The Economic History of India* 1 Calcutta 1962
- K P Jaiswal, *Hindu Polity* 2 Pts Calcutta, 1924
- \_\_\_\_\_ *Hindu Polity* Bangalore 1943 (Unless specified otherwise references correspond to this edition)
- P V Kane *History of Dharmasastra* 11 Poona 1941
- D D Kosambi 'On the Development of Feudalism in India' *ABORI* xxxvi 258 69
- \_\_\_\_\_ *The Culture and Civilisation of ancient India in Historical Outline* London 1935
- \_\_\_\_\_, 'Indian Feudal Trade Charters' *JESHO* 11 281 93
- \_\_\_\_\_ *An Introduction to the Study of Indian History*, Bombay 1956
- \_\_\_\_\_ 'Origins of Feudalism in Kaśmir' *The Sardha Satābdi Commemoration Volume* 1804 1954, Asiatic Society of Bombay
- S K Maitty, *The Economic Life of Northern India in Gupta Period (c A D 300-550)* Calcutta 1957
- A K Majumdar *Chaulukyas of Gujarat* Bombay 1956
- R. C. Majumdar (ed ) *History of Bengal* 1 Dacca 1943

- R C Majumdar & A S Altekar (ed) *The Vakataka Gupta Age* Banaras 1954
- R C Majumdar & A D Pusalker (ed) *History and Culture of the Indian People ii The Age of Imperial Unity* Bombay 1951
- *History and Culture of the Indian People iii The Classical Age* Bombay 1953
- Karl Marx *Pre Capitalist Economic Formations* tr Jack Cohen & ed E J Hobsbawm London 1964
- B P Mazumdar *The Socio Economic History of Northern India (11th & 12th centuries)* Calcutta 1960
- *Date and Concordance of the sukranisara* *JBRs*, xlvii 214-33
- Y M Medvedev & Voprosu O Formakh Jemlevladieniya V Severnoi Indii T VI VII Vekakh *Problemy Vostoko videniya* 1959 1 pp 49-61
- *Origin and evolution of the form of the Indian grants (3rd-12th centuries)* *Istoriya i kultura drevnei Indii* ed W Ruben V Struve and G Bongard Levin Moscow 1963
- Binayak Misra *Medieval Dynasties of Orissa* Calcutta 1934
- S K Mitra *The Early Fulcrs of Khajuraho* Calcutta 1958
- W H Moreland *(The) Agrarian System of Moslem India* Allahabad 1929
- Sultan Nadvi *Arab Bharat ke Sambandha* Allahabad 1930
- Pran Nath *Economic Conditions of Ancient India* London 1929
- Puspa Niyogi *Contributions to the Economic History of Northern India* Calcutta 1962
- Rama Niyogi *The History of the Gahadavala Dynasty* Calcutta 1959
- Richard Panikurst *An Introduction to the Economic History of Ethiopia* London 1961
- Henry Pirenne *Economic and Social History of Mediaeval Europe* London 1961
- B N Puri *The History of the Gurjara Pratiharas* Bombay 1907

- E J Rapson (ed) *The Cambridge History of India, Volume I, Ancient India* First Indian Reprint Delhi 1955
- Niharranjan Ray *Banodair Itihas* (Ādi Parv) Calcutta 1948
- J H Round *Feudal England* London 1964 (first published 1895)
- H D Sankalia *Archaeology of Gujrat* Bombay 1941
- B C Sen *Some Historical Aspects of the Inscriptions of Bengal* Calcutta 1942
- Dasharatha Sharma *Early Chauhan Dynasties* Delhi 1959
- R S Sharma *Aspects of political Ideas and Institutions in Ancient India* Delhi 1959
- *Śūdras in Ancient India*, Delhi 1959
- *Some Economic Aspects of the Caste System in Ancient India* Patna 1952
- *Stages in Ancient Indian Economy Enquiry* No 4
- R B Singh *The History of the Chahamanas* Varanasi 1964
- V A Smith *Early History of India* Oxford 1904
- Frank Stenton *English Feudalism 1066-1166*, Oxford 1961
- Paul M Sweezy and others *The Transition from Feudalism to Capitalism* (A Symposium) Sanskriti Publication Patna 1957
- K J Viji *Ancient History of Saurashtra* Bombay 1952
- Lakshminshankar Vyas *Caulukya Kumarpala* (in Hindi) 2nd edn Varanasi 1962
- G Yazdani (ed) *The Early History of the Deccan I VI* Oxford 1960

